विशेषतः विद्यार्थियों के लिये

(प्रथम भाग)

भारतेन्दु काल तक

लेखक तथा सम्पादक—

धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, एम. ए.

प्रोफेसर, मेरठ कालेज, मेरठ

प्राप्तिस्थान

खन्ना पब्लिशर्ज

हस्पताल रोड (अनारकली), लाहौर

तीसरा संस्करण

अक्टूबर १९४३

प्रकाशक—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार साहित्य भवन, ११, टैम्पल रोड लाहौर।

मुद्रक—[illegible] पाल, [illegible] प्रिंटिंग प्रेस, [illegible] रोड, लाहौर।

विषय-सूची

भूमिका

"हिन्दी गद्य का विकास" से हमारा अभिप्राय मुख्यतः खड़ी बोली के गद्य के विकास से है। शुरू-शुरू में हिन्दी के जिस रूप को तुच्छता की दृष्टि से देखा गया था, वही रूप आज विकसित होकर भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा की पदवी प्राप्त कर गया है। हिन्दी अभी तक विकास की दशा में है। हिन्दी के जो अनेक रूप भारतवर्ष मे प्रचलित रहे हैं, वे सब अब समन्वयान्वित होते चले जा रहे हैं। अब य प्रतीत होने लगा है कि निकट भविष्य मे हिन्दी का एक सर्वमान्य और सार्वदेशीय रूप भी हो सकेगा। सुगमता के लिए हम इस ग्रन्थ को दो भागों मे बॉट रहे हैं, एक हिन्दी गद्य का प्राचीन रूप, जो भारतेन्दु-काल तक समाप्त हो जाता है, दूसरा हिन्दी का नवीन रूप, जिसका प्रारम्भ पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी से होता है। यह वर्तमान काल है। पाठकों के सम्मुख हम आज प्राचीन हिन्दी गद्य का रूप प्रस्तुत कर रहे हैं। इस भूमिका मे भी हम हिन्दी के प्राचीन रूप पर ही विचार करेंगे। हिन्दी गद्य की वर्तमान समस्याओं तथा उसकी प्रगति के सम्बन्ध मे इस ग्रन्थ के दूसरे भाग मे प्रकाश डाला जायगा।

मध्ययुग मे प्राकृत भाषा के अनेक अपभ्रंश रूपान्तर हमारे देश मे प्रचलित होने लगे। देश के विभिन्न प्रान्तों मे भिन्न-भिन्न भाषाओं का विकास होने लगा। इन्हीं मे हिन्दी भाषा का भी प्रादुर्भाव हुआ। उन दिनों की साहित्यिक हिन्दी बोल-चाल की हिन्दी से भिन्न थी। अपभ्रंश भाषाएँ तब तक व्याकरण में नहीं जकड़ी गई थीं। इसी कारण उन्हें साहित्यिक कलेवर नहीं प्राप्त हो रहा था।

परन्तु क्रमशः अपभ्रंश भाषा का भी व्याकरण बना दिया गया। जब यह भाषा नियमों मे जकड़ दी गई, तो उसके भेद क्रमशः लुप्त होने लगे और स्वभावतः एक ही अपभ्रंश भाषा का विकास होने

और तब साहित्यकारों ने भी उसे अपनाया। जैसा कि हमने अभी कहा है, इस अपभ्रंश का विकास जारी था और समय आया कि यह भाषा प्रारम्भ की अपभ्रंश भाषा से बहुत भिन्न बन गई। इस अपेक्षाकृत सुसंस्कृत भाषा को 'अवहट्ट' भाषा कहा जाता है। यह कहना कठिन है कि कहाँ अपभ्रंश समाप्त हुई और 'अवहट्ट' भाषा शुरू हुई। अवहट्ट भाषा का प्रारम्भ बारहवीं सदी से माना जा सकता है। उसे 'पुरानी हिन्दी' भी कहते हैं।

प्राकृत का प्रादुर्भाव संस्कृत से हुआ और संस्कृत का वैदिक भाषा से। प्राकृत के भी तीन रूप थे—

प्रथम प्राकृत अथवा पाली।

दूसरी प्राकृत अथवा शौरसेनी आदि।

तीसरी प्राकृत अपभ्रंश।

देश और काल के भेद से भाषाओं मे जिस तरह भेद आता रहता है, उसे यहां समझा कर कहने की आवश्यकता नही है। भाषा-शास्त्र के सभी विकास-सिद्धान्त पूर्णरूप मे हमारे देश की प्राचीन भाषाओं पर भी लागू हुए और इस देश मे मुख्यत. एक ही भाषा, प्राचीनतम वैदिक भाषा, को अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाने के कारण विभिन्न देश कालों मे विकसित होने वाली सभी भाषाओं, उपभाषाओं और बोलियों पर उसका गहरा प्रभाव स्पष्टरूप मे देखा जा सकता है। पुराने जमाने मे यातायात और सम्वादवहन के वर्तमान साधन प्राप्त नही थे। इतने लम्बे-चौडे देश के विभिन्न भागों मे रहने वाले नागरिकों के लिए एक दूसरे से मिल-जुल सकना, तब एक बहुत कष्टसाध्य कार्य था। इस पर भी सम्पूर्ण देश पर संस्कृत का जो प्रभुत्व स्थापित हो गया, वह एक आश्चर्य की बात है। इस संस्कृत भाषा के बाद के रूपान्तरों के सम्बन्ध मे ऊपर कहा ही जा चुका है।

पुराने हिन्दी गद्य के बहुत कम ग्रन्थ आज उपलब्ध होते हैं।

हिन्दी पद्य तो सुरक्षित रह सका, परन्तु गद्य उतना सुरक्षित

नहीं रहा। यह भी सम्भव है कि उस युग मे गद्य के लिखने का उतना अधिक चलन ही न हो।

वर्तमान खड़ी बोली की सब से पुरानी पहेली खुसरो की लिखी हुई है। पतंग के सम्बन्ध मे यह पहेली है—

एक कहानी मै कहूँ सुन ले मेरे पूत।
बिना परों वह उड गया बाँध गले मे सूत॥

यह स्पष्ट है कि इस पहेली को उन दिनों की प्रचलित हिन्दी का प्रतिनिधि कदापि नहीं माना जा सकता। खुसरो का एक और पद देखिए—

आदि कटे से सब को पाले
मध्य कटे से सब को घाले,
अन्त कटे से सब को मीठा
सो खुसरो मै आँखों दीठा।

खुसरो का रचना-काल सन १३१४ ई० है। खुसरो तथा अन्य मुसलमान कवियों और लेखकों पर उर्दू भाषा का प्रभाव था। और वे हिन्दी को भी अपनाए हुए थे। उसी का यह परिणाम हुआ कि उन्हे खड़ी बोली का प्रथम लेखक कहा जा सकता है। इसी तरह अशरफ़ का कहना है—

भभूत जोगियों का रंग लाया है
जो होनी हो सो हो जावे।

मिर्जा मुहम्मद रफ़ी 'सौदा' ने लिखा है—

मारे से वह जी उठे, बिन मारे मर जाय।
बिन पावों जग-जग फिरे हाथों-हाथ बिकाय॥

खड़ी बोली का सब से पहला गद्य हमे अकबर के समकालीन श्री गंग की लेखनी से मिलता है—

"इतना सुन के श्री पातसाहि जी श्री अकबर साह जी आध सेर सोना नरहरदास चारन को दिया। इन के डेढ़ सेर सोना हो गया। रास बांचना पूरन भया। आम खास बरखास हुआ।"

जहांगीर के समकालीन कविवर जटमल को एक गद्य-लेखक के

रूप में भी माना जाता है, यद्यपि उन का कोई गद्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। 'गोरा बादल' की जो कथा जटमल कृत पाई जाती है, वह पद्य मे हैं। तथापि कहा जाता है कि उन की हिन्दी का रूप इस प्रकार है—

"गुरू व सरस्वती को नमस्कार करता हूँ।"

"उस गाव के लोग भी वहोत सुखी है। घर घर मे आनन्द होता है।"

उधर व्रज भाषा मे गद्य-रचना काफ़ी समय से जारी थी। सन १३४५ मे बाबा गोरखनाथ ने लिखा—

स्वामी तुम्ह तो सतगुरु, अम्हे तो सिप सवद तो एक पूछिबा, दया करि कहिवा, मनि न करिबा रोस।"

"स्वामी विट्ठल दास (सन् १५४४) की भाषा का रूप है :—

"सो श्री नंदगाम मे रहतो हतो। सो ब्राह्मण खण्डन शास्त्र पढो हतो। सो जितने पृथ्वी पर मत हैं सब को खण्डन करतो, ऐसो वाको नेम हतो। याही तें सब लोगन ने वाको नाम खण्डन पार्यो हतो।"

इन दोनों से पहले महाराज पृथ्वीराज (सन ११७६) के समय का लिखा गद्य भी आज उपलब्ध होता है, परन्तु उसे खड़ी बोली का गद्य नहीं कहा जा सकता। महाराज पृथ्वीराज के दो पत्रों की प्रतिलिपि इस प्रकार है—

श्रीहर एकलिंगो जयति

श्री श्री चित्रकोट वाई साहव श्री पृथुकुवर वाई का वारणा गाम मोई आचारज भाई रुसीकेसजी वॉचजो अपन श्री दली सुँ भाई लंगरीराय जी आया है जो श्रीदली सुँ हजूर को वी खास रुका आयो हे जो मारो भी पदारवा को सीखवी हे नेदली काका जी पेद हे जो कागद वॉचत चला आवजो थानेमा आगे जाइगे पड़गा थाके वास्ते डाक वेठी है श्री हजूर वी हुक्म वेगीयो है जो थे ताकीद सुँ आवजो थारे मन्दर को व्याव कामारथ अवार करोगा दली सुँ आआ पाछे करोगा ओर थे सवेरे दन अठे आयसो सं० ११४६ चैत सुदी १३।

ॅ।

यह विक्रम सं० १२३५ का पत्र है, उस समय जो संवत प्रचलित था वह विक्रम संवत से ९० वर्ष कम है। ऊपर के पत्र का अर्थ यह है :—

श्री हरि एकलिंगजी की जय हो। मोई ग्राम निवासी आचार्य भाई ऋषीकेश जी को चित्तौर में बाई साहब श्री पृथकुँवरि बाई का संवाद बाँचना। आगे भाई श्री लंगरीराय जी श्री दिल्ली से हजूर का खास रुक्का भी आया है जिससे मुझको भी दिल्ली जाने की आज्ञा मिली है। काका जी अस्वस्थ हैं। सो कागज बाँचतेही चले आओ। तुमको हम से पहले आना पड़ेगा। तुम्हारे वास्ते डाक बैठाई गई है। श्री हजूर (समरसिंह) ने भी आज्ञा दी है। सो ताकीद जानकर जल्दी आओ। जो तुम्हारे मन्दिर की स्थापना जल्दी स्थिर हुई है सो हम लोगों के दिल्ली से लौटने पर होगी। इतनी जल्दी आओ कि दिन का सवेरा वहाँ हो तो शाम यहाँ हो। मिति चैत सुदी १३ संवत ११४५।

दूसरा पत्र—मेवाड़ की एक सनद, सं० १२२९।

स्वस्ति श्री श्री चित्रकोट महाराजाधीराज तपे राज श्री श्री रावल जी श्री समरसी जी वचनातु दा असा अचारज ठाकुर रुसीकेष कस्थ थाने दली सु दायजे लाया अणी राज मे ओपद थारी लेवेगा ओपद ऊपरे मालकी थाकी है जो जनाना मे थारा वंसरा टाला ओ दूजो जावेगा नहीं ओर थारी वैठक दली मे जी प्रमाणे परधान बरोबर कारण होवेगा।

भावार्थ

श्री चित्रकोट (चित्तौर) महाराजाधिराज रावल समरसिंह की आज्ञा से आचार्य ऋषीकेष को—तुमको-दिल्ली से [illegible]जे मे लाया। राज्य में तुम्हारी दवा ली जायगी. दवा पर तुम्हारा [illegible]धिकार है, और [illegible]पुर में तुम्हारे वंशजों के सिवाय दूसरा नहीं जायगा, और दरबार में तुमको प्रधान के बराबर आसन मिलेगा, जैसे दिल्ली में था।

प्रारम्भिक गद्य के कतिपय अन्य उदाहरण इस प्रकार दिये जा सकते हैं—

हिंदु, हिंद और हिंदी माने जा सकते हैं, पर हमारी भाषा मे आज ये भिन्न भिन्न शब्द माने जाते हैं। सिंधु एक नदी को सिंध एक देश को और सिंधी उस देश के निवासी को कहते हैं, तथा फारसी मे आए हुए हिंदु, हिंद और हिंदी सर्वथा भिन्न अर्थ मे आते हैं। हिंदू से एक जाति, एक धर्म अथवा उस जाति या धर्म के मानने वाले व्यक्ति का बोध होता है। हिंद से पूरे देश भारतवर्ष का अर्थ लिया जाता है और हिंदी एक भाषा का वाचक होता है।

प्रयोग तथा रूप की दृष्टि से हिंदवी या हिंदी शब्द फ़ारसी भाषा का है और इसका अर्थ 'हिंद का' होता है, अतः, यह फ़ारसी ग्रंथों में हिंद देश के वासी और हिंद देश की भाषा दोनों अर्थों मे आता था और आज भी आ सकता है। पंजाब का रहने वाला दिहाती आज भी अपने को भारतवासी न कहकर हिंदी ही कहता है, पर हमे आज हिंदी के भाषा-संबंधी अर्थ मे ही विशेष प्रयोजन है। शब्दार्थ की दृष्टि से इस अर्थ मे भी हिंदी शब्द का प्रयोग हिंदी या भारत मे बोली जाने वाली किसी आर्य अथवा अनार्य भाषा के लिये हो सकता है, किंतु व्यवहार में हिंदी उस बडे भूमि भाग की भाषा मानी जाती है, जिसकी सीमा पश्चिम मे जैसलमेर, उत्तर-पश्चिम में अंबाला, उत्तर मे शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाडी प्रदेश, पूरब में भागलपुर, दक्षिण-पूरब मे रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम मे खँडवा तक पहुँचती है। इस भूमिभाग के निवासियों के साहित्य, पत्र-पत्रिका, शिक्षा-दीक्षा, बोलचाल आदि की भाषा हिंदी है। इस अर्थ मे बिहारी (भोजपुरी, मगही और मैथिली), राजस्थानी (मारवाडी, मेवाती आदि), पूर्वी हिंदी (अवधी, बघेली और छत्तीसगढी), पहाडी आदि सभी हिंदी की विभाषाएँ मानी जा सकती हैं। उसके बोलने वालों की संख्या लगभग १४ करोड है यह हिंदी का प्रचलित अर्थ है। भाषा-शास्त्रीय अर्थ इससे कुछ भिन्न और संकुचित होता है।

भाषा-शास्त्र की दृष्टि से इस विशाल भूमिभाग अथवा हिंद खण्ड

तीन चार भाषाएँ मानी जाती हैं। राजस्थान की राजस्थानी, बिहार तथा
नारस-गोरखपुर कमिश्नरी की बिहारी, उत्तर मे पहाड़ों मे पहाडी और
वध तथा छत्तीसगढ की पूर्वी हिंदी आदि पृथक् भाषाएँ मानी जाती हैं।
स प्रकार हिंदी केवल उस खण्ड की भाषा को कह सकते हैं जिसे प्राचीन
ाल मे मध्य देश अथवा अन्तर्वेद कहते थे। अतः यदि आगरा को हिंदी
ा केन्द्र मानें तो उत्तर मे हिमालय की तराई तक और दक्षिण मे
र्मदा की घाटी तक, पूर्व मे कानपुर तक और पश्चिम मे दिल्ली के भी
ागे तक हिन्दी का क्षेत्र माना जाता है। इसके पश्चिम मे पंजाबी
ौर राजस्थानी बोली जाती हैं और पूर्व में पूर्वी हिन्दी। कुछ लोग
हिन्दी के दो भेद मानते हैं—पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिंदी। पर
आधुनिक विद्वान पश्चिमी हिन्दी को ही हिंदी कहना शास्त्रीय
समझते हैं। अत. भाषा-वैज्ञानिक विवेचन मे पूर्वी हिन्दी भी 'हिंदी'
े पृथक् भाषा मानी जाती है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी देखें तो
हिन्दी शौरसेनी की वंशज है और पूर्वी हिन्दी अर्धमागधी की। इसी
े ग्रियर्सन, चैटर्जी आदि ने हिन्दी शब्द का पश्चिमी हिन्दी के ही
अर्थ मे व्यवहार किया है और व्रज, कन्नौजी, बुंदेली बाँगरू और खडी
बोली (हिन्दुस्तानी) को ही हिन्दी की विभाषा माना है—अवधी,
छत्तीसगढी आदि को नहीं। अभी हिन्दी लेखकों के अतिरिक्त अंगरेजी
लेखक भी 'हिन्दी' शब्द का मनचाहा अर्थ किया करते हैं इससे भाषा-
विज्ञान के विद्यार्थी को हिन्दी शब्द के (१) मूल शब्दार्थ, (२) प्रचलित
और साहित्यिक अर्थ, तथा (३) शास्त्रीय अर्थ को भली भाँति समझ
लेना चाहिए। तीनों अर्थ ठीक हैं, पर भाषा-विज्ञान मे वैज्ञानिक खोज
से सिद्ध और शास्त्र-प्रयुक्त अर्थ ही लेना चाहिए।

खडी बोली—(१) हिन्द (पश्चिमी हिंदी अथवा केन्द्रीय हिन्दी-आर्य
भाषा) की प्रधान पाँच विभाषाएँ हैं—खडी बोली, बाँगरू, व्रजभाषा,
कन्नौजी और बुंदेली। आज खडी बोली राष्ट्र की भाषा है—साहित्य
और व्यवहार सब मे उसी का बोलबाला है, इसी से वह अनेकों नाम

---

* पश्चिमी हिन्दी के बोलने वालों की संख्या केवल ४

और रूपों में भी देख पड़ती है। प्रायः लोग ब्रजभाषा, अवधी आदि प्राचीन साहित्यिक भाषाओं से भेद दिखाने के लिये आधुनिक साहित्यिक हिन्दी को 'खड़ी बोली कहते हैं। यह इसका सामान्य अर्थ है, पर इसका मूल अर्थ लें तो खड़ी बोली उस बोली को कहते हैं जो रामपुर रियासत, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून, अम्बाला तथा कलसिया और पटियाला रियासत के पूर्वी भागों मे बोली जाती है। इसमे यद्यपि फारसी-अरबी के शब्दों का व्यवहार अधिक होता है पर वे शब्द तद्भव अथवा अर्धतत्सम होते हैं। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग ५३ लाख है। इसकी उत्पत्ति के विषय मे अब यह माना जाने लगा है कि इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। उस पर कुछ पंजाबी का प्रभाव देख पड़ता है।

उच्च हिन्दी— यह खड़ी बोली ही आजकल की हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी तीनों का मूलाधार है। खड़ी बोली अपने शुद्ध रूप मे केवल एक बोली है पर जब वह साहित्यिक रूप धारण करती है तब कभी वह 'हिन्दी' कही जाती है और कभी 'उर्दू'। जिस भाषा में संस्कृत के तत्सम और अर्ध-तत्सम शब्दों का विशेष व्यवहार होता है वह हिन्दी (अथवा योरोपीय विद्वानों की उच्च हिन्दी) कही जाती है। इसी हिन्दी मे वर्तमान युग का साहित्य निर्मित हो रहा है। पढ़े-लिखे हिन्दू इसी का व्यवहार करते हैं। यही खड़ी बोली का साहित्यिक रूप हिन्दी के नाम से राष्ट्र-भाषा के सिंहासन पर बिठाया जा रहा है।

उर्दू—जब वही खड़ी बोली फ़ारसी-अरबी के तत्सम और अर्ध-तत्सम शब्दों को इतना अपना लेती है कि कभी-कभी उसकी वाक्य-रचना पर भी कुछ विदेशी रंग चढ़ जाता है, तब उसे उर्दू कहते हैं। यही उर्दू भारत के मुसलमानों की साहित्यिक भाषा है। इस उर्दू के भी दो रूप देखे जाते हैं। एक दिल्ली लखनऊ आदि की तत्सम-बहुला कठिन उर्दू और दूसरी हैदराबाद की सरल दक्खिनी उर्दू (अथवा हिन्दुस्तानी)। इस प्रकार भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी

(१२)

और उर्दू खड़ी बोली के दो साहित्यिक रूप मात्र हैं। एक का ढांचा भारतीय परम्परागत प्राप्त है और दूसरी को फ़ारसी का आधार बना-कर विकसित किया जा रहा है।

हिन्दुस्तानी—खड़ी बोली का एक रूप और होता है जिसे न तो शुद्ध साहित्यिक कह सकते हैं और न ठेठ बोलचाल की बोली ही कह सकते हैं। वह है हिन्दुस्तानी—विशाल हिन्दी प्रान्त के लोगों की परिमार्जित बोली। इस में तत्सम शब्दों का व्यवहार कम होता है पर नित्य व्यवहार के, शब्द देशी-विदेशी सभी, काम में आते हैं। संस्कृत, फ़ारसी, अरबी के अतिरिक्त अंगरेजी ने भी हिन्दुस्तानी मे स्थान पा लिया है। इसी मे एक विद्वान ने लिखा है कि "पुरानी हिन्दी, उर्दू और अंगरेजी के मिश्रण से जो एक नई ज़बान आप से आप बन गई है वही हिन्दुस्तानी के नाम से मशहूर है।" यह उद्धरण भी हिन्दुस्तानी का अच्छा नमूना है। यह भाषा अभी तक बोल-चाल की बोली ही है। इसमें कोई साहित्य नहीं है। किस्से, गजल, भजन आदि की भाषा को यदि चाहें तो, हिन्दुस्तानी का ही एक रूप कह सकते हैं। आजकल कुछ लोग हिन्दुस्तानी को साहित्य की भाषा बनाने का यत्न कर रहे हैं, पर वर्तमान अवस्था मे वह राष्ट्रीय बोली ही कही जा सकती है। इसकी उत्पत्ति का कारण भी परस्पर विनिमय की इच्छा ही है। जिस प्रकार उर्दू के रूप मे खड़ी बोली ने मुसलमानों की माँग पूरी की है उसी प्रकार अंगरेजी शासन और शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये हिंदुस्तानी चेष्टा कर रही है, वास्तव में 'हिन्दुस्तानी' नाम के जन्मदाता अंगरेज आफ़िसर हैं। वे जिस साधारण बोली मे साधारण लोगों से—साधारण पढ़े और बेपढ़े दोनों ढंग के लोगों से—बात चीत और व्यवहार करते थे उसे हिंदुस्तानी कहने लगे। जब हिंदी और-उर्दू साहित्य-सेवा में विशेष रूप से लग गईं तब जो बोली जनता मे बच रही है उसे हिंदुस्तानी कहा जाने लगा है। हिन्दुस्तानी को चाहे हम हिंदी का, चाहे उर्दू के बोल-चाल का रूप कह सकते हैं। अतः हिंदी, उर्दू, हिन्दुस्तानी तीनों ही खड़ी बोली के रूपान्तर-मात्र

हैं। साथ ही हमे यह भी स्मरण रखना चाहिये कि शास्त्रों में खड़ी बोली का अधिक प्रयोग एक प्रांतीय बोली के अर्थ मे ही होता है।

(२) बाँगरू—हिंदी की दूसरी विभाषा बाँगरू बोली है। यह बांगर अर्थात् पंजाब के दक्षिण-पूर्वी भाग की बोली है। देहली, करनाल, रोहतक, हिसार, पटियाला, नाभा और जींद आदि की ग्रामीण बोली यही बाँगरू है। यह पंजाबी, राजस्थानी और खड़ी बोली तीनों की खिचड़ी है। बांगरू बोलने वालों की संख्या बाईस लाख है। बांगरू बोली की पश्चिमी सीमा पर सरस्वती नदी बहती है। पानीपत और कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध मैदान इसी बोली की सीमा के अन्दर पड़ते हैं।

(३) ब्रजभाषा—ब्रजमंडल मे ब्रजभाषा बोली जाती है। इसका विशुद्ध रूप आज भी मथुरा, आगरा, अलीगढ़ तथा धौलपुर में बोला जाता है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग ७९ लाख है। ब्रजभाषा मे हिंदी का इतना बड़ा और सुंदर साहित्य लिखा गया है कि उसे बोली अथवा विभाषा न कह कर भाषा मात्र कहा जा सकता है। आज भी अनेक कवि पुरानी अमर ब्रजभाषा मे काव्य लिखते हैं।

(४) कन्नौजी—गंगा के मध्य दोआब की बोली कन्नोजी है। इसमे भी साहित्य मिलता है पर वह भी ब्रजभाषा का ही साहित्य माना जाता है, क्योंकि साहित्यिक कन्नौजी और ब्रज मे कोई विशेष अन्तर नहीं लक्षित होता।

(५) बुंदेली—यह बुंदेलखण्ड की भाषा है और ब्रजभाषा के क्षेत्र के दक्षिण में बोली जाती है। शुद्ध रूप मे यह झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद मे बोली जाती है। इसके कई मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा छिंदवाड़ा के कुछ भागों मे पाए जाते हैं। बुन्देली बोलने वाले लगभग ६९ लाख हैं। मध्यकाल मे

लख५० में अच्छे कवि हुए हैं, पर उनकी भाषा ब्रज ही रही है।

उनकी ब्रजभाषा पर कभी कभी बुन्देली की अच्छी छाप देख पड़ती है।

मध्यवर्ती भाषाएँ—'मध्यवर्ती' कहने का यही अभिप्राय है कि ये भाषाएँ मध्यदेशी भाषा और बहिरंग भाषाओं के बीच की कड़ी हैं, अतः उनमे दोनों के लक्षण मिलते है। मध्यदेश के पश्चिम की भाषाओं मे मध्यदेशी लक्षण अधिक मिलते हैं पर उसके पूर्व की 'पूर्वी हिंदी' मे बहिरंग वर्ग के इतने अधिक लक्षण मिलते हैं कि उसे बहिरंग वर्ग की ही भाषा कहा जा सकता है।

जैसा पीछे तीसरे ढंग के वर्गीकरण मे स्पष्ट हो गया है, ये मध्यवर्ती भाषाएँ सात है—पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पूर्वी पहाड़ी, केन्द्रीय पहाड़ी, पश्चिमी पहाड़ी और पूर्वी हिंदी। ये सातों भाषायें हिन्दी को—मध्यदेश की भाषा को—घेरे हुए हैं। साहित्यिक और राष्ट्रीय दृष्टि से ये सब हिंदी की विभाषाएँ (अथवा उपभाषाएँ) मानी जा सकती है पर भाषाशास्त्र की दृष्टि से वे स्वतन्त्र भाषाएँ मानी जाती है। इनमे से पहली छः मे मध्यदेशी लक्षण अधिक मिलते है पर पूर्वी हिंदी मे बहिरंग लक्षण ही प्रधान हैं।

पंजाबी—पूरे पंजाब प्रान्त की भाषा को 'पंजाबी' कह सकते है। इसी से कई लेखक पश्चिमी पंजाबी और पूर्वी पंजाबी के भेद करते है पर भाषा-शास्त्री पूर्वी पंजाबी को पंजाबी कहते हैं, अतः हम भी पंजाबी का इसी अर्थ मे व्यवहार करेंगे। पश्चिमी पंजाबी को लँहदा कहते है। अमृतसर के आस पास की भाषा शुद्ध पंजाबी मानी जाती है। यद्यपि स्थानीय बोलियों मे भेद मिलता है पर सच्ची विभाषा डोग्री ही है। जम्मू रियासत और कांगड़ा ज़िले मे डोग्री बोली जाती है। इसकी लिपि तक्करी अथवा टकरी है। टक्क जाति से इसका सम्बन्ध जोड़ा जाता है। पंजाबी मे थोड़ा साहित्य भी है। पंजाबी ही एक ऐसी मध्यदेश से सम्बद्ध भाषा है जिसमे संस्कृत और फारसी शब्दों की भरती नही है। इस भाषा मे वैदिक-संस्कृत-सुलभ

रस और सुंदर पुरुषत्व देख पड़ता है। इस भाषा में उसके बोलने वाले बलिष्ठ और कठोर किसानों की कठोरता और सादगी मिलती है। ग्रियर्सन ने लिखा है कि पंजाबी ही एक ऐसी आधुनिक हिंदी—आर्य भाषा है जिसमें वैदिक अथवा तिब्बत-चीनी भाषा के समान स्वर पाए जाते हैं।

राजस्थानी और गुजराती—पंजाबी के दक्षिण में राजस्थानी है। जिस प्रकार हिंदी का उत्तर-पश्चिम की ओर फैला हुआ रूप पंजाबी है, उसी प्रकार हिंदी का दक्षिण-पश्चिम विस्तार राजस्थानी है। इसी विस्तार का अन्तिम भाग गुजराती है। राजस्थानी और गुजराती वास्तव में इतनी परस्पर सम्बद्ध है कि दोनों को एक ही भाषा की दो भाषाएँ मानना भी अनुचित न होगा। पर आजकल ये दो स्वतन्त्र भाषाएँ मानी जाती हैं। दोनों में स्वतन्त्र साहित्य की भी रचना हो रही है। राजस्थानी की मेवाती, मालवी, मारवाड़ी और जयपुरी आदि अनेक विभाषाएँ हैं, पर गुजराती में कोई निश्चित विभाषाएं नहीं हैं, उत्तर और दक्षिण की गुजराती की बोली में स्थानीय भेद पाया जाता है।

पहाड़ी—मारवाड़ी और जयपुरी से मिलती-जुलती कई भाषाएँ हिंदी के उत्तर में मिलती हैं। पूर्वी पहाड़ी नेपाल की प्रधान भाषा है इसी से वह नेपाली भी कही जाती है। इसे ही परबतिया अथवा खसकुरा भी कहते हैं। यह नागरी अक्षरों में लिखी जाती है, इसका साहित्य सर्वथा आधुनिक है। केन्द्रवर्ती पहाड़ी गढ़वाल रियासत तथा कमाऊँ और गढ़वाल जिले में बोली जाती है। इसमें दो विभाषाएँ हैं—कुमाउनी और गढ़वाली। इस भाषा में भी कुछ पुस्तकें, थोड़े दिन हुए, लिखी गई हैं। यह भी नागरी अक्षरों में लिखी जाती है। पश्चिमी पहाड़ी बहुत सी पहाड़ी बोलियों के समूह का नाम है। उसकी कोई प्रधान विभाषा नहीं है और न उसमें कोई उल्लेखनीय साहित्य ही है। कुछ ग्राम-गीत भर मिलते हैं। इसका क्षेत्र बहुत है। संयुक्त प्रांत में सिरमौर रियासत, शिमला पहाड़ी, कड़,

मंडी, चम्बा होते हुए पश्चिम में कश्मीर की भदरवार जागीर तक पश्चिमी पहाड़ी बोलियाँ फैली हुई हैं। इसमें जौनसारी, कुडली, चंबाली आदि अनेक विभाषाएँ हैं। ये टकरी अथवा चक्री लिपि में लिखी जाती हैं।

पूर्वी हिंदी—इसे हिंदी का पूर्वी विस्तार कह सकते हैं पर इस भाषा में इतने बहिरंग भाषाओं के लक्षण मिलते हैं कि इसे अर्ध-बिहारी* भी कहा जा सकता है। यही एक ऐसी मध्यवर्ती भाषा है जिसमें बहिरंग भाषाओं के अधिक लक्षण मिलते हैं। यह हिंदी और बिहारी के मध्य की भाषा है। इसकी तीन विभाषाएँ हैं—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। अवधी को ही कोशली या बैसवाड़ी कहते हैं। वास्तव में दक्षिण पश्चिमी अवधी ही बैसवाडी कही जाती है। पूर्वी हिंदी नागरी के अतिरिक्त कैथी में भी कभी-कभी लिखी मिलती है। इस भाषा के कवि हिन्दी-साहित्य के अमर कवि हैं जैसे तुलसी और जायसी।

बहिरंग भाषाएँ—इनका सब से बड़ा भेद यह है कि मध्यदेश की भाषा अर्थात् हिंदी की अपेक्षा ये सब अधिक संहतिप्रधान हैं। हिन्दी की रचना सर्वथा व्यवहृति है पर इन बहिरंग भाषाओं में संहति-रचना भी मिलती है। वे व्यवहृति से संहति की ओर रही हैं। मध्यवर्ती भाषाओं में केवल पूर्वी हिंदी में कुछ संहति पाई जाती है।

लहँदा—यह पश्चिम पंजाब की भाषा है, इसी से कुछ लोग इसे पश्चिमी पंजाबी भी कहा करते हैं। यह जटकी, उच्ची हिंदकी, डिलाही आदि नामों से भी पुकारी जाती है। कुछ विद्वान इसे लहँदी भी कहते हैं पर लहँदा तो संज्ञा है। अतः उसका स्त्रीलिंग नहीं हो सकता।

* अर्धमागधी का ठीक अनुवाद अर्ध-बिहारी है। पूर्वी हिंदी प्राचीन काल में अर्धमागधी प्राकृत के क्षेत्र में ही बोली जाती थी। ध्यान देने की बात है कि साहित्यिक और धार्मिक दृष्टि से अर्धमागधी भाषा का सदा से ऊँचा स्थान रहा है [illegible] से मध्यदेश के समान ही आदर होता रहा है।

लहँदा एक नया नाम ही चल पड़ा है, अब उसमें अर्थ के द्योतन की शक्ति आ गई है।

लहँदा की चार विभाषाएँ हैं—(१) एक केन्द्रीय लहँदा जो नमक की पहाड़ी के दक्षिण-प्रदेश में बोली जाती है और जो टकसाली मानी जाती है, (२) दूसरी दक्षिणी अथवा मुलतानी जो मुलतान के आस-पास बोली जाती है, (३) तीसरी उत्तर-पूर्वी अथवा पोठोधारी और (४) चौथी उत्तर-पश्चिमी और धन्नी। यह उत्तर में हजारा जिले तक पाई जाती है। लहँदा में साधारण गीतों के अतिरिक्त कोई साहित्य नहीं है। इसकी अपनी लिपि लंडा है।

सिन्धी—यह दूसरी बहिरंग भाषा है, और सिंध नदी के दोनों तटों पर बसे हुए सिंध देश की बोली है। इसमें पाँच विभाषाएँ हैं—बिचोली, सिरैकी, लारी, थरली और कच्छी। बिचोली मध्य सिंध की टकसाली भाषा है। सिंधी के उत्तर में लहँदा, दक्षिण में गुजराती और पूर्व में राजस्थानी है। सिंधी का भी साहित्य छोटा सा है। इसकी लिपि लंडा है पर गुरुमुखी और नागरी का भी प्रायः व्यवहार होता है।

मराठी—कच्छी बोली के दक्षिण में गुजराती है। यद्यपि उसका क्षेत्र पहले बहिरंग भाषा का क्षेत्र रह चुका है पर गुजराती मध्यवर्ती भाषा है। अतः यहाँ बहिरंग भाषा की शृङ्खला टूट सी गई है। इसके बाद गुजराती के दक्षिण में मराठी आती है। यही दक्षिणी बहिरंग भाषा है। यह पश्चिमी घाट और अरब समुद्र के मध्य की भाषा है। पूना की भाषा ही टकसाली मानी जाती है। पर मराठी बरार में से होते हुए बस्तर तक बोली जाती है। इसके दक्षिण में द्राविड भाषाएं बोली जाती हैं। पूर्व में मराठी अपनी पड़ोसिन छत्तीसगढ़ी से मिलती है।

मराठी की तीन विभाषाएँ हैं। पूना के आसपास की टकसाली बोली देशी मराठी कहलाती है। यही थोड़े भेद से उत्तर कोंकण में बोली जाती है, इससे इसे कोंकणी भी कहते हैं। पर कोंकणी एक दूसरी मराठी बोली का नाम है जो दक्षिणी कोंकण में बोली जाती है। पारिभाषिक अर्थ में दक्षिण कोंकणी ही कोंकणी मानी जाती है। मराठी की विभाषा बरार की

वगारी है। हल्बी, मराठी और द्रविड़ की खिचड़ी बोली है जो बस्तर में बोली है।

मराठी भाषा तद्धितान्त, नामधातु आदि शब्दों का व्यवहार विशेष रूप से होता है। इसमें वैदिक स्वर के भी कुछ चिह्न मिलते हैं।

बिहारी—पूर्व की ओर आने पर सब से पहिली बहिरंग भाषा बिहारी मिलती है। बिहारी केवल बिहार में ही नहीं, संयुक्त प्रांत के पूर्वी भाग अर्थात् गोरखपुर-बनारस कमिश्नरियों से लेकर पूरे बिहार प्रांत में तथा छोटा नागपुर में भी बोली जाती है यह पूर्वी हिंदी की चचेरी बहिन मानी जा सकती है। इसकी तीन विभाषाएँ हैं—(१) मैथिली, जो गंगा के उत्तर दरभंगा के आसपास बोली जाती है। (२) मगही, जिसके केन्द्र पटना और गया हैं। (३) भोजपुरी, जो गोरखपुर और बनारस कमिश्नरियों से लेकर बिहार प्रांत के आरा (शाहाबाद), चम्पारन और सारन जिलों में बोली जाती है। यह भोजपुरी अपने वर्ग की ही मैथिली—मगही—से इतनी भिन्न होती है कि चैटर्जी भोजपुरी को एक पृथक् वर्ग में ही रखना उचित समझते हैं।

बिहार में तीन लिपियाँ प्रचलित हैं। छपाई नागरी लिपि में होती है। साधारण व्यवहार में कैथी चलती है और कुछ मैथिल में मैथिली लिपि चलती है।

उड़िया—ओड्री उत्कली अथवा उड़िया उड़ीसा की भाषा है। इसमें कोई विभाषा नहीं है। इसकी एक खिचड़ी बोली है जिसे भत्री कहते हैं। भत्री में उड़िया, मराठी और द्रविड़ तीनों आकर मिल गई हैं। उड़िया का साहित्य अच्छा बड़ा है।

बंगाली—बंगाल की भाषा प्रसिद्ध साहित्य-सम्पन्न भाषाओं में से एक है। इसकी तीन विभाषाएँ हैं। हुगली के आस पास की पश्चिमी बोली टकसाली मानी जाती है। बँगला लिपि देवनागरी का ही एक रूपांतर है।

आसामी—बहिरंग समुदाय की अंतिम भाषा है। यह आसाम की भाषा है। वहाँ के लोग इसे असामिया कहते हैं। आसामी यद्यपि बंग से बहुत कुछ मिलती है तो भी व्याकरण और उच्चारण में पर्या

पाया जाता है। यह भी एक प्रकार की बँगला लिपि मे ही लिखी जाती है। असामी की कोई सच्ची विभाषा नही है।

३—ऐतिहासिक विकास

पूर्व हिंदी - यह कहा जा सकता है कि सब से पूर्व नौवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे अपभ्रंश भाषा विकसित हो कर पूर्व-हिंदी के रूप मे परिणत हो गई। दसवीं, ग्यारहवी सदी में हेमचन्द्र ने जो कविताएँ लिखीं, उन्हे पूर्व-हिदी की कविता कहा जा सकता है। सिरहपा का समय ९वी सदी माना जाता है। उस की भाषा पूर्व-हिंदी का प्रारम्भिक रूप है। चंद्रवरदाई ने भी पूर्व-हिंदी मे काव्य-रचना की। पूर्व-हिदी का काल नौवीं सदी से १४वीं सदी के प्रारम्भ तक गिना जा सकता है। इस काल मे मुख्यतः वीर काव्य की ही रचना हुई। इस काल की रचनाओं की भाषा को दो भागों मे बाँटा जा सकता है—

१ राजस्थानी ढंग जिसे डिंगल भी कहा जाता है।

२ पुरानी ब्रजभाषा जिसे पिंगल भी कहा जाता है।

डिंगल ग्रन्थों की अपेक्षा पिंगल ग्रन्थों मे प्राचीन शैली और अपभ्रंश की अधिकता है। सम्भवतः इसे तब अधिक सम्मान-सूचक समझा जाता था।

मध्य हिंदी—हिंदी का मध्य काल चौदहवी सदी के प्रथमचरण (सन् १३१८) से प्रारम्भ होकर उन्नीसवी सदी के मध्य (सन् १८५०) तक माना जाता है। इस मध्य काल के भी दो भाग किये जा सकते हैं—

१ पूर्व मध्यकाल (सन् १३१८ से १६५०)

२ उत्तरी मध्यकाल (सन् १६५१ से १८५०)

इस मध्यकाल मे प्रारम्भ मे हिन्दी के सभी रूप विकसित होकर पृथक्-पृथक् सत्ता धारण कर गए। इनमे तीन मुख्य थे—ब्रज, अवधी और खड़ी बोली। इन मे से ब्रज और अवधी साहित्यिक भाषाएँ बनीं, अत. उन्हे विशेष सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। परन्तु यह बात एकदम नहीं हो गई। यह मध्यकाल सन्त कवियों का काल है, उनमे से ...क ने भाषा की शुद्धता की ...रा भी परवाह नहीं की। कबीर उन मे

प्रमुख हैं। कबीर बहुत अधिक लोकप्रिय हुए, परन्तु भाषा की शुद्धता की उन्होंने एकान्त उपेक्षा की। इस कारण ब्रज और अवधी के लेखकों को एक बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। परन्तु इन साहित्यिक भाषाओं के सौभाग्य से सूर और तुलसीदास का जन्म हुआ और इन्होंने ब्रज भाषा को बहुत समुन्नत रूप दे दिया। यद्यपि अपभ्रंश और कतिपय अन्य भाषाओं की छाप उन की रचनाओं पर भी देखी जा सकती है। यहां तक कि भिखारी-दास ने गोस्वामी तुलसीदास की भाषा के सम्बन्ध में लिखा—

तुलसी गंग दुवौ भये सुकविन के सरदार।
जिन की कविता में मिली भाषा विविध प्रकार॥

ब्रजभाषा का पूर्ण विकास तो शृंगार रस के कवियों ने ही किया। बिहारी, देव आदि कवियों की भाषा बहुत मंजी हुई, विकसित और परिष्कृत है। बिहारी के समय से ही उत्तर मध्यकाल का प्रारम्भ होता है। इस काल को रीतिकाल भी कहा जाता है।

आधुनिक युग—उत्तर मध्यकाल में वर्तमान खड़ी बोली का भी पर्याप्त विकास हुआ और उस में साहित्यिक रचनाएँ की जाने लगीं। सर्वश्री गोकुलनाथ, लल्लूलाल, मक्खनलाल आदि इसी काल में हुए। उसके बाद सन् १८५० से हिन्दी में आधुनिक युग का प्रारम्भ होता है। इस काल का प्रारम्भ स्वामी दयानन्द के साथ हुआ और इस काल पर सब से गहरी छाप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पड़ी। सन् १८५० से लेकर १९१० तक उत्तर-कालीन हिंदी का युग है। पिछले महायुद्ध के प्रारम्भ के आसपास श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय और मुन्शी प्रेमचन्द से वर्तमान युग का प्रारम्भ होता है।

आधुनिक युग में हिन्दी-गद्य का विशेष विकास हुआ। अपने इस प्रथम भाग में हम मुख्यतः उन्नीसवीं शताब्दी में लिखे गए ग्रन्थों में से ही गद्यांश उद्धृत कर रहे हैं।

बाबू श्यामसुन्दर दास के कथनानुसार—"आधुनिक युग की सब से बड़ी विशेषता है खड़ी बोली में गद्य का विकास। इस भाषा का इ[illegible] बड़ा ही रोचक है। यह भाषा मेरठ के चारों ओर के प्रदेश [illegible]

है और पहले वहीं तक इस के प्रचार की सीमा थी, बाहर इसका बहुत कम प्रचार था। पर जब मुसलमान इस देश मे बस गए और उन्होंने यहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया तब दिल्ली मे मुसलमानी शासन का केन्द्र होने के कारण विशेष रूप से उन्होंने उसी प्रदेश की भाषा खड़ी बोली को अपनाया। यह कार्य एक दिन मे नहीं हुआ। अरब, फारस और तुर्किस्तान से आए हुए सिपाहियों को यहाँ वालो से बातचीत करने मे पहले बड़ी कठिनता होती थी। न ये उनकी अरबी, फारसी समझते थे और न वे इनकी हिंदवी। पर बिना वाग्व्यवहार के काम चलना असम्भव था, अत. दोनों ने दोनों के कुछ-कुछ शब्द सीख कर किसी प्रकार आदान प्रदान का मार्ग निकाला। यों मुसलमानों की उर्दू (छावनी) मे पहले पहल एक खिचड़ी पकी, जिसमे दाल चावल सब खड़ी बोली के थे, सिर्फ नमक आगंतुकों ने मिलाया। आरम्भ मे तो वह निरी बाजारू बोली थी, धीरे व्यवहार बढ़ने पर और मुसलमानों को यहाँ की भाषा के ढाँचे का ठीक ठीक ज्ञान हो जाने पर इसका रूप कुछ स्थिर हो चला। जहाँ पहले शुद्ध, अशुद्ध बोलने वालों से सही-गलत बोलवाने के लिये शाहजहाँ को "शुद्धो सहीह इत्युक्तो ह्यशुद्धो गलत. स्मृत:" का प्रचार करना पड़ा था, वहाँ अब इसकी कृपा मे लोगों के मुँह से शुद्ध-अशुद्ध न निकल कर सही गलत निकला करता है। आजकल जैसे अँगरेजी पढ़े-लिखे भी अपने नौकर से एक ग्लास पानी न माँगकर एक गिलास ही माँगते हैं, वैसे उस समय मुख-सुख उच्चारण और परस्पर बोध-सौकर्य के अनुरोध से वे लोग अपने ओजवेक का उजबक, कुतका का कोतका कर लेने देते और स्वयं करते थे, एवं ये लोग बेरहमन सुन कर भी नहीं चौंकते थे। बैसवाड़ी हिंदी, बुँदेलखंडी हिंदी, पंडिताऊ हिंदी और बाबू इंगलिश की तरह यह उस समय उर्दू हिंदी कहलाती थी, पर पीछे केवल उर्दू शब्द स्वयं भाषा बन कर उसी प्रकार उस भाषा के लिये प्रयुक्त होने लगा, जिस तरह संस्कृत वाक् के लिये केवल संस्कृत शब्द। मुसलमानों ने अपनी संस्कृति के प्रचार का सब से बड़ा साधन मान कर इस भाषा को खूब उन्नत किया और जहाँ जहाँ फैलते गए, वे इसे अपने साथ लेते गए। उन्होंने इस में ...ल फारसी तथा अरबी के शब्दों को ही उनके शुद्ध रूप मे अधिकता

नहीं कर दी, बल्कि उसके व्याकरण पर भी फ़ारसी अरबी व्याकरण का रंग चढ़ाया। इस अवस्था में इसके दो रूप हो गए, एक तो हिंदी कहलाता रहा और दूसरा उर्दू नाम से प्रसिद्ध हुआ। दोनों के प्रचलित शब्दों को ग्रहण कर के, पर व्याकरण का संगठन हिंदी के ही अनुसार रख कर, अँगरेजों ने इसका एक तीसरा रूप हिंदुस्तानी बनाया। अतएव इस समय खड़ी बोली के तीन रूप वर्तमान हैं—(१) शुद्ध हिंदी जो हिंदुओं की साहित्यिक भाषा है और जिसका प्रचार हिन्दुओं में है, (२) उर्दू जिसका प्रचार विशेषकर मुसलमानों में है और जो उनके साहित्य की और शिष्ट मुसलमानों तथा हिंदुओं की घर के बाहर की बोलचाल की भाषा है, और (३) हिन्दुस्तानी जिसमें साधारणतः हिंदी उर्दू दोनों के शब्द प्रयुक्त होते हैं और जिसका बहुत से लोग बोलचाल में व्यवहार करते हैं। इसमें अभी साहित्य की रचना बहुत कम हुई है। इस तीसरे रूप के मूल में राजनीतिक कारण है।”

‘भ्रमवश हिन्दी में खड़ी बोली गद्य के जन्मदाता लल्लूलाल जी माने जाते हैं। यह भ्रम उन अँगरेजों के कारण फैला है जो अपने आने के पहले गद्य का अस्तित्व हिंदी में स्वीकार ही नहीं करते। परन्तु यह बात असत्य है। अकबर बादशाह के यहाँ संवत् १६२० के लगभग गंग भाट था। उस ने “चंद छंद बरनन की महिमा” खड़ी बोली के गद्य में लिखी है। उस के पहले का कोई प्रामाणिक गद्य लेख न मिलने के कारण उसे खड़ी बोली का प्रथम गद्यलेख मानना चाहिये। इसी प्रकार १६८० में जटमल ने “गोरा बादल की कथा” भी इसी भाषा के तत्कालीन गद्य में लिखी है। लल्लूलाल जी हिन्दी का आधुनिक रूप देने वाले भी नहीं हैं। उनसे और पहले के मुन्शी सदासुख का किया हुआ भागवत का हिंदी अनुवाद सुखसागर वर्तमान है। इस के अनंतर इंशा अल्लाखाँ, लल्लूलाल जी तथा सदल मिश्र का नम्बर आता है। इंशाअल्लाखाँ की रचना में शुद्ध तद्भव शब्दों का प्रयोग है। उन की भाषा सरल और सुंदर है पर वाक्यों की रचना उर्दू ढंग की है। इसीलिये कुछ लोग उसे हिंदी का नमूना न मानकर उर्दू का प्रारंभिक नमूना मानते हैं। लल्लूलाल जी के प्रेमसागर से सदल मिश्र के नासिकेतोपाख्यान की भाषा अधिक पुष्ट और सुंदर है।

प्रेम-सागर के भिन्न भिन्न प्रयोगों के रूप स्थिर नहीं देख पडते । करि, करिके, बुलाय, बुलाय करि, बुलाय करिके, बुलाय कर, आदि अनेक रूप अधिकता से मिलते हैं। सदल मिश्र मे यह बात नही है। सारांश यह है कि यद्यपि फोर्टविलियम कालेज के अधिकारियों, विशेषकर डा० गिलक्रिष्ट की कृपा से हिंदी गद्य का प्रचार बढा और उसका भावी मार्ग प्रशस्त तथा सुव्यवस्थित हो गया, पर लल्लूलाल जी उसके जन्मदाता नहीं थे । जिस प्रकार मुसलमानों की कृपा से हिंदी का प्रचार और प्रसार बढा, उसी प्रकार अंगरेजों की कृपा से हिन्दी का गद्य रूप परिमार्जित और स्थिर होकर हिंदी साहित्य मे एक नया युग उपस्थित करने का मूल आधार अथवा प्रधान कारण हुआ ।

"उपर्युक्त चार लेखकों ने हिंदी की पहलेपहल प्रतिष्ठा की और उस मे ग्रंथ-रचना की चेष्टा की। इन में मुन्शी सदासुख और सदल मिश्र की भाषा अधिक उपयुक्त ठहरती है। इनमे सदासुख को अधिक सम्मान मिलना चाहिए, क्योंकि ये कुछ पहले भी हुए और इन्होंने अधिक साधु भाषा का व्यवहार भी किया ।

"छापेखानों के फैल जाने पर हिंदी की पुस्तकें शीघ्रता से बढ चलीं। इसी समय सरकारी अंगरेजी स्कूल भी खुले और उन मे हिंदी उर्दू का झगडा किया गया। मुसलमानों की ओर से सरकार को यह समझाया गया कि उर्दू को छोड कर दूसरी भाषा संयुक्त प्रांत मे है ही नही । कचहरियों मे उर्दू का प्रयोग होता है, मदरसों मे भी होना चाहिए । परन्तु सत्य का तिरस्कार बहुत दिनों तक नही किया जा सकता । देवनागरी लिपि की सरलता और उसका देशव्यापी प्रचार अंगरेजों की दृष्टि मे आ चुका था। लिपि के विचार से उर्दू की क्लिष्टता और अनुपयुक्तता भी आँखों के सामने आती जा रही थी। परन्तु नीति के लिये सब कुछ किया जा सकता है। अंगरेज समझकर भी नही समझना चाहते थे । इसी समय युक्त प्रान्त मे स्कूलों के इन्स्पेक्टर हिंदी के पक्षपाती काशी के राजा शिवप्रसाद नियुक्त किए गए। राजा साहब के प्रयत्न से देवनागरी लिपि स्वीकार की गई और स्कूलों मे हिंदी को स्थान मिला। राजा साहब ने अपने अनेक परिचित मित्रों से पुस्तकें लिखवाईं और स्वयं भी लिखीं।

उन की लिखी हुई कुछ पुस्तकों मे अच्छी हिंदी मिलती है, पर अधिकांश मे उर्दू प्रधान भाषा ही उन्होंने लिखी। ऐसा उन्होंने समय और नीति को देखते हुए अच्छा ही किया। इसी समय के लगभग हिंदी मे संस्कृत के शकुन्तला नाटक आदि का अनुवाद करनेवाले राजा लक्ष्मण सिंह हुए, जिन की कृतिओं मे सर्वत्र शुद्ध संस्कृत-विशिष्ट खड़ी बोली प्रयुक्त हुई है। दोनों राजा साहबों ने अपने अपने ढंग से हिंदी का महान उपकार किया था, इस मे कुछ भी सन्देह नहीं।"

"भारतेंदु हरिश्चन्द्र के कार्य-क्षेत्र मे आते ही हिंदी मे समुन्नति का युग आया। अब तक तो खड़ी-बोली-गद्य का विकास होता रहा और पाठशालाओं के उपयुक्त छोटी छोटी पुस्तकें लिखी जाती रही, पर अब साहित्य के अनेक अंगों पर ध्यान दिया गया और उन मे पुस्तक रचना का प्रयत्न किया गया। भारतेंदु ने अपने बंगाल भ्रमण के उपरांत बंगला के नाटकों का अनुवाद किया और मौलिक नाटकों की रचना की। कविता मे देश-प्रेम के भावों का प्रादुर्भाव हुआ। पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं। हरिश्चन्द्र मैगजीन और हरिश्चन्द्र पत्रिका भारतेंदु जी के पत्र थे। छोटे छोटे निबन्ध भी लिखे जाने लगे। उन के लिखने वालों मे हरिश्चन्द्र के अतिरिक्त पण्डित बालकृष्ण भट्ट, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहनसिंह आदि थे। नाटककारों मे श्रीनिवासदास और राधाकृष्णदास का नाम उल्लेखनीय है। "परीक्षागुरु' नामक एक अच्छा उपन्यास भी उस समय लिखा गया। आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं मे स्वामी दयानन्द के उपरांत सबसे प्रसिद्ध पण्डित भीमसेन शर्मा हुए जिन्हों ने आर्यसमाज का अच्छा साहित्य तैयार किया। पण्डित अंबिकादत्त व्यास भी इस काल के मौलिक लेखकों मे से थे। अखबार-नवीसों मे बाबू बालमुकुन्द गुप्त सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार हम देखते हैं कि गद्य के विभिन्न अंगों को लेकर बड़े ही उत्साह पूर्वक उसमे मौलिक रचनाएँ करने वाले हिंदी के ये उन्नायक बड़े ही शुभ अवसर पर उदय हुए थे। इन की वाणी मे हिंदी के बाल्यकाल की झलक है, पर यौवनागम की सूचना भी मिलती है। देशप्रेम और जातिप्रेम की भावनाओं को लेकर

प्रेम-सागर के भिन्न भिन्न प्रयोगों के रूप स्थिर नहीं देख पड़ते। करि, करिके, बुलाय, बुलाय करि, बुलाय करिके, बुलाय कर, आदि अनेक रूप अधिकता से मिलते हैं। सदल मिश्र में यह बात नहीं है। सारांश यह है कि यद्यपि फोर्टविलियम कालेज के अधिकारियों, विशेषकर डा० गिलक्रिष्ट की कृपा से हिंदी गद्य का प्रचार बढ़ा और उसका भावी मार्ग प्रशस्त तथा सुव्यवस्थित हो गया, पर लल्लूलाल जी उसके जन्मदाता नहीं थे। जिस प्रकार मुसलमानों की कृपा से हिंदी का प्रचार और प्रसार बढ़ा, उसी प्रकार अंगरेजों की कृपा से हिन्दी का गद्य रूप परिमार्जित और स्थिर होकर हिंदी साहित्य में एक नया युग उपस्थित करने का मूल आधार अथवा प्रधान कारण हुआ।

"उपर्युक्त चार लेखकों ने हिंदी की पहलेपहल प्रतिष्ठा की और उस में ग्रंथ-रचना की चेष्टा की। इन में मुन्शी सदासुख और सदल मिश्र की भाषा अधिक उपयुक्त ठहरती है। इनमें सदासुख को अधिक सम्मान मिलना चाहिए, क्योंकि ये कुछ पहले भी हुए और इन्होंने अधिक साधु भाषा का व्यवहार भी किया।

"छापेखानों के फैल जाने पर हिंदी की पुस्तकें शीघ्रता से बढ़ चलीं। इसी समय सरकारी अंगरेजी स्कूल भी खुले और उन में हिंदी उर्दू का झगड़ा किया गया। मुसलमानों की ओर से सरकार को यह समझाया गया कि उर्दू को छोड़ कर दूसरी भाषा संयुक्त प्रांत में है ही नहीं। कचहरियों में उर्दू का प्रयोग होता है, मदरसों में भी होना चाहिए। परन्तु सत्य का तिरस्कार बहुत दिनों तक नहीं किया जा सकता। देवनागरी लिपि की सरलता और उसका देशव्यापी प्रचार अंगरेजों की दृष्टि में आ चुका था। लिपि के विचार से उर्दू की क्लिष्टता और अनुपयुक्तता भी आँखों के सामने आती जा रही थी। परन्तु नीति के लिये सब कुछ किया जा सकता है। अंगरेज समझकर भी नहीं समझना चाहते थे। इसी समय युक्त प्रांत में स्कूलों के इन्स्पेक्टर हिंदी के पक्षपाती काशी के राजा शिवप्रसाद नियुक्त किए गए। राजा साहब के प्रयत्न से देवनागरी लिपि स्वीकार की गई और स्कूलों में हिंदी को स्थान मिला। राजा साहब ने अपने अनेक परिचित मित्रों से पुस्तकें लिखवाईं और स्वयं भी लिखीं।

उन की लिखी हुई कुछ पुस्तकों मे अच्छी हिंदी मिलती है, पर अधिकांश मे उर्दू प्रधान भाषा ही उन्होंने लिखी। ऐसा उन्होंने समय और नीति को देखते हुए अच्छा ही किया। इसी समय के लगभग हिंदी मे संस्कृत के शकुन्तला नाटक आदि का अनुवाद करनेवाले राजा लक्ष्मण सिंह हुए, जिन की कृतिओं मे सर्वत्र शुद्ध संस्कृत-विशिष्ट खड़ी बोली प्रयुक्त हुई है। दोनों राजा साहबों ने अपने अपने ढंग से हिंदी का महान उपकार किया था, इस मे कुछ भी सन्देह नहीं।"

"भारतेंदु हरिश्चन्द्र के कार्य-क्षेत्र मे आते ही हिंदी मे समुन्नति का युग आया। अब तक तो खड़ी-बोली-गद्य का विकास होता रहा और पाठ-शालाओं के उपयुक्त छोटी छोटी पुस्तकें लिखी जाती रहीं, पर अब साहित्य के अनेक अंगों पर ध्यान दिया गया और उन मे पुस्तक रचना का प्रयत्न किया गया। भारतेंदु ने अपने बंगाल भ्रमण के उपरांत बंगला के नाटकों का अनुवाद किया और मौलिक नाटकों की रचना की। कविता मे देश-प्रेम के भावों का प्रादुर्भाव हुआ। पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं। हरिश्चन्द्र मैगजीन और हरिश्चन्द्र पत्रिका भारतेंदु जी के पत्र थे। छोटे छोटे निबन्ध भी लिखे जाने लगे। उन के लिखने वालों मे हरिश्चन्द्र के अतिरिक्त पण्डित बालकृष्ण भट्ट, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, बदरी-नारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहनसिंह आदि थे। नाटककारों मे श्रीनिवासदास और राधाकृष्णदास का नाम उल्लेखनीय है। 'परीक्षागुरु' नामक एक अच्छा उपन्यास भी उस समय लिखा गया। आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं मे स्वामी दयानन्द के उपरांत सबसे प्रसिद्ध पण्डित भीमसेन शर्मा हुए जिन्हों ने आर्यसमाज का अच्छा साहित्य तैयार किया। पण्डित अंबिकादत्त व्यास भी उस काल के मौलिक लेखकों में से थे। अखबार-नवीसों मे बाबू बालमुकुन्द गुप्त सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार हम देखते हैं कि गद्य के विभिन्न अंगों को लेकर बड़े ही उत्साह पूर्वक उसमे मौलिक रचनाएँ करने वाले हिंदी के ये उन्नायक बड़े ही शुभ अवसर पर उदय हुए थे। इन की वाणी मे हिंदी के बाल्यकाल की झलक है, पर यौवनागम की सूचना भी मिलती है। देशप्रेम और जातिप्रेम की भावनाओं को लेकर

साहित्यक्षेत्र में आने के कारण इन सब की रचनाएँ हिंदी मे अपने ढंग की अनोखी हुई हैं।

वर्तमान युग—जैसा कि हमने ऊपर कहा है, १९वीं सदी के अन्त, बल्कि बीसवी सदी की प्रथम दशाब्दी तक हिन्दी पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की बहुत गहरी छाप रही। उसके बाद, पिछले महायुद्ध के साथ-साथ हिन्दी में वर्तमान युग का प्रारम्भ होता है। वर्तमान युग मे हिंदी की बहुत अभिवृद्धि हुई है और उसका रूप भी निश्चित-सा हो गया। यद्यपि अभी हिंदी के विकास का युग समाप्त नही हुआ। हिंदी गद्य की इस युग मे विशेष उन्नति हुई है। अपने ग्रंथ के इस भाग मे इस वर्तमान युग मे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। इस युग का वर्णन दूसरे भाग मे किया जायगा और उसी भाग मे हिंदी के वर्तमान रूप के सम्बन्ध मे विस्तार से लिखा भी जायगा।

४—हिन्दी का सर्वप्रथम ग्रन्थ

श्री ब्रजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय के शब्दों मे—

"उन्नीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ था। ब्रिटिश शासन-वृक्ष की जड़ें गहरी पैठ रही थीं, और लार्ड वैलजली ने महसूस किया कि जिलों में नियुक्त होने वाले अंगरेज कर्मचारियों को भारतीय भाषाएँ सीखना आवश्यक है, ताकि वे शासन की बागडोर भली-भांति सँभाल सकें, इसलिए सिविलि-यनों को देशी भाषाएँ सिखाने के उद्देश्य से सन १८०० ई० मे फ़ोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई और डाक्टर गिलक्राइस्ट (Gilchrist) हिंदुस्तानी के प्रथम प्रोफैसर नियुक्त हुए।

इसी प्रकरण मे यह बताना अप्रासंगिक न होगा कि ४ मई सन १८०१ को फोर्ट विलियम कालेज के लिए मुंशियों की नियुक्ति हुई। मुन्शी मीर बहादुर अली को मुख्य और तारिणीचरण मित्र को द्वितीय मुन्शी नियुक्त किया गया–क्रमशः दो सौ रुपये मासिक पर। इनके अधीन बारह मुंशियों के नाम हैं:—१) मुगल खाँ, (२) गुलाम अकबर, (३) नम्ला, (४) मीर ., (५) गुलाम अशरफ, (६) हिलालु-ीन, (७) मुहम्मद सदीक, (८) । खाँ, (९) गुलाम गौस, (१०) कुन्दनलाल, (११) काशीराज) मीर हैदरबख्श ।

पर फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना और डाक्टर गिलक्राइस्ट की नियुक्ति के बाद सिविलियनों को हिन्दुस्तानी भाषाएँ सिखाने मे बड़ी कठिनाई पड़ी, क्योंकि उचित पाठ्य-पुस्तकों का अभाव था। इसलिए कालेज के अधिकारियों ने उचित पाठ्य-पुस्तकें तैयार कराने के लिए आज्ञा दी। हिन्दुस्तानी प्रोफेसर डाक्टर गिलक्राइस्ट को अपने काम मे बड़ी कठिनाई महसूस हुई, और इसलिए उन्होंने फोर्ट विलियम कालेज के सेक्रेटरी को ४ जनवरी को एक पत्र लिखा, जिसका एक अवतरण नीचे दिया जाता है—

".. हिन्दुस्तानी ब्रजभाषा के उस भाग मे मुझे उचित सहायता नही मिलती, क्योंकि मुँशी लोग 'भाखा, को बहुत ही कम समझते है। इस लिए मेरी प्रार्थना है कि ५०) मासिक पर किसी उपयुक्त व्यक्ति को कालेज के इस कठिन कार्य में सहायता देने के लिए नियुक्त करने की आज्ञा दी जाय।..."

फलस्वरूप गिलक्राइस्ट को ५०) मासिक पर 'भाखा'-मुन्शी नियुक्त करने की आज्ञा मिल गई, और लल्लूलाल कवि ५०) मासिक पर 'भाखा' मुंशी नियुक्त हुए।

सन १८०२ ई० मे नकलियाते हिन्दी—हिन्दी-कथा-संग्रह-भी प्रकाशित हुआ।

सन् १८०३ ई० मे प्रेमसागर का कुछ भाग छपा। लल्लूलाल कवि ने मूल ब्रजभाषा मे प्रेमसागर का अनुवाद किया। यह सन १८०५ में छपा था। सम्पूर्ण प्रेमसागर सन् १८१० ई० मे संस्कृत प्रेस में लल्लूलाल कवि द्वारा छपाया गया।

सन १८०५ ई० मे सिहासन बत्तीसी छपी।

सन १८०५ ई० मे बैताल पचीसी भी छपी थी।

सन १८१५ मे सभाविलास पुस्तक भी प्रकाशित हुई। सभाविलास कविता संग्रह था और उस का संकल भाषा-मुंशी लल्लूलाल ने किया था। इस पुस्तक का संकलन भाषा के विद्यार्थियों के लिए किया गया था, अर्थात् 'सभाविलास' फोर्ट विलियम कालेज के विद्यार्थियों के लिए

पाठ्य-पुस्तक थी। 'सभा विसास' खिदरपुर स्थित संस्कृत प्रेस में छपी थी।

संस्कृत प्रेस के सम्बन्ध मे यह बताना भी जरूरी है कि संस्कृत प्रेस के मालिक बाबूराम नामक व्यक्ति थे। बाबूराम त्रिलोचन घाट मिर्जापुर के रहने वाले थे। वे सारस्वत ब्राह्मण थे। बाबूराम सर्वप्रथम हिन्दुस्तानी थे, जिन्होंने सन १८०६ मे अपना प्रैस खोला। पं० बाबूराम खिदरपुर मे रहते थे और वहीं पर उन का प्रेस भी था, जहाँ से वे हिन्दी और संस्कृत की छपाई करते थे।

सन १८१५ ई० मे संस्कृत प्रेस लल्लूलाल की सम्पत्ति हो गया। जहाँ तक मैंने अनुसन्धान किया है, तुलसीदास जी की विनयपत्रिका को नागरी लिपि मे लल्लूलाल जी ने छापा था।

लल्लूलाल जी भाषा-मुन्शी के पद पर १८२२ तक रहे और सन १८२४ ई० मे उन के स्थान पर गंगाप्रसाद शुक्ल की नियुक्ति हुई।"

सर्वश्री आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय और मुंशी प्रेमचन्द के साथ हिंदी मे जिस वर्तमान युग का प्रारम्भ होता है, उसका वर्णन इस ग्रन्थ मे दूसरे भाग के किया जायगा।

कपिलवस्तु
मेरठ

धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री

—o—

परिचय

उत्तर मध्य-कालीन तथा आधुनिक काल के प्रमुख गद्य-लेखकों का परिचय इस प्रकार है—

गुरु गोरखनाथ—चौदवीं सदी के अन्त मे गुरु गोरखनाथ का जन्म हुआ। वह एक माने हुए सिद्ध थे। सिद्ध प्रमाण, गोरखनाथ की बानी, गोरख नाथ के पद, ज्ञान सिद्धान्त जोग आदि आप की अनेक रचनाएँ आज भी उपलब्ध हैं। इन रचनाओं का निर्माणकाल पन्द्रहवीं सदी के प्रारम्भ मे माना जाता है। दो उदाहरण:—

१. "सो वह पुरुष संपूर्ण तीर्थस्नान करि चुको अरु संपूर्ण पृथ्वी

ब्राह्मननि कौं दै चुको और सहस्त्र जज्ञ करि चुकौ अरु देवता सर्व पूजि चुकौ अरु पितरनि कौ संतुष्ट करि चुकौ स्वर्गलोक प्राप्त करि चुको जा मनुष्य को मन छनमात्र ब्रह्म के विचार बैठो।"

२. "श्री गुरु परमानन्द तिन को दण्डवत है। हैं कैसे परमानन्द, आनन्द स्वरूप है सरीर जिन्हि को। तिन्हि के नित्य गाएतें सरीर चेतन्नि अरु आनन्दमय होतु है। मैं जु हौं गोरखि अरु मछन्दर नाथ को दण्डवत करत हौं। हैं कैसे वे मछन्दर नाथ आत्म जोति निश्चल है अन्तहकरन जिनके अरु मूलद्वार तैं छह चक्र जिनि नीकी तरह जानैं।"

गोस्वामी विट्ठलदास—सोलहवीं सदी के मध्य मे गोस्वामी विट्ठलदास का समय माना जाता है। उन के पिता का नाम गोस्वामी वल्लभाचार्य था। विट्ठलदास ने 'शृङ्गाररस मंडल' नाम का ग्रन्थ लिखा है। उसके गद्य का एक नमूना है—

"प्रथम की सखी कहतु है। श्री गोपजन के चरण विषै सेवक की दासी करि जो इन को प्रेमामृत मे डूबि कै इन के मन्द हास्य ने जीते हैं। अमृत समूह ताकरि निकुंज विषै शृङ्गार रस श्रेष्ठ रसना कीनो सो पूर्ण होत पाई।"

गोस्वामी गोकुलनाथ—गोस्वामी विट्ठलदास के सुपुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ ने गद्य-लेखन मे और भी अधिक ख्याति प्राप्त की। उन की लिखी तीन पुस्तकें उपलब्ध होती हैं—चौरासी वैष्णवों की वार्ता और वनयात्रा। गोकुलदास जी के गद्य का एक उदाहरण है—

"एक दिन भण्डारी ने वा ब्रजवासी मुं कही जो तुम सूरत गाँम मे जाय के भेंट ले आवो। जब ब्रजवासी ने कही सूरत गाँम काहा होवे है। भण्डारी नें कही सूरत गाँम सहेर है जब वा ब्रजवासी नें कही भेंटपत्र और प्रसाद की थेली देवो तो मैं सूरत जाऊँगो। जब उहांमुं प्रसाद और पत्र लेके और रसोई करके सूरत की तैयारी करी और कही जो भैया पर मैं तो सूरत जाउंगो और तुं आवेगो के नहीं आवेगो। जब श्री ठाकुर ने कही जो मैं आवुंगो जब वानें कही जो तेरे छोटे छोटे पाव हैं और छोटे हाथ हैं तुं कैसे चल सकेंगो। जब श्री

ठाकुरजी ने कही जैं थोड़ो थोड़ो चलुंगो। और थोड़ी कांधे पर बैठूंगो। ये बात कहिके श्री ठाकुर जी ब्रजवासी के साथ चले वे उहां ते ब्रजवासी जब दो तीन कोस आये तब श्री ठाकुरजी ने कही मै थक गयो हूं। जब वा ब्रजवासी के कॉधा पर बैठे जब थोरो दूर चले तब साझ भई तब श्री ठाकुरजी ने कही जो आज उहाँ सोए रहो फेर काल सूरत चलेंगे फेर उहा सोय रहे फेर सवारे उठे सो एसे ठिकाणे उठे जहांसुं सूरत दोय कोश ही हती। तब उहातें चले फेर सूरत आये उहा गाम बाहेर डेरा कीये और उहां श्री ठाकुरजीकुं बैठाय के वो ब्रजवासी पत्र और प्रसाद ले गयो। गाम मे वैष्णावनकुं पहुंच के दियो। वे पत्र बांच के वैष्णव ने विचार कियो जो एक दिन मे पत्र कैसे आयो होयगो। जब ये विचार कियो यामे भेद कुछ अवश्य होयगो। तब वैष्णव नें वाकुं सामग्री दिवाई और एक दिन मे सब ठिकाने फिरके पाच हजार रुपैया एकट्ठे करके और हुंडी करायके तब ब्रजवासी कुं दीनी। सो ब्रजवासी लेके और परेकुं संग लेके उहानें चले। फेर रस्ता मे आनके सोय रहे फेर सवारे उठके पहर दिन चढ्यो गोकुल पुर मे आए फेर भंडारी के पास गयो और दो सीधा मागे। जब भण्डारी ने कही सूरत क्युं गयो नही जब वानें कही सूरत जाय आयोहूं पत्र और वस्त्र लायोहूँ। सो भण्डारीकुं दीये। जब भण्डारी ने पांच हजार की हुंडी और वस्त्र और वैष्णव के कागद देख के चकित होय गयो।"

गंगा नाभादास और जटमल का वर्णन पूर्व हो चुका है।

वैकुंठमणि — का रचनाकाल सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ मे है। उन्हों ने अगहन-महात्म्य और वैशाख-महात्म्य नामक पुस्तकें लिखीं। संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद भी किया। उदा०—

"एक समय नारद जु ब्रह्मा की सभा तैं उठिकै सुमेर पर्वत गए। पुनि गंगा जी को प्रवाह देखि पृथ्वी विषै आये तहाँ सब तीरथन को दरसन करत भए।"

मुन्शी सदासुख लाल— इनका जन्म सन १७४७ और निधन सन [illegible] मे हुआ। मुन्शी जी एक अच्छे कवि थे। उनका उपनाम,

नियाज़ था। वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी मे नौकर थे। हिंदी के अतिरिक्त वह उर्दू और फारसी के भी पण्डित थे। उनका देहान्त प्रयाग मे हुआ, जहां नौकरी छोड कर वह हरि-भजन किया करते थे। मुन्शी सदासुख-लाल ने जिस सुखसागर की रचना की वह आज उपलब्ध नही होता। अनेक समालोचकों की राय है कि मुन्शी सदासुख लाल की शैली लल्लूलाल की शैली से भी अधिक श्रेष्ठ थी। उनकी शैली पर उर्दू मुहावरे का प्रभाव अवश्य पड़ा था, परन्तु वह वास्तव मे विशुद्ध हिन्दी शैली ही थी। उसमे संस्कृत शब्दो की ही प्रधानता थी, कुछ नमूने—

"जो सत्य बात होय उसे कहा चाहिए, को बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढते है कि तात्पर्य इसका जो सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप मे लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढते हैं कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाइए और फुसलाइए और असत्य छिपाइए, व्यभिचार कीजिए, और सुरापान कीजिए, और द्रव्य धन इकठोर कीजिए मन को कि जो तमवृत्ति से भरा है उसे निर्मल न कीजिए। तोता है सो नारायण का नाम लेता है परन्तु उसे ज्ञान तो नहीं है।"

—हिन्दी-भाषा सार, पृ० ५

"इससे जाना गया कि संस्कार का भी प्रमाण नही, आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष मे चाडाल से ब्राह्मण हुए और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुलना ही ब्राह्मण से चाडाल होता है। यद्यपि ऐसे विचार से हमे लोग नास्तिक कहेंगे, हमे इस बात का डर नहीं।

"धन्य कहिए राजा दधीची को कि नारायण की आज्ञा अपने सिर पर चढाई. अपने हाड ऐसे कामी कुटिल-अहंकारी को दे दिये कि उसने हाड। [illegible] वज्र बनाय कर वृत्रासुर से ज्ञानी से युद्ध किया और उसे मारा। जो महाराज की आज्ञा और दधीची के हाड का वज्र न होता तो ग्यारह जन्म लाई वृत्रासुर से युद्ध मे सरवर और प्रबल न होता और न जय पाता।

(सुख-सागर)

सैयद इंशाअल्ला खाँ—इन के पूर्वज समरकंद से भ[illegible] मे आए थे। उनके पिता हकीम मीर माशा अल्ला खाँ मुर्शिदाबा[illegible]

नवाब जुल्फिकार अली खाँ के खास हकीम थे। इंशाअल्ला खाँ बचपन ही से मेधावी और स्वाध्यायप्रिय थे बहुत शीघ्र वह श्रेष्ठ कवि बन गए। नवाब सिराजुद्दौला के मरने के बाद वह दिल्ली चले आए और शाह आलम द्वितीय के दरबार मे रहने लगे। वह स्वयं भी कवि था। इस से उसने इंशा अल्ला खाँ का खूब आदर किया।

गुलाम कादिर ने जब दिल्ली पर आक्रमण कर शाह आलम को अन्धा कर दिया तो इंशा अल्लाखाँ वहाँ से नवाब आसफुद्दौला के यहाँ लखनऊ चले गए। क्रमशः वह नवाब के कृपापात्र बन गए। उनका भाग्य चमक उठा। यह सन् १७८६ की बात है।

परन्तु भाग्यचक्र घूम गया। नवाब और इंशा अल्ला खाँ का वेतन बन्द कर दिया गया। इन्ही दिनों उनके एक पुत्र की मृत्यु हो गई। क्रमशः सैयद साहब को खाने पीने की भी दिक्कत रहने लगी। इन कष्ट के दिनों मे उनके मस्तिष्क मे भी विकार आगया। सन् १८१६ मे उनका देहान्त हो गया। सैयद इंशा अल्ला की शैली पर उर्दू की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि सैयद साहब उर्दू के भी अग्रगण्य लेखक थे।

लल्लूलाल—फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दी शिक्षक श्री लल्लूलाल के सम्बन्ध मे, भूमिका मे, 'हिन्दी का प्रथम ग्रन्थ' शीर्षक के नीचे काफ़ी विस्तार से लिखा जा चुका है। लल्लूलाल का जन्म सन १७६४ मे हुआ। और निधन- सन १८३६ मे। लल्लूलाल की शैली मे व्रजभाषा की काफी पुट है, उसमे विदेशी शब्दों का समावेश नही। उनका 'प्रेमसागर' साहित्यिक दृष्टि से बहुत रसमय रचना है। लल्लूलाल ने उर्दू भाषा मे भी अनेक ग्रन्थ लिखे।

सदल मिश्र—पं० सदल मिश्र लल्लूलाल के ही समकालीन थे, यद्यपि आयु मे और पद मे वह उन से छोटे थे। वह भी फोर्ट विलियम कालेज मे हिन्दी शिक्षक का कार्य करते थे। वही उन्होंने नासिकेतोपाख्यान हिन्दी अनुवाद किया था।

मक्खनलाल—यह एक रईस पंजाबी खत्री थे। वृद्धावस्था मे यह काशी जाकर रहने लगे। वहाँ उन्होंने संस्कृत और हिन्दी का अभ्यास किया। सन् १८४७ मे उन्होंने उर्दू मे 'सुखसागर' लिखा, जिस का बाद मे हिन्दी अनुवाद कर दिया। इस अनुवाद मे भी पहले उर्दू शब्दों की भरमार थी, परन्तु बाद मे उन्हों ने उसे ठीक कर दिया।

राजा शिवप्रसाद—जन्म सन् १८१४ और मृत्यु सन् १८६६ शिवप्रसाद ने सिक्ख युद्धमे अंग्रेजों की बहुत अधिक सहायता की थी अतः विजय के बाद उन्हे शिक्षा विभाग मे इन्सपैक्टर बना दिया गया। उन दिनों युक्तप्रान्त मे उर्दू का बोलबाला था। राजा साहब हिन्दी भाषा तथा नागरी लिपि के समर्थक थे, अतः बहुत प्रयत्नपूर्वक उन्होंने शिक्षा विभाग मे हिन्दी और नागरी का प्रवेश शुरू किया। उर्दू के पक्षपाती कहीं नाराज हो जायं, इस डर से राजा साहब ने शैली मे उर्दू शब्दों तथा उर्दू मुहावरों का जी खोलकर प्रयोग किया। परिणाम यह हुआ कि उनकी भाषा बहुत अधिक उर्दूमय हो गई। उन दिनों हिन्दी मे पाठ्य-पुस्तकों का भी अभाव था, इस से राजा साहब ने स्कूलों मे पढाने के लिए स्वयं बहुत सी पुस्तकें लिखी। "राजा साहब जी जान से इस उद्योग मे थे कि लिपि देवनागरी हो और भाषा ऐसी मिलीजुली रोजमर्रा की बोलचाल की हो कि किसी पक्षवाले को एतराज न हो सके।"

इसी विचार से प्रेरित हो उन्होंने अपनी पहले की लिखी पुस्तकों मे भाषा का मिला-जुला रूप रखा। लोगों का यह कहना कि "राजा साहब की भाषा वर्तमान भाषा से बहुत मिलती है, केवल यह साधारण बोल चाल की ओर अधिक झुकती है और उसमे कठिन संस्कृत अथवा फारसी के शब्द नहीं हैं" उनकी सम्पूर्ण रचनाओं पर नहीं चरितार्थ होता। उनकी पहले की भाषा अवश्य मध्यवर्ती मार्ग की थी। इसके अनुसार उन्होंने स्थान स्थान पर साधारण उर्दू, फ़ारसी तथा अरबी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। साथ ही संस्कृत के चलते और साधारण प्रयोग मे आनेवाले तत्सम शब्दों को भी उन्होंने लिया है। इसके अतिरिक्त 'लेवे'

ऐसे पण्डिताऊ रूप भी वे रख देते हैं। देखिए—"सिवाय इसके मैं तो आप चाहता हूँ कि कोई मेरे मन की थाह लेवे और अच्छी तरह से जाँचे। मारे व्रत और उपवासों के मैंने अपना फूल सा शरीर काँटा बनाया, ब्राह्मणों को दान दक्षिणा देते देते सारा खजाना खाली कर डाला, कोई तीर्थ बाकी न रखा, कोई नदी तालाब नहाने से न छोड़ा, ऐसा कोई आदमी नहीं कि जिसकी निगाह मे मैं पवित्र पुण्यात्मा न ठहरूँ।" कुछ दिन लिखने पढ़ने के उपरांत राजा साहब के विचार बदलने लगे और अन्त मे आते आते वे हमे उस समय के एक कट्टर उर्दू-भक्त के रूप में दिखाई पड़ते हैं। उस समय उनमे न तो वह मध्यम मार्ग का सिद्धांत ही दिखाई पड़ता है, न विचार ही। भावप्रकाशन की विधि, शब्दावली और वाक्य-विन्यास आदि सभी उनके उर्दू ढाँचे में ढले दिखाई पड़ते हैं। जैसे—"इसमे अरबी, फ़ारसी, संस्कृत और अब कहना चाहिए अंगरेजी के भी शब्द कन्धे से कन्धा भिड़ा कर यानी दोशबदोश चमक दमक और रौनक पावें, न इस बेतर्तीबी से कि जैसा अब गड़बड़ मच रहा है, बल्कि एक सल्तनत के मानिंद कि जिसकी हदें कायम हो गई हों और जिसका इन्तिज़ाम मुंतज़िम की अक्लमंदी की गवाही देता है।"

राजा साहब की उपर्युक्त शैली से हिन्दी जनता में असन्तोष होना स्वाभाविक ही था। वैसा ही हुआ भी। आने वाले लेखकों ने राजा शिवप्रसाद की उपर्युक्त शैली को पसन्द नहीं किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती—आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द का जन्म सन १८२५ मे तथा निधन सन १८८३ मे हुआ। भारतवर्ष के वर्तमान युग की सर्वश्रेष्ठ विभूतियों मे स्वामी दयानन्द की गणना है। वह औधीच्य गुजराती ब्राह्मण थे परन्तु उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी को अपना लिया। स्वामी दयानन्द ने अपनी सम्पूर्ण रचनाएं हिन्दी या संस्कृत में ही लिखीं। वह अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति और धुरन्धर व्याख्याता थे। उनकी शैली बहुत मनोरंजक है। अपने समय के वह अत्यन्त श्रेष्ठ हिन्दी गद्य-लेखक थे। बाबू हरिश्चन्द्र को छोड़कर उनका सा गद्य लेखक उनका समकालीन कोई दूसरा व्यक्ति नहीं हुआ। अपने

महान व्यक्तित्व और निरन्तर अध्यवसाय से स्वामी दयानन्द ने भारतवर्ष में प्रत्येक दृष्टि से नवजीवन का संचार कर दिया। वह पुनरुत्थानवादी थे उनकी हिन्दी पर भी संस्कृत की झलक स्पष्टरूप से देखी जाती है। हिन्दी मे स्वामी जी ने बहुत से ग्रन्थ लिखे।

राजा लक्ष्मणसिंह—आगरा के राजा लक्ष्मणसिंह का जन्म सन् १८२७ मे और देहान्त १८९७ मे हुआ। राजा शिवप्रसाद ने हिन्दी मे जिस उर्दू प्रधान शैली का प्रारम्भ किया था, उसके राजा लक्ष्मणसिंह घोर विरोधी थे। उन्होंने संस्कृतप्रधान शैली का आश्रय लिया। राजा साहब डिप्टी कलेक्टर थे, परन्तु सरकारी कार्य से अवसर निकाल प्रायः लिखते लिखाते रहते थे। उन्होंने बहुत से संस्कृत ग्रन्थों का हिन्दी मे अनुवाद किया। 'शकुन्तला' उन मे सब से अधिक प्रसिद्ध है।

"जितना पुष्ट और व्यवस्थित गद्य हमे उन की रचना मे मिलता है उतना पूर्व के किसी भी लेखक की रचना मे नहीं उपलब्ध हुआ था। गद्य के इतिहास मे इतनी स्वाभाविक विशुद्धता का प्रयोग उस समय तक किसी ने नहीं किया। इस दृष्टि से राजा लक्ष्मणसिंह का स्थान तत्कालीन गद्य-साहित्य मे सर्वोच्च है। यदि राजा साहब विशुद्धता लाने के लिये बद्धपरिकर होने मे कुछ भी आगापीछा करते तो भाषा का आज कुछ और ही रूप रहता।"

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को वर्तमान हिन्दी गद्य का पिता माना जाता है। राजा शिवप्रसाद की उर्दू शैली और राजा लक्ष्मणसिंह की संस्कृत शैली का परस्पर समन्वय कर भारतेन्दु ने मध्यम मार्ग पकड़ा, और अपनी प्रतिभा के बल पर अपनी शैली को इतना लोकप्रिय बना दिया कि सम्पूर्ण आधुनिक काल को भारतेन्दु काल कहना अनुचित न होगा।

भारतेन्दु का जन्म सन् १८५० मे तथा निधन सन् १८८४ में हुआ। आधुनिक काल मे हिन्दी गद्य की शैली को एक प्रामाणिक और परिमार्जित रूप देने का श्रेय भारतेन्दु को ही है। अपनी छोटी सी आयु मे ही उन्होंने हिन्दी की अनुपम सेवा की। सत्रह वर्ष की अवस्था से इन्होंने

काव्य-रचना आरम्भ कर दी थी और अंत समय तक ये काव्यानन्द ही में मग्न रहे। इनकी रचनाओं का संग्रह छः भागों मे खड्गविलास-प्रेस से प्रकाशित हुआ है। सब मिलाकर इनके छोटे-बड़े १७५ ग्रंथ इस संग्रह में हैं। प्रथम भाग मे १८ नाटक और १ ग्रंथ नाटकों के नियमों का है। इनमें सत्यहरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस, चन्द्रावली, भारतदुर्दशा, नीलदेवी, और और प्रेमयोगिनी प्रधान है। भारतदुर्दशा और नीलदेवी मे भारतेन्दु का स्वदेश-प्रेम दर्शनीय है। चन्द्रावली से इनके असीम प्रेम और भक्ति का अच्छा परिचिय मिलता है। सत्यहरिश्चन्द्र भारतेन्दु की कवित्व-शक्ति का एक अद्भुत नमूना है। प्रेमयोगनी मे इन्हों ने अपने विषय की बहुत सी बातें लिखी है। इसमे हँसी-मज़ाक का अच्छा चमत्कार है। द्वितीय भाग मे इनके रचित इतिहास ग्रंथों का संग्रह है, जिसमे कास्मीर कुसुम, बादशाह दर्पण और चरितावली प्रधान हैं और चरितावली मे इन्होंने अच्छा-अच्छे महानुभावों के चरित्रों का वर्णन किया है। तृतीय भाग मे राजभक्तिसूचक काव्य हैं। इसमे १३ ग्रंथ हैं, परन्तु उनकी रचना उत्कृष्ट नहीं हुई है। चतुर्थ भाग का नाम भक्तिसर्वस्व है। इस मे १८ भक्ति पक्ष के ग्रंथ हैं, जिन मे वैष्णव सर्वस्व, वल्लभीय-सर्वस्व, उत्तरार्द्ध भक्तमाल तथा वैष्णववार्ता और भारतवर्ष उत्तम रचनाएं हैं। पंचम भाग का नाम काव्यामृतप्रवाह है। इसमे १८ प्रेमप्रधान ग्रंथ हैं, जिनमे प्रेम फुलवारी, प्रेमप्रलाप, प्रेममालिका और कृष्णचरित्र प्रधान है। नाटकावली के अतिरिक्त भारतेंदु का यह भाग प्रशंसनीय है। छठे भाग मे हंसी-मजाक के चुटकुले और छोटे-छोटे कई निबन्ध तथा तथा अन्य लोगों के बनाए कई ग्रन्थ हैं, जो इनके द्वारा प्रकाशित हुए थे।

बालकृष्ण भट्ट—भट्ट जी का जन्म सन १८५५ मे हुआ। भारतेन्दु ने पं० बालकृष्ण भट्ट को अच्छा उत्साह दिया। भट्ट जी ३२ बरसों तक मासिक 'हिन्दी प्रदीप' के सम्पादक रहे। वह एक अच्छा साहित्यिक पत्र था। कालिराज की सभा, सौ अजान एक सुजान, विकट खेल आदि इनकी सुन्दर कृतियाँ हैं। पद्मावती आदि अनेक सुन्दर नाटक जी ने लिखे।

अम्बिकादत्त व्यास—जन्म सन् १८५८। देहांत १६००। जयपुर के पं० अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत के धुरंधर विद्वान थे। अपनी छोटी सी आयु में उन्होंने करीब ७८ ग्रन्थों का निर्माण किया। वह आशु कवि भी थे। अनेक नाटक भी उन्होंने लिखे। आजीवन वह संस्कृत अध्यापक का कार्य करते रहे। ललिता, गोसंकट, भारत सौभाग्य, गद्य मीमांसा, बिहारी-विहार आदि उनकी प्रसिद्ध कृतियां हैं।

प्रताप नारायण मिश्र—भारतेन्दु के बाद, उनके समकालीन अथवा उन से प्रभावित लेखकों में पं० प्रताप नारायण मिश्र ने सबसे अधिक ख्याति प्राप्त की। उनका जन्म सन् १८५६ और देहान्त सन् १८६४ में हुआ। पं० प्रताप नारायण मिश्र बहुत ही जिंदा दिल और मजाकपसंद साहित्यिक थे। 'जपौ निरन्तर एक जबान, हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान,' आदि बहुत से सुप्रसिद्ध वाक्य इन्हीं के बनाये हुए हैं। इनका देहांत केवल ३८ वर्ष की आयु में हो गया, इस से हिन्दी की बहुत बड़ी क्षति हुई। प्रताप नारायण मिश्र राष्ट्रीय विचारों के सज्जन थे। इन्होंने १६ मौलिक ग्रन्थ लिखे, १२ अनुवाद किए और ३ संग्रह। मिश्र जी की रचनाओं का हिंदी में अच्छा आदर हुआ।

बदरीनारायण चौधरी जन्म सन् १८५५। पं० बदरीनारायण चौधरी का देहांत हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ। हिंदी में वह 'प्रेमघन' के नाम से प्रसिद्ध थे। वह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मित्रों में थे। हिंदीसाहित्य सम्मेलन के सभापति-पद को भी चौधरी जी ने सुशोभित किया था। अपने समय के वह एक अत्यंत लोक-प्रिय कवि और लेखक थे। कुल मिला कर उन्होंने २६ ग्रन्थ लिखे।

लल्लूलाल

(१)

परीक्षित और कलियुग

महाभारत के अन्त में जब श्रीकृष्णचन्द्र अन्तर्ध्यान हुए तब पाण्डव महा दुखी हो, हस्तिनापुर का राज्य परीक्षित को दे, आप हिमालय में

गलने को चले गये । तब राजा परीक्षित सब देशों को जीत कर धर्मराज्य करने लगे । फिर कुछ काल के बाद, एक दिन राजा परीक्षित आखेट को गये तो यहाँ क्या देखा कि एक गौ और एक बैल दौड़े चले आते हैं । उनके पीछे मूशल हाथ मे लिये, एक शूद्र उन दोनों को मारता हुआ आ रहा है । जब वे सब पास पहुंचे तब राजा ने शूद्र को ललकार कर कहा कि अरे तू कौन है ? अपना नाम जल्द कह कि गौ और बैल को क्यों मारता है। तैंने क्या अर्जुन को दूर गया जाना है ? क्योंकि तैंने उसका धनुष नहीं पहचाना है । सुन पाण्डव के कुल मे ऐसा किसी को भी न पावेगा कि जिसके सामने कोई दीन को सता सके । उतना कह कर राजा ने खड्ग हाथ मे ले लिया । यह देख वह डर कर खड़ा हो गया । फिर नरपति ने गौ और बैल को निकट बुला के पूछा कि तुम कौन हो ? मुझे बुझा कर कहो कि देवता हो या ब्राह्मण ? और तुम किसलिए भागे जाते हो ? यह बात निधड़क हो कहो, मेरे रहते किसी की सामर्थ नही है, जो तुम्हे दुःख दे सके । इतनी बातें सुनकर बैल सिर झुका कर बोला कि हे महाराज! यह जो पाप रूपी, कालवर्ण, डरावनी सूरतवाला आप के सन्मुख खड़ा है, सो कलियुग है । इसी के आगे से मै भागा जाता हूं । और यह गौ स्वरूपवान पृथ्वी है । यह भी इसी के डर से भागी चली जाती है । हे राजन् ! मेरा नाम धर्म है । मै चार पांव रखता हूँ। यथा—तप, सत्य, दया और शौच । सतयुग मे मेरे चरण बीस—बिस्वे बचे थे, त्रेता मे सोलह, द्वापर मे बारह, कलियुग मे चार-बिस्वे बचे हैं । इसलिये कलि के बीच मे चल नही सकता हूं । इसके बाद धरती बोली कि हे धर्मावतार ! मुझ से भी इस युग मे रहा नहीं जाता है क्योंकि शूद्र हो अधिक अधर्म मेरे ऊपर करेंगे, उसका बोझ मै न सह सकूंगी इस भय से मै भागती हूं । यह सुनते ही राजा ने क्रोध कर कलियुग से कहा कि मै तुझे अभी मारता हूं । यह सुन कर घबड़ा कर राजा के चरणों पर गिर पड़ा और गिड़गिड़ा कर कहने लगा कि पृथ्वीनाथ ! अब मैं तुम्हारी शरण हूं, अब मुझे कहीं रहने को [illegible]ओ । क्योंकि ब्रह्मा ने मुझे तीनों काल और चारों युग मे

रहने को बनाया है, सो तो किसी भांति मिट नहीं सकता है। कलियुग से कहा कि तुम इतनी ठौर मे रहो—जूवा, झूठ, मद, वेश्या, हत्या, चोरी, सूम का धन और सुवर्ण मे वास करो। यह सुन कर कलियुग ने अपने स्थान को प्रस्थान किया और राजा ने धर्म को अपने मन मे रख लिया, तथा पृथ्वी अपने रूप मे मिल गई, फिर राजा अपने नगर मे आये, धर्मराज्य करने लगे। कुछ दिन बाद एक दिन राजा सुवर्ण का मुकुट धारण कर आखेट को गये। जब चलते २ प्यास से बड़े व्याकुल भये तो फिर क्या था, शिर के मुकुट मे तो कलियुग रहता ही था, उसने अपना अवसर पाकर राजा को अज्ञानी कर दिया। राजा प्यास के मारे आते २ वहा आया. जहाँ शमीक ऋषि आसन मारे नयन मूंद हरि का ध्यान लगाये, तप कर रहे थे। उन्हे देख परीक्षित मन मे कहने लगा कि अपने तप के घमण्ड से मुझे देख कर भी आंखें बन्द किये हैं। उसे ऐसी कुमति उठी कि एक मरा भया साप, जो वहा पड़ा था, सो धनुष से उठा कर ऋषि के गले मे डाल दिया और आप अपने घर चला आया। मुकुट के उतारते ही जब राजा को ज्ञान हुआ तो, सोच कर कहने लगा कि कञ्चन मे कलियुग का वास था। यह मुकुट मेरे शीश पर था, इसी से मेरी ऐसी कुमति हुई जो मरा सर्प लेकर ऋषि के गले मे डाल दिया। अस्तु, अब मैंने समझा कि कलियुग ने मुझ से बदला लिया हैं। हे भगवान्! इस महापाप से कैसे छूटूंगा। मेरा धन, जन, स्त्री, और राज्य, यह सब क्यों न चला गया? अब न जाने किस जन्म मे यह मेरा अधर्म जायगा। जो कि मैंने ब्राह्मण को सताया है। राजा परीक्षित तो यहां इस अथाह सोच सागर मे डूब ही रहे थे कि जहां पर शमीक ऋषि थे वहां पर कुछ लड़के खेलते हुए जा निकले और मरा सांप उनके गले में देख अचम्भे मे रह गए। पुनः घबरा कर आपस मे कहने लगे कि भाइयो! अब कोई उनके पुत्र से जाके कह दो कि ऐसी व्यवस्था है। शृङ्गी ऋषि उपवन मे कौशिकी नदी के तीर ऋषियों के बालकों के संग खेलता है। यह सुनते ही एक

लड़का दौड़ा हुआ वहां गया जहां शृङ्गी ऋषि बालकों के साथ खेलते थे। वहां जाकर कहा कि हे बन्धु! तुम यहां खेलते हो, वहां कोई दुष्ट मरा हुआ काला नाग तुम्हारे पिता के कण्ठ में डाल गया है। यह सुनते ही शृङ्गी ऋषि के नेत्र लाल हो गये और दांत पीस कर थर २ कांपने लगे, फिर तो क्रोध कर कहने लगे कि इस कलियुग मे राजा लोग बड़े अभिमानी उपजे हैं, जो कि धन के मद से अन्धे हो गये हैं ऐसे दुःखदाइयों को मै उचित दण्ड दूंगा, प्रथम मै उसको शाप देता हूँ जिसे कि वह निश्चय पावेगा। ऐसा कह कर शृङ्गी ऋषि ने कौशिकी नदी का जल चुल्लू में ले राजा परीक्षित को यह श्राप दिया कि यही सर्प आज से सातवें दिन तुझे डसेगा। इस भांति राजा को श्राप देकर अपने बाप के पास जा, गले मे सांप निकाल कर कहने लगा कि हे पिता! तुम अपनी देह संभालो मैने उस दुष्ट को श्राप दिया है जिसने आपके गले में मरा हुआ सर्प डाला था। यह वचन सुनते ही शमीक ऋषि ने सचेत हो, नयन उघार अपने ध्यान से विचार कर कहा, कि हे पुत्र! तैंने यह क्या किया? राजा को श्राप क्यों दिया। उसके राज मे हम सुखी थे कोई पशु-पक्षी भी दुःखी न था, ऐसा धर्मराज्य था कि जिस मे सिंह और गौ एक साथ रहते थे आपस मे कुछ भी न कहते थे, हे पुत्र! जिसके देश मे हम वसे हैं उनके हँसे से क्या हुआ? यदि मरा हुआ सर्प डाला था, तो उसे श्राप क्यों दिया? तनिक से दोष पर ऐसा श्राप? तैंने बड़ा पाप किया, जो कुछ भी विचार मन में नहीं किया, तैंने गुण को छोड़ अवगुण ही को लिया है। साधुजन को चाहिये कि सत्य, शील स्वभाव से रहे। आप कुछ न कहे औरों का सुन ले अवगुण तज दे, परन्तु तैंने उलटा किया। इतना कह शमीक ऋषि ने एक चेले को बुला के कहा कि हे वत्स! तुम राजा परीक्षित को जाके चेता दो कि तुम्हें शृंगी ऋषि ने श्राप दिया है। इस बात से लोग तो दोष देहींगे पर वह सुन कर सावधान तो हो जायगा। इतना वचन गुरु का सुन, चला। वहाँ आया, जहाँ राजा बैठा शोच करता था। चेले ने आते , हे महाराज! शृंगी ऋषि ने श्राप दिया है कि आज के सातवें

दिन वही तक्षक तुझे डसेगा। अतः अब तुम अपना वह काय करो जिससे इस कर्म की फाँसी से छूटो। यह सुनते ही राजा प्रसन्नता से खड़ा हो हाथ जोड कहने लगा कि मुझ पर ऋषि ने बडी कृपा की जो श्राप दिया। क्योंकि मै माया मोह के अपार शोकसागर मे पडा था, सो आज उन्होंने निकालकर बाहर किया। जब मुनि का शिष्य बिदा हुआ, तब राजा ने आप तो वैराग्य लिया और निज पुत्र जनमेजय को बुला कर राज्यपाट सब देकर कहा कि बेटा! गौ ब्राह्मण की रक्षा कीजिये और प्रजा को सुख दीजिये। इतना कह आप निवास में आकर देखा कि यहाँ सभी रानी उदास बैठी हैं। राजा को देखते ही रानियाँ पावों पर गिर रो रोकर कहने लगीं कि हे महाराज! तुम्हारा वियोग हम अबला सह न सकेंगी।। इससे तुम्हारे साथ ही मे जान दे दें तो भला है। यह सुन कर राजा बोले कि सुनो, स्त्री को उचित है कि अपने पति का धर्म रहे सो करे। उत्तम काज मे बाधा न डाले। इतना कह धन जन कुटुम्ब और राज्य की माया तज निर्मोही हो, आप योग साधने को गंगा के तीर पर जा बैठा। उसको जिसने सुना वह हाय २ कर पछताय २ बिना रोये न रहा। यह समाचार जब मुनियों ने सुना कि राजा परीक्षित शृंगीऋषि के शाप से मरने को गंग-तीर आ बैठा है तब व्यास, वशिष्ठ, भरद्वाज, कात्यायन, पराशर, नारद, विश्वामित्र, वामदेव, जमदग्नि, आदि अठासी सहस्र ऋषि वहां आये, और आसन बिछाय पाँत पाँत से बैठ गये। फिर अपने २ शास्त्र को विचार कर अनेक अनेक भाति के धर्म राजा को सुनाने लगे। इतने मे अन्तरयामी राजा की श्रद्धा देख, पोथी कांख मे लिये, दिगम्बर भेष श्रीशुकदेव जी भी वहाँ आय पहुँचे। उनको देखते ही जितने मुनि वहा थे, सबके सब उठ खडे हुए। तब राजा परीक्षित भी खड़ा हो हाथ बाध विनती कर, कहने लगा कि हे कृपानिधान! आपने मुझ पर बडी दया की जो इस समय मेरी सुध ली। राजा की इतनी बातें सुन कर, तब शुकदेव मुनि बैठे। तदनन्तर राजा ऋषियों से कहने लगा कि हे महाराज! शुकदेव तो व्यास जी के बेटे और पराशर जी के पोते हैं। उनको देखकर आप बडे २ मुनीश होके जो उठे सो तो उचित नहीं था? इसका क्या कारण है? सो कहो जो मेरे मन का संदेह जाय। तब पराशर मुनि बोले

कि हे राजन ! जितने हम वडे २ ऋषि हैं, केवल वयोवृद्ध हैं, परन्तु ज्ञान मे शुक से छोटे ही हैं। इसलिये सब ने शुक का आदर किया है। इस पर किसी ने कहा कि ये तारण-तरण हैं। क्यों कि जब से जन्म लिया है, तब से ही उदासीन हो वनवास करते हैं। अतः हे राजन् ! तेरा भी कोई वडा पुण्य उदय हुआ जो शुकदेव जी आये। हम सब से उत्तम धर्म कहेंगे। जिससे तू जन्म मरण से छूट भवसागर पार होगा। यह वचन सुन, राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी को दण्डवत कर, पूछा कि हे महाराज ! मुझे सब धर्म समझाय के कहो, कि मैं किस रीति मे कर्म के फन्दे से छूटूंगा? सात ही दिन मे क्या करूँगा? मेरा अधर्म अपार है। अतः मैं कैसे भवसागर से पार होऊँगा? श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! तू थोडे दिन मत समझ, मुक्ति तो एक ही घडी के ध्यान से होती है। जैसे कि राजा खटवांक को नारद मुनि ने ज्ञान वताया था, और उसने दो ही घडी मे मुक्ति पाई थी तुझे तो सात दिन वहुत हैं। जो एक चित्त हो ध्यान करोगे तो अपने ही ज्ञान से स्वयं ही समझोगे कि धर्म क्या है? देह मे किसका वास है? कौन उसमें प्रकाश करता है? यह सुन राजा ने हर्ष से पूछा कि हे महाराज ! सव धर्मों से उत्तम कौनसा धर्म है? सो कृपा कर कहो। तव शुकदेव जी वोले हे राजन ! जैसे सव धर्मों मे से वैष्णव धर्म वडा है, वैसे ही पुराणों में श्रीमद्भागवत है। जहां हरिभक्त इस कथा को सुनाते हैं, वहां पर सव तीर्थ और सव धर्म आते है, श्रीमद्भागवत के समान कोई पुराण नहीं है। इस कारण मै तुझे वारह स्कन्ध महापुराण सुनाता हू। जो कि व्यास मुनि ने मुझे पढाया है। तू श्रद्धा समेत आनन्द से चित्त दे सुन। इतना कह श्रीशुकदेव जी प्रेम मे कथा सुनाने लगे और राजा परीक्षित प्रेम से सुनने लगे।

(२)

श्री कृष्ण-जन्म

कंस तो अनीति से मथुरा मे राज्य करने लगा और उग्रसेन दुःख लगा। देवक जो कंस का चाचा था, उसकी कन्या देवकी जब योग्य हुई, तब देवकने कंस से कहा कि यह लडकी किसको

दें ? वह बोला कि शूरसेन के पुत्र वसुदेव को दीजिये । इतनी बात सुनते ही देवक ने एक ब्राह्मन को बुलवाय शुभलग्न ठहराय शूरसेन के घर टीका भेज दिया तब तो शूरसेन ने भी बड़ी धूमधाम से बरात सजाय, सब देश के नरेशों को साथ ले मथुरा पुरी मे वसुदेव को ब्याहने आये। जब बारात नगर के निकट आई, तब उग्रसेन, देवक और कंस अपना २ दल साथ ले, आगे बढ़ बरात नगर मे ले गये । अति आदर सन्मान से अगोना कर जनवासा दिया, फिर खिलाय पिलाय सब बरातियों को कन्यादान दिया। उसके उत्साह से पन्द्रह सहस्र १५००० घोडे, चारसौ ४०० मै अस्वारी हाथी, अठारह सौ १८००० रथ, दो सौ दास व दासी, अनेक कञ्चन के थालों मे उत्तम वस्त्र और रत्न जड़ित आभूषण से भरके दिये। सब बरातियों को भी अलंकार समेत वागे पहिराये सब मिलकर पहुंचाने चले। उसी समय आकाशवाणी हुई कि अरे कंस! जिसे तू पहुंचाने चला है उसका आठवां लड़का तेरा काल उपजैगा, और उसके हाथ से तेरी मृत्यु होगी। यह सुनते ही कंस डर कर काप उठा और क्रोधकर देवकी का झोंटा पकड़ के रथ से नीचे खैच लिया। खड्ग हाथ मे ले दाँत पीस २ कर कहने लगा कि जिस पेड़ को जड़ ही से उखाड़ देंगे उसमे फल कैसे लगेगा ? इससे अब इसी को मारूँ तव निर्भय हो राज्य करूं। यह देख वसुदेव मन मे कहने लगे कि इस मूर्ख ने मुझे बडा संताप दिया। पुण्य पाप कुछ नहीं जानता है। जो अब क्रोध करता हूं तो काज विगड़ेगा इससे इस मे क्षमा करना ही योग्य है । कहा है कि:—

चौ०—वैरी जब खैंचे तरवार। करे साधु तिसकी मनुहार ॥
समुझ मूढ़ सोई पछिताय। जैसे पानी आग बुझाय ॥

यह सोच समझ कर वसुदेव कंस के सामने जा हाथ जोडकर विनतीकर कहने लगे कि पृथ्वीनाथ ! तुमसा बली संसार मे कोई नहीं है, सब तुम्हारी छाँह तले बसते हैं। ऐसे शूर हो स्त्री पर शस्त्र प्रहार करना अतीव अनुचित है। सो बहिन के मारने से महा पाप होता है। तिस पर मनुष्य तब अधर्म करे जो जाने कि मै कभी न मरूंगा। इस संसार की यही रीति है इधर जन्मा उधर मरा। कोई करोड़ों यत्नों से पाप व पुण्य

कर इस देह को पोषे, पर यह अपनी कभी न होयगी। और धन, जोबन, राज्य भी कोई कभी काम न आवेगा, इससे मेरा कहा मान लीजिये और अपनी अबला अधीन बहिन को छोड़ दीजिये। इतना सुन के भी कं अपना काल जान घबड़ा कर और झुंझलाया। तब वसुदेव सोचने लगे कि यह पापी तो असुर बुद्धि लिये हुए अपने हठ की टेक पर है जिस तरह से हो इसके हाथ से यह बचे सो उपाय करना चाहिये, ऐसा विचार मन में कहने लगे कि अब तो इससे यों कहके देवकी को बचाऊँ कि जो पुत्र मेरे होगा, सो तुम्हे दूंगा। पीछे किसने देखा है कि क्या होगा? कही लड़का ही न होय या यही दुष्ट मरे, यह अवसर तो टले फिर समझा जायगा। इस भांति मन मे ठान वसुदेव ने इससे कहा कि महाराज! तुम्हारी मृत्यु तो इसके पुत्र के हाथ से होगी। अतः मैने एक बात ठहराई है कि, देवकी के जितने लड़के होंगे, मैं तुम्हे दे दूंगा। यह वचन मैने तुमको दिया। ऐसी बात जब वसुदेव ने कही तब ठीक बात समझ कर कंस ने मान ली और देवकी को छोड़ कहने लगा कि हे वसुदेव! तुमने अच्छा विचार किया जो ऐसे भारी पाप से मुझे बचा लिया। इतना कह विदाई कर दी और वे सब लोग अपने घर चले गये। कुछ दिन मथुरा मे रहते हो गया। दैव इच्छा से पहिला ही पुत्र देवकी को हुआ, वसुदेव उसे ले कंस के पास गये और रोता हुआ लड़का धर दिया। देखते ही कंस ने कहा कि वसुदेव! तुम बड़े सत्यवादी हो, सो मैने आज जाना क्योंकि तुमने जरा भी कपट नहीं किया, निरमोही हो अपना पुत्र दे दिया, इससे मुझे कुछ डर नहीं है। यह बालक मैने तुम्हे दिया। इतना सुन बालक ले दण्डवत कर वसुदेवजी तो अपने घर चले आये। उसी समय नारदमुनि जी ने आयके कंससे कहा राजन! तुमने यह क्या किया? जो बालक उलटा फेर दिया। क्या तुम नहीं जानते कि वसुदेव देवकी की सेवा करने को सब देवताओं ने ब्रज मे आय जन्म लिया है और देवकी के आठवें गर्भ में श्रीकृष्ण जन्म ले सब राक्षसों को मार भूमि का भार उतारेंगे। इतना कह नारद मुनि ने आठ लकीरें खैंचि गिनवाई। जब सब तरह से आठ गिनती में आई, तब डर कर कंस ने लड़के समेत वसुदेव जी को बुला भेजा। नारद मुनि

तो यों समझाय बुझाय चले गये कंस ने वसुदेव से बालक ले मार डाला। ऐसे ही जब पुत्र होय, तब वसुदेव ले आवैं और कंस उसे मार डालैं। इसी रीति से कंस ने छः बालक मारे तब सातवें गर्भ मे शेषरूप भगवान ने आकर वास किया। यह कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूछा कि महाराज! नारद मुनि जी ने जो अधिक पाप करवाया इसका ब्यौरा समझा कर कहो जिससे मेरे मन का सन्देह जाय। श्रीशुकदेव जी बोले कि राजन्! नारद मुनि जी ने तो अच्छा विचारा कि यदि यह अधिक पाप करैगा, तो श्रीभगवान तुरन्त ही प्रगट होवैंगे।

एक दिन राजा अपनी सभा मे आकर बैठा। आते ही जितने दैत्य उसके थे उनको बुलाकर कहा कि सुनते हैं कि सब देवता पृथ्वी पर आये हैं। उन्हीं से कृष्ण भी अवतार लेगा। यह भेद मुझ से नारद मुनि समझाय करके कह गये हैं। इससे अब उचित है कि तुम जाकर यदुवंशियों का ऐसा नाश करो, जो एक भी जीता न बचे। यह आज्ञा पा सब दण्डवत् कर चले और नगर मे आय ढूँढ २ पकड़ २ कर बाँधने और मारने लगे। जहाँ भी खाते, पीते, खड़े, बैठे, सोते, जागते, चलते फिरते, जिसे पाया उसे न छोड़ा, घेर के एक ठौर लाकर जला २ डुबो-पटक २ सबको मार डालैं। इसी रीति से छोटे बड़े भयावने, भाँति २ के भेष बनाये नगर २ गाँव २ गली २ खोज २ मारने लगे। तब तो यदुवंशी दुःख पाय देश छोड़ २ जी ले २ भागने लगे। इसी के भय से वसुदेव की और जो स्त्रियाँ थीं, वे रोहिणी समेत मथुरा से गोकुल मे जहाँ वसुदेव जी के परम मित्र नन्दजी रहते थे, वहाँ चली आईं। उन्हे अति हित से आसा भरोसा दे रक्खा, वे भी आनन्द से रहने लगीं। जब कंस देवताओं को सताने और अति पाप करने लगा तब विष्णु ने अपनी आँखों से एक माया उपजाई। वह हाथ बाँध सन्मुख आई। उससे हरि ने कहा तू अभी संसार मे जा, मथुरापुरी के बीच जहाँ दुष्ट कंस मेरे भक्तों को कष्ट देता है वहाँ अवतार ले। कश्यप अदिति जो वसुदेव देवकी हो ब्रज मे गये हैं उनके छः बालक तो कंस ने मार डाले हैं, अब सातवां जन्म लक्ष्मण जी का होगा। रोहिणी को उनकी माता बना देना। इस भांति माया को समझाकर श्री नारायण बोले कि तू पहिले जाकर यह काम करके नन्द के घर जन्म ले

वसुदेव के यहाँ अवतार लेकर मैं भी नन्द के घर आता हूं । इतना सुनते ही माया मथुरा में आई और मोहिनी का रूप बनाकर वसुदेव के गृह में बैठ गई ।

इस रीति से इधर सावन सुदी चौदस बुधवार को बलदेव जी ने गोकुल मे जन्म लिया । इधर माया ने वसुदेव जी को जाके सपना दिया कि रोहिणी का यह पुत्र वास्तव मे तुम्हारा ही पुत्र है । सो तुम किसी बात की चिन्ता मत करना । यह सुनते ही वसुदेव देवकी जाग पड़े और आपस मे कहने लगे कि यह तो भगवान ने भला किया, परन्तु कंस को इसी समय जता देना चाहिये नहीं तो क्या जाने पीछे क्या दुःख दे । यह सोच समझ कर रखवालों से बुझाकर कहा । यह सुनते ही कंस घबरावर बोला कि तुम लोग अब की बेर खूब चौकसी करना, क्योंकि मुझे आठवें ही बालक का डर है, जो कि आकाशवाणी कह गई है । इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि हे राजन् ! बलदेव जी तो यों प्रगटे । अब जब श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ मे आये, तब माया ने नन्द की नारी यशोदा के घर जन्म लेने का निश्चय किया । एक पर्व मे देवकी यमुना नहाने गई वहां संयोग से यशोदा भी आ निकली, आपस मे दुःख की चरचा चली । निदान यशोदा ने देवकी को वचन दे कहा कि तेरा बालक मैं रखूंगी अपना तुझे दूंगी । ऐसे वचन दे अपने २ घर आईं। जब कंस ने जाना कि देवकी के यहां आठवें पुत्र के जन्म की आशा है, तब वसुदेव का घर जाय घेरा, चारों ओर दैत्यों की चौकी बैठा दी, और वसुदेव को बुलाकर कहा कि अब तुम मुझ से कपट मत करना, अपना लड़का लाकर दे जाना । तब तो मैं ने तुम्हारा कहना मान लिया था। ऐसे कह वसुदेव देवकी को बेडी और हथकड़ी पहिराय, एक कोठे मे बन्द कर ताले दे, निज मन्दिर मे आ, मारे डर के उपासा ही सो रहा । फिर भोर होते ही वहां गया जहां वसुदेव देवकी थे । कहने लगा मार तो डालूं पर अपयश से डरता हूं । क्योंकि अति बलवान हो स्त्री को मारना नहीं है । इसके पुत्र को ही मारूंगा । यों कह कर बाहर । गज, सिंह, स्वान और जो अपने बड़े योधा थे, वहा चौकसी

को रक्खे। आप भी नित्य चौकसी कर आवे पर एक पल भी उसे कल न पड़े। उसे आठ पहर चौसठ घड़ी कृष्ण रूप काल हो दृष्टि आवै। जिसके भय से भयभीत हो रात दिन चिन्ता मे गँवावै।

इधर कंस की तो यह दशा थी, उधर वसुदेव और देवकी रात दिन महा कष्ट मे पड़े श्रीकृष्ण ही को मनाते थे कि इसी बीच मे भगवान् ने आय उन्हे स्वप्न दिया। स्वप्न मे यह कह उनके मन का सोच दूर किया कि हम बेग ही जन्म ले तुम्हारी चिन्ता मेटते हैं। तुम अब मत पछिताओ। यह सुन वसुदेव देवकी जाग पड़े। उतने ही मे ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि सब देवता, अपने विमान अधर मे छोड, अलख रूप बनाकर वसुदेव जी के गृह मे आये। प्रथम प्रणाम कर हाथ जोड कर वेद मन्त्रों से गर्भ स्तुति करने लगे। उस समय उनको तो किसी ने न देखा, पर वेद की ध्वनि सब ने सुनी। यह अचरज देख सब रखवाले अचम्भे मे रह गये। अब वसुदेव देवकी को निश्चय हुआ कि भगवान् शीघ्र ही हमारी पीर हरेंगे।

जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र जन्म लेने को हुये, उस काल मे सब ही के जी मे ऐसा आनन्द उपजा कि दुःख तो नाम को भी न रहा। हर्ष मे वन उपवन हरे २ हो फूलने फलने, नदी नाले सरोवर जल भरने, वृक्षों पर भाँति २ के पक्षी कलोलें करने, नगर २ गांव २ घर २ मंगलाचार होने, ब्राह्मण यज्ञ रचने, दशों दिशा के दिगपाल हर्षने, बादल ब्रह्ममण्डल पर घिरने, देवता गन्धर्व, चारण, ढोल, दमामे, भेरी, बजा २ गुण गान करने लगे। एक ओर उर्वसी आदि सब अप्सरा नाच रही थीं। ऐसे समय भादों वदी अष्टमी, बुधवार रोहिणी नक्षत्र मे आधी रात को श्रीकृष्ण ने जन्म लिया। वह मेघवरण चन्द्रमुख कमलनैन, पीताम्बर काछे, मुकुट धरे, बैजन्ती माला और रत्न जड़ित आभूषण पहिरे, चतुर्भुज रूप किये, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये, वसुदेव देवकी को दर्शन दिया। उनको देखते ही अचम्भित हो, उन दोनों ने ज्ञान से विचारा, तो आदि पुरुष को जाना। तब हाथ जोड विनती कर कहा कि हमारे बड़े भाग्य हैं, जो आपने दर्शन दिया और जन्म मरण का निबेड़ा किया। इतना कह पहली कथा सब सुनाई कि जैसे २ कंस ने दुःख दिया था। तब श्रीकृष्ण-

चन्द्र जी बोले कि अब तुम किसी बात की चिन्ता मन मे मत करो। क्योंकि मैने तुम्हारे दुःख को दूर करने ही को अवतार लिया है। परन्तु इस समय तुम मुझे गोकुल पहुंचा दो। वहां इसी समय यशोदा के एक लड़की हुई है, उसे कंस को लाकर दे दो। अपने वहां जाने का कारण कहता हूं सुनो।

दोहा—नन्द यशोदा तप कियो, मोंही सो मन लाय
देखो चाहत बाल सुख, रहौं कछुक दिन जाय॥
फिर कंस को मार आय मिलूंगा, तुम अपने मन मे धीरज धरो।
ऐसे वसुदेव देवकी को समझाय, श्रीकृष्ण बालक बन रोने लगे।

(३)
श्रीकृष्ण का नामकरण और बाललीला

श्री शुकदेव जी बोले कि हे राजन्! एक दिन वसुदेव जी ने गर्ग मुनि को जो बड़े ज्योतिषी और यदुवंशियों के पुरोहित थे, उन्हे बुलाकर कहा कि तुम गोकुल जाय लड़के का नाम रख आओ। तहां नन्दजी के पुत्र हुआ है, सो तुम्हे भी बुलाय गये हैं। सुनते ही गर्गमुनि प्रसन्न हो चले और गोकुल के निकट जा पहुंचे। उसी समय किसी ने नन्दजी से आकर कहा कि यदुवंशियों के पुरोहित गर्गमुनि जी आते हैं। यह सुनकर नन्दजी आनन्द से ग्वाल बाल संग कर भेंट ले उठ धाये और पाटम्बर पावड़े डालते बाजे गाजे से ले आये, पूजा कर आसन पर बैठा के, चरणामृत ले स्त्री पुरुष हाथ जोड़ के कहने लगे कि हे महाराज! हमारे बड़े भाग हैं, जो आपने दया कर दर्शन दे घर पवित्र किया। तुम्हारे प्रताप से दो पुत्र हुए हैं। एक रोहिणी से और एक हमारे। सो आप कृपा कर उनका नाम धरिये। गर्गमुनि बोले कि ऐसे नाम रखना उचित नहीं। क्योंकि जो यह बात फैली कि गर्गमुनी गोकुल मे लड़कों का नाम धरने गये हैं। यदि कंस सुन पावे तो वह यही जानेगा कि देवकी के पुत्र को वासुदेव के मित्र के यहां कोई पहुंचाय आया है। तिसी लिए गर्ग पुरोहित गया है। सो समझ कर पकड़ मँगावेगा और न जाने हम पर भी क्या उपाध लगावे। इससे तुम कुछ फैलाव मत करो,

चुपचाप घर में नाम धरवा लो। नन्द जी बोले कि गर्ग जी। तुमने सच कहा है। इतना कह घर के भीतर ले जाय कर बैठाया। तब गर्ग मुनि ने नन्द जी से दोनों की जन्मतिथि और समय पूछ, लग्न साध, नाम ठहराया कि सुनो नन्दजी! वसुदेवकी नारि रोहिणी के पुत्र के तो इतने नाम होगये-संकर्षण, रेवती-रमण, बलदाऊ, बलराम, कालिन्दीभेदन, हलधर और बलवीर इत्यादि। कृष्ण रूप जो तुम्हारा लड़का है, उसके नाम तो अनगिनत हैं। परन्तु यह किसी समय वसुदेव के यहा जन्मा है, इससे इसका वासुदेव नाम हुआ। किन्तु मेरे विचार मे आता है ये दोनों बालक तुम्हारे, चारों युग में, जब जन्मे हैं तब साथ ही जन्मे हैं। नन्द जी बोले कि इनका गुण कहो। तब गर्गमुनि ने उत्तर दिया कि ये दूसरे विधाता हैं। इनकी गति कुछ जानी नहीं जाती है परन्तु मैं यह जानता हू कि कंस को मार कर भूमि का भार उतारेंगे। ऐसे कह गर्गमुनि चुपचाप से चले गये और वसुदेव से मिल सब समाचार कहे। ये दोनों बालक गोकुल मे दिन २ बढ़ने लगे और बाल लीला करके नन्द यशोदा को सुख देने लगे। नीली पीली झँगुली पहिने, माथे पर छोटी २ लटुरिया बिखरी हुई, ताईत गण्डे बांधे, कटले गले मे डाले, खिलौने हाथो मे लिये आगन के बीच खेलते भये। जब घुटनों चल २ गिर २ पड़ें और तोतली २ बातें करें, तब रोहिणी और यशोदा पीछे २ लगी फिरें। इसीलिये कि लड़के कही किसी से डर या ठोकर खा न गिरें। जब छोटे २ बछड़ों और बछिया की पूछ पकड़ २ उठे और गिर २ पड़ें तब यशोदा रोहिणी अति प्यार से उठाय छाती से लगाय, दूध पिलाय, भांति २ के लाड़ लड़ावें। जब श्रीकृष्ण बड़े भये, तो सब ग्वाल बाल साथ ले व्रज मे दधि माखन की चोरी को गये।

सून घर मे ढूँढें जाय। जो पावें सो देयँ लुटाय॥

जिनके घर मे सोते पावें उनकी धरी ढंकी दहेंडी उठा लावें जहा छीके पर रक्खा देखें, तहा पीढ़ा पर पटड़ा पटड़े पै ऊखल धर साथी को खड़ा कर उसके ऊपर चढ़ उतारलें। कुछ खावें कुछ लुटावें और बचे भये लुटाय दें। ऐसे गोपियों के घर २ नित चोरी कर आवें। एक दिन सब ने सलाह किया कि प्रथम गृह मे मोहन को आने दिया जाय। घर

के भीतर पैठ, चाहे कि माखन दही चुरावें, त्योंही जाय उन्हें पकड़ कर कहे कि "दिन दिन आते थे निशि भोर, अब कहा जाओगे माखन चोर" यों कह कर तब सब गोपी मिल. कन्हैया को ले, यशोदा के पास उलाहना देने चलीं। तब श्रीकृष्ण ने ऐसा छल किया कि उसके लड़के को हाथ से पकड़ा दिया और आप दौड़ अपने ग्वाल बालों का संग लिया। वे सब चली २ नन्दरानी के निकट आय, पाओं पड़ बोलीं कि जो तुम बिलग न मानो, तो हम कहें जैसी कुछ उपाध कृष्ण ने ठानी है।

दो०—दूध दुह्यो माखन मह्यो, बचे नही ब्रज मॉझ ।
ऐसी चोरी करतु हैं, फिरत भोर अरु सांझ ॥

जहां कहीं धरा ढका पाते है वहां से निधड़क उठा लाते हैं कुछ खाते हैं और कुछ लुटाते हैं। जो कोई इनके मुख मे दही बतावत है, उसे उलट कर कहते हैं कि तूने ही तो लगाया है, इस भाति नित चोरी कर आते थे। परन्तु आज हमने पकड़ पाया, सो तुम्हे दिखाने लाई हैं। यशोदा बोली कि हे बार ! तुम किसका लड़का पकड़ लाई। कल से तो घर के बाहर भी नहीं निकला कुंवर कन्हाई, ऐसा ही सच बोलती हो। यह सुन और अपना ही बालक हाथ मे देख वे सब हंस कर लजाय गई। तब यशोदाजी ने कृष्ण को बुलाय के कहा कि हे पुत्र ! तुम किसी के यहां मत जाओ, जो जो चाहिये सो घर मे से लेके खाओ।

कभी दोहनी बछड़ा पकड़ाती है कभी घर की टहल कराती है। मुझे द्वारपर रखवाली को बैठाय अपने काज को जाती है। फिर झूठ मूठ आय तुम से बातें लगाती हैं। यह सुनके गोपियां हरिका मुख देख दम मुसकरा कर चली गई। एक दिन कृष्ण बलराम सखाओ के संग बाखल मे खेलते थे कि कान्ह ने मिट्टी खाई। एक सखा ने यशोदा से जाके लगा दिया वह क्रोध कर हाथ मे छड़ी ले उठ धाई। माता को रिस भरी आती देख मुंह पोंछ कर खड़े हो गये। यशोदा ने जाते ही कहा कि क्योंरे तूने माटी क्यों खाई ? तब कृष्ण डरते कांपते बोले कि मा तुमसे किसने कही। वह बोलीं कि सखाने। तब मोहन ने कोप कर सखा से पूछा कि मैंने मट्टी कब खाई ? तब वह भय कर बोला कि भैया मैं तेरी

बात कुछ नहीं जानता, क्या कहूंगा। ज्योंही कान्ह सखा से बतलाने लगे त्योंही यशोदा ने उन्हे जा पकडा। कृष्ण कहने लगे कि मैया! तू रिसाय मत, कहीं मनुष्य भी मट्टी खाते है? तब वह बोलीं कि मै तेरी झटपटी बात नहीं सुनती। जो तू सच्चा है, तो अपना मुख दिखा। ज्योंही श्रीकृष्ण ने मुख खोला त्योंही उसमे तीनों लोक दृष्टि आये। तब यशोदा को ज्ञान हुआ और मन मे कहने लगीं कि मै बड़ी मूरख हूं जो त्रिलोकी के नाथ को अपना सुत कर मानती हूं। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित से बोले कि हे राजन्! जब नन्दरानी ने ऐसा जाना तब हरि ने अपनी माया फैलाई। इतने मे मोहन को यशोदा प्यार कर कण्ठ लगाय घर आई।

एक दिन दही मथने की बेरिया जान भोरही नन्दरानी उठी। सब, गोपियों को भी जगा के बुलाया। वे भी आय, घर झार बुहार, लीप पोत, अपनी २ मथनिया ले इडुये पर रख, चौकी बिछा, नेती और रई मँगाय, टटकी टटकी दहेडिया बिछा २ रामकृष्ण के लिये बिलोवने बैठीं। उस समय नन्द के घर मे ऐसा शब्द दही मथने का हो रहा था कि जैसे मेघ गरजता हो। इतने मे कृष्ण जागे, तो रो २ मां २ कह कर पुकारने लगे। जब उनका पुकारना किसी ने न सुना तब आपही यशोदा के निकट आये, और आखें डबडबाय, सामने हो ठुमुक २ तुतलाय कहने लगे कि मा मैंने तुझे के बेर बुलाया किन्तु तू मुझे कलेऊ देने न आई, क्या तेरा काज अब तक नहीं निबड़ा? इतना कह मचल पड़े, फिर तो रई चरुये निकाल दोनों हाथ डाल, माखन काढ़ फेंकने, अंग मे लथड़ने और पाँव पटक २ आंचल खैंच रोने लगे। तब नन्द-रानी घबराय और झुँझलाय के बोली बेटा! यह क्या चाल निकाली है।

चल उठ तुझे कलेऊ दूं। कृष्ण कहै अब मै नहिं लूं॥
पहिले क्या नहि दीना मा। अब तो मेरी लेहै बला॥

निदान यशोदा ने फुसलाया प्यार से मुंह चूम गोद मे उठा लिया और दधि माखन रोटी खाने को दिया। हरि हंस हंस खाते थे, तथा नन्द महर आंचल की ओट किये खिला रही थी। ऐसा इसलिये किया कि किसी की दीठ न लगे। इसी बीच मे एक गोपी ने आकर

के भीतर पैंठ, चाहे कि माखन दही चुरावें, त्योंही जाय उन्हे पकड़ कर कहे कि "दिन दिन आते थे निशि भोर, अब कहा जाओगे माखन चोर" यों कह कर तब सब गोपी मिल, कन्हैया को ले, यशोदा के पास उलाहना देने चलीं। तब श्रीकृष्ण ने ऐसा छल किया कि उसके लड़के को हाथ से पकड़ा दिया और आप दौड़ अपने ग्वाल बालों का संग लिया। वे सब चली २ नन्दरानी के निकट आय, पाओं पड़ बोलीं कि जो तुम बिलग न मानो, तो हम कहैं जैसी कुछ उपाध कृष्ण ने ठानी है।

दो०—दूध दुह्यो माखन मह्यो, बचे नहीं ब्रज माँझ।
ऐसी चोरी करतु हैं, फिरत भोर अरु साँझ॥

जहां कहीं धरा ढका पाते हैं वहां से निधड़क उठा लाते हैं कुछ खाते हैं और कुछ लुटाते है। जो कोई इनके मुख मे दही बतावत है, उसे उलट कर कहते हैं कि तूने ही तो लगाया है, इस भांति नित चोरी कर आते थे। परन्तु आज हमने पकड़ पाया, सो तुम्हे दिखाने लाई हैं। यशोदा बोली कि हे बार! तुम किसका लड़का पकड लाई। कल से तो घर के बाहर भी नही निकला कुंवर कन्हाई, ऐसा ही सच बोलती हो। यह सुन और अपना ही बालक हाथ मे देख वे सब हंस कर लजाय गई। तब यशोदाजी ने कृष्ण को बुलाय के कहा कि हे पुत्र! तुम किसी के यहां मत जाओ, जो जो चाहिये सो घर मे से लेके खाओ।

कभी दोहनी बछड़ा पकड़ाती है कभी घर की टहल कराती हैं। मुझे द्वारपर रखवाली को बैठाय अपने काज को जाती है। फिर झूठ मूठ आय तुम से बातें लगाती हैं। यह सुनके गोपियां हरिका मुख देख देख मुसकरा कर चली गई। एक दिन कृष्ण बलराम सखाओ के संग बाखल मे खेलते थे कि कान्ह ने मिट्टी खाई। एक सखा ने यशोदा से जाके लगा दिया वह क्रोध कर हाथ मे छड़ी ले उठ धाई। माता को रिस भरी आती देख मुंह पोंछ कर खड़े हो गये। यशोदा ने जाते ही कहा कि क्योंरे तूने माटी क्यों खाई? तब कृष्ण डरते कांपते बोले कि मां तुझसे किसने कही। वह बोलीं कि सखाने। तब मोहन ने काप कर सखा से पूछा कि मैने मट्टी कब खाई? तब वह भय कर बोला कि भैया मै तेरी

बात कुछ नहीं जानता, क्या कहूंगा। ज्योंही कान्ह सखा से बतलाने लगे त्योंही यशोदा ने उन्हें जा पकड़ा। कृष्ण कहने लगे कि मैया! तू रिसाय मत, कहीं मनुष्य भी मट्टी खाते है? तब वह बोलीं कि मैं तेरी अटपटी बात नहीं सुनती। जो तू सच्चा है, तो अपना मुख दिखा। ज्योंही श्रीकृष्ण ने मुख खोला त्योंही उसमे तीनों लोक दृष्टि आये। तब यशोदा को ज्ञान हुआ और मन मे कहने लगीं कि मै बड़ी मूरख हूं जो त्रिलोकी के नाथ को अपना सुत कर मानती हू। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित से बोले कि हे राजन्! जब नन्दरानी ने ऐसा जाना तब हरि ने अपनी माया फैलाई। इतने मे मोहन को यशोदा प्यार कर कण्ठ लगाय घर आई।

एक दिन दही मथने की बेरिया जान भोरही नन्दरानी उठी। सब, गोपियों को भी जगा के बुलाया। वे भी आय, घर झार बुहार, लीप पोत, अपनी २ मथनिया ले इडुये पर रख, चौकी बिछा, नेती और रई मँगाय, टटकी टटकी दहेड़िया बिछा २ रामकृष्ण के लिये बिलोवने बैठीं। उस समय नन्द के घर मे ऐसा शब्द दही मथने का हो रहा था कि जैसे मेघ गरजता हो। इतने मे कृष्ण जागे, तो रो २ मां २ कह कर पुकारने लगे। जब उनका पुकारना किसी ने न सुना तब आपही यशोदा के निकट आये, और आंखें डबडबाय, सामने हो ठुमुक २ तुतुलाय कहने लगे कि मा मैंने तुझे के बेर बुलाया किन्तु तू मुझे कलेऊ देने न आई, क्या तेरा काज अब तक नही निवड़ा? इतना कह मचल पड़े, फिर तो रई चरुये निकाल दोनों हाथ डाल, माखन काढ़ फेंकने, अंग मे लथड़ने और पॉव पटक २ आंचल खैंच रोने लगे। तब नन्द-रानी घबराय और झुँझलाय के बोली बटा! यह क्या चाल निकाली है।

चल उठ तुझे कलेऊ दू। कृष्ण कहै अब मै नहि लूं॥
पहिले क्यों नहि दीना मा। अब तो मेरी लेहैं बला॥

निदान यशोदा ने फुसलाया प्यार से मुंह चूम गोद मे उठा लिया और दधि माखन रोटी खाने को दिया। हरि हंस हंस खाते थे, तथा नन्द महर आंचल की ओट किये खिला रहीं थी। ऐसा इसलिये किया कि किसी की दीठ न लगे। इसी बीच मे एक गोपी ने आकर

कहा कि तुम तो यहां बैठी हो; वहां चूल्हे पर से सब दूध उफन गया। यह सुनते ही झट कृष्ण को गोद से उतार उठ कर धाई। और वहां जाके दूध बचाया। यहां कान्ह ने दही मही के भाजन फोड, रई तोड, माखन भरी कमोरी ले ग्वालों में दौड आये। एक ऊखल औंधा धरा पाया, उस पर जा बैठे और चारों ओर सखाओं को बैठाय, आपस मे हंस हंस कर बांट बांट कर माखन खाने लगे। इतने मे यशोदा दूध उतार आयके देखें तो आँगन मे दही और तिवार से दही मही की कीच हो रही है। तब सोच समझ के हाथ मे छडी ले निकली और ढूँढती २ वहां आई जहां श्रीकृष्ण मण्डली बनाये माखन खाय खिलाय रहे थे। जाते ही पीछे से ज्यों कर धरा, त्यों हरि मां को देखते ही रोकर हाहा खाय कहने लगे कि मैया गोरस किसने लुटाया, मैं नहीं जानूं हू, मुझे छोड़ दे। ऐसे दीन बचन सुन, यशोदा हंस कर हाथ से छडी छोड और आनन्द मे मगन हो रिस के मिस कण्ठ लगाय घर लाय के कृष्ण को ऊखल से बाँधने लगीं। तब श्रीकृष्ण ने ऐसा किया कि जिस रस्सी से बांधें वही छोटी हो, तब यशोदा ने सब घर की रस्सियां मंगाईं, तो भी बांधे न बँधे। निदान माता को दुखित जान, आपही बन्धन मे आगये। तब नन्दरानी बांध के गोपियों को खोलने की सौंह दे फिर घर की टहल करने लगीं।

श्रीकृष्णचन्द्र को बँधे बँधे पूर्वजन्म की सुधि आई कि कुबेर के बेटे को नारद ने शाप दिया है, उनका उद्धार करना चाहिये। यह सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से पूछा कि महाराज! कुबेर के पुत्रों को नारद मुनि ने क्यों शाप दिया था। सो मुझे समझा कर कहो। शुकदेव मुनि बोले कि नल कुबेर के दो लडके कैलाश मे रहते थे। वह शिवजी की सेवा करके अति धनवान हुए। इतने ही मे वहां नारद मुनि आ निकले। उन्होंने नारद का आदर नहीं किया। यह देख नारदजी मन मे कहने लगे कि उनको धन का गर्व हुआ है, इसी से मदमाते हो, काम क्रोध को सुख-कर मानते हैं। निर्धन मनुष्य को अहंकार नहीं होता है। परन्तु धनवान
धर्म अधर्म का विचार नहीं रहता यह मूरख झूठी देही से नेह कर
व कुटुम्ब देख के भूले हैं। साधुजन न धनमद मन मे लावें, न

सम्पति विपति मे दुःख मानें। इतना कह नारद मुनि ने शाप दिया कि इस पाप से तुम गोकुल में जाय वृक्ष हो। जब श्रीकृष्ण जी अवतार लेंगे तब तुम्हे मुक्ति देंगे। नारद मुनि के इस शाप से वे गोकुल मे जाय वृक्ष हुए। यमलार्जुन नाम हुआ। इतनी कथा कह शुकदेव जी बोले कि हे राजन्! इसी बात का सुरत कर श्रीकृष्ण ओखली को घसीटते २ वहा ले गये, जहा यमलार्जुन के पेड़ थे। वहा जाते ही उन दोनों वृक्षों के बीच ओखली को आडा डाल एक ऐसा झटका मारा कि वे दोनों जड़ से उखड पड़े। और उन मे से दो पुरुष अति सुन्दर निकल हाथ जोड़ स्तुति कर कहने लगे कि हे नाथ! तुम बिन हम ऐसे महापापियों की सुधि कौन ले सकता है। तब श्रीकृष्ण बोले कि सुनो, नारद मुनि ने तुम पर बड़ी दया की जो गोकुल में मुक्ति दी। उन्हीं की कृपा से तुमने मुझे पाया है। अब जो तुम्हारे मन मे हो वर मांगो। यमलार्जुन बोले कि हे दीनानाथ! यह नारद जी की ही कृपा है जो आप के चरण परसे और दर्शन किये। अब हमे किसी वस्तु की इच्छा नही है। परन्तु इतना अवश्य दीजिये कि सदा तुम्हारी भक्ति हृदय मे रहे। यह हँसकर वर दे श्रीकृष्णचन्द्र ने उन्हे विदा किया।

जब वे दोनों तरु गिरे, तब उनका शब्द सुन नन्दरानी घबरा कर दौड़ी वहा आई जहाँ कृष्ण को ओखली मे बांध गई थी। उन के पीछे से सब गोपी ग्वाल भी वहीं आये। जब कृष्ण को वहा न पाया, तब यशोदा व्याकुल हो मोहन २ पुकारती हुई चली जा रही थीं कि हाय! बँधा हुआ कहा चला गया। अरे किसी ने मेरा कुँवर कन्हाई देखा है? इतने मे सामने से आय एक गोपी बोली कि व्रजरानी! जहां दो पेड़ गिरे है वहा पर मुरारी खेल रहे हैं। यह सुन जब आगे जाय देखें तो, सब वृक्ष उखड़े पड़े है और कृष्ण उनके बीच ओखली मे बंधे सुकड़े बैठे है। जाते ही नन्दमहरि ने ऊखल से कान्ह को खोल, रोकर गले लगा लिया और गोपिया डरा जान चुटकी ताली दे २ हंसाने लगी। तब नन्द उपनन्द आपस मे कहने लगे कि जुगान-जुग के जमे हुए रूख कैसे उखड़ पड़े यह अचम्भा जी मे आता है। इन का कुछ भी भेद समझ में नहीं आता है। इतना सुन के एक लडके ने पेड़ गिरने का ब्योरा ज्यों का त्यों

कहा परन्तु किसी के जी मे न आया। तब एक बोला कि ये बालक इस भेद को क्या समझेंगे। दूसरे ने कहा कदाचित यही हो, हरि की गति कौन जाने। ऐसी अनेक भांति की बात कर, श्रीकृष्ण को लिये, सब आनन्द से गोकुल मे आये। तब नन्द जी ने बहुत दान पुण्य किया। कुछ दिन बाद श्रीकृष्ण का जन्म दिन आया तब, यशोदा रानी ने सब कुटुम्ब को न्योत बुलाया और मंगलाचार कर बरस गाठ बांधी। जब सब मिल जेवन बैठे, तब नन्दराय बोले कि सुनो भाइयो! अब इस गोकुल मे रहना कैसे बनेगा? क्योंकि दिन २ बड़े उपद्रव होने लगे। अब कहीं ऐसी ठौर चले जावें जहा तृण जल का तो सुख पावें। उपनन्द बोले कि बृन्दाबन जाय के बसिये वहा आनन्द से रहिये। यह वचन सुन नन्द जी ने सब को खिलाय पान दे बैठाया। उसी समय एक ज्योतिषी को बुलाय यात्रा का मुहूर्त पूछा। तब उस ने विचार कर कहा कि इस दिशा की यात्रा को कल दिन उत्तम है। बाए योगिनी, पीछ दिशाशूल और सन्मुख चन्द्रमा है। आप निसन्देह भोर ही प्रस्थान कीजिये। यह सुन उस समय तो सब गोपी ग्वाल अपने २ घर गये, पर सवेरे ही अपनी २ वस्तु गाड़ी मे लाद आ इकट्ठे हुए तब कुटुम्ब समेत नन्द जी भी साथ हो लिये और चले २ नदी के पार उतर साझ समय बृन्दाबन जा पहुँचे। बृन्दा देवी को मनाय, बृन्दावन वास किया। वहा सब सुख चैन से रहने लगे। जब श्रीकृष्ण पांच बरस के हुए, तब मा से कहने लगे कि मै बछड़े चराने जाऊंगा, तू बलदाऊ से कह दे कि मुझे बन मे अकेला न छोड़े। तब वह बोली कि हे पुत्र! बछड़े चराने वाले तुम्हारे दास बहुत है, तुम मेरे नैन के आगे से दूर न हो। तब कान्ह बोले कि जो मै बन मे खेलन न जाऊगा तो खाने को नही खाऊंगा, नही तो मुझे जाने दे। यह सुन यशोदा ने ग्वाल बालो को बुलाय कृष्ण बलराम को सौंपकर कहा कि तुम बछड़े चराने दूर मत जाइयो और सांझ होते ही दोनों को संग ले घर चले आइयो। बन मे इन्हे अकेले मत छोड़ियो, साथ ही साथ रहियो। क्योंकि तुम इन के रखवाले हो।

कह कलेऊ दे राम कृष्ण को उन के संग कर दिया। वे जमुना के बछड़े चराने और ग्वालों मे खेलने लगे। इतने ही मे कंस का

पठाया कपट रूप किये वच्छासुर आया उसे देखते ही सब बछड़े डर कर जिधर तिधर भागे। तब श्रीकृष्ण ने बलदेव जी को सैन से बताया कि हे भाई! यह कोई राक्षस आया है। आगे वह चरता २ घात करने ज्यों ही निकट पहुंचा त्यों ही श्री कृष्ण ने पिछला पांव पकड़ फिराय कर ऐसा पटका कि उसका जी घट से निकल सटका।

वच्छासुर का मरना सुन कंस ने बकासुर को भेजा। वह वृन्दाबन आय, अपनी घात लगाय यमुना तट पर्वत समान बैठा। उसे देख मारे भय के ग्वाल-बाल कृष्ण से कहने लगे कि भैया यह तो कोई राक्षस बगुला बन के आया है। इसके हाथ से कैसे बचेंगे? ये सब तो इधर कृष्ण के यों कहते थे और उधर वह जी मे विचारता था कि आज इसे बिना मारे न जाऊँगा। इतने मे ज्यों ही श्रीकृष्ण उसके निकट गये त्यों ही उसने इन्हे चोंच में उठाय, मुँह मे बन्द कर लिया। तब तो ग्वाल-बाल व्याकुल हो चारों ओर देख रो २ पुकार कहने लगे कि हाय २ यहां तो हलधर भी नहीं हैं, हम यशोदा से जाय के क्या कहेंगे? इनको अति दुःखित देख श्रीकृष्ण ऐसे गर्म हुए कि वह मुँह मे रख न सका, ज्यों ही उसने इन्हे उगला त्यों ही इन्होंने उसकी चोंच पकड़ ओंठ पाँव तले दबाय चीर डाला। सन्ध्या समय बछड़े घेर सखाओं को साथ ले हंसते खेलते घर आये।

एक दिन प्रातःकाल होते ही श्रीकृष्ण बछड़े चरावने वन को चले। उनके साथ सब ग्वाल-बाल भी अपने घर से छाक ले २ संग हो लिये। और वन के फल फूलों के गहने बनाय, उन्हे पहन कर खेलने लगे, पशु और पक्षियों की बोली बोल बोल भाँति २ के कुतूहल कर नाचने लगे।

इतने ही मे कंस का पठाया अघासुर नामक राक्षस आया। वह आन ही एक बड़ा अजगर हो मुँह पसार बैठा। इधर सब सखा समेत श्रीकृष्ण भी खेलते २ वहीं जा निकले वहाँ वह घात लगाये मुँह बाये बैठा था। दूर ही से उसे देख ग्वाल-बाल आपस मे कहने लगे कि भाई! यह तो कोई बड़ा पहाड़ है कि जिसकी कन्दरा इतनी बड़ी है। ऐसे कहते कहते और बछड़े चरते छोड़, उसके पास पहुंचे। तब एक लड़का उसका मुख खुला देख बोला कि भाई! यह तो कोई अति भयावनी गुफा है।

इसके भीतर न जाँयगे। फिर तोख नामक सखा बोला कि चलो इसमें धँस चलें, कृष्ण के साथ रहते हम क्यों डरें। यदि कोई असुर होगा, तो बकासुर की रीति से मारा जायगा।

यहाँ सब सखा खडे बातें करते ही थे कि उसने एक ऐसी लम्बी साँस खैंची कि बछडों समेत सब ग्वालवाल उड़के उसके मुख मे जा पड़े। वहाँ विषभरी तप्ती २ भाप ज्यों लगी त्यों व्याकुल हो बछड़े रँभाने और सखा पुकारने लगे कि हे कृष्ण प्यारे! वेग सुध लो, नहीं तो सब जल मरते हैं। उनकी पुकार सुनते ही आतुर हो, श्रीकृष्ण भी उसके मुख मे पड़ गये। उसने प्रसन्न हो मुँह मूँद लिया, वहाँ श्रीकृष्ण ने अपना शरीर इतना बढ़ाया कि उसका पेट फट गया। सब बछेरू और ग्वालवाल निकल पड़े। उस समय आनन्द मानकर देवताओं ने फूल अमृत बरसाय सब की तपन हर ली। तब ग्वालवाल श्रीकृष्ण से कहने लगे कि भैया! असुर को मार आज तूने भले बचाये नहीं तो सब मर चुके थे।

ऐसे अघासुर को मार श्रीकृष्णचन्द्र बछड़े घेर, सखाओं को साथ ले, आगे चले। कुछ दूर जाय कदम की छाँह मे खड़े हो, बंशी बजाय, सब ग्वालबालों को बुलाय के कहा कि भैया! यह भली ठौर है। इसे छोड आगे कहाँ जाँय। यहीं बैठ हम लोग छाक खायें। यह सुनते ही उन्होंने बछड़े तो चरने को छोड दिये और आक, ढाक, बड, कदम, कवल के पात लाय, पत्तल दोने बनाय झाड़ बुहार श्री कृष्ण के चारों ओर पाती बाँध बैठ गये। फिर अपनी २ छाक खोल २ आपस मे परोसने लगे।

जब सब वस्तु परोस चुके तब श्री कृष्णचन्द्र ने सब के बीच मे खड़े हो, पहले आप कौर उठाये, फिर खाने की आज्ञा दी। तब वे सब खाने लगे। उन मे मोर मुकुट धरे वनमाला पहिरे, लकुट लिये, त्रिभंगी छवि किये, पीत पट ओढ़े हंस २ श्रीकृष्ण भी अपनी छाक मे से सब को खिलाते थे। जब एक २ पनवारे मे से उठाय २ चाख चाख खट्टे, मीठे, तीते, चरपरे का स्वाद कहते जाते थे। उस समय मण्डली मे ऐसे सुहावने लगते थे कि जैसे तारों मे चन्द्रमा। उस समय ब्रह्मा आदि सब देवता ... २ विमानों मे बैठ, आकाश से ग्वाल मण्डली का सुख देख रहे थे। ... ब्रह्मा आय सबके बछड़े चुराय ले गये। यहां सब ग्वालवालों ने

खाते २ चिन्ता कर श्रीकृष्ण से कहा कि हे भैया ! हम तो निश्चिन्ताई से बैठे खा रहे हैं, न जाने बछड़े कहा निकल गये होंगे ?

तब बालन सों कहत कन्हाई । तुम सब जेंवन रहियो भाई ॥
जिन कोउ उठै करे औसेर । सब के बछरा ल्याऊं घर ॥

ऐसे कह, कुछ दूर बन मे जाय, जब यह जाना कि यहां से बछड़े ब्रह्मा हर ले गये, तब श्रीकृष्ण वैसे ही बछडे और बना ले आये । जब यहा आयके देखा कि ग्वालबालों को भी उठाय ले गये हैं । फिर उन्होंने ग्वालबाल भी जैसे तैसे ही बनाये और सांझ हुई जान सब को साथ ले, वृन्दावन आये । सब ग्वालबाल और बछडे अपने २ घर गये । परन्तु किसी ने यह भेद न जाना कि ये हमारे बालक और बछडे नहीं है, वरन् और दिन दिन उनसे प्रीति बढती ही चली गई । इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी बोले कि हे महाराज ' ब्रह्मा वहा से ग्वालबाल बछड़े को ले जाय, एक पर्वत की कन्दरा मे धर, उसके मुँह पर पत्थर की शिला धर भूल गये । और वहा श्रीकृष्ण नित्य नई २ लीला करते थे । इसमे एक वर्ष बीत गया । तब ब्रह्मा को सुध आई तो मनमे कहने लगे कि मेरा तो एक पल भी नहीं हुआ, परन्तु नर का एक वर्ष हो गया । इससे अब चल कर देखना चाहिये कि ब्रज मे ग्वालबाल और बछड़ों के विना क्या गति भई । यह विचार उठकर वहा आये, जहां कन्दरा मे सब को बन्द कर गये थे । शिला उठाय के देखा तो लड़के और बछड़े घोर निद्रा मे सोये पडे है । वहा से चल वृन्दावन मे आये । बालक और बछेरू सब ज्यों के त्यों देख अचम्भे मे हो कहने लगे कि ग्वाल बछडे यहा कैसे आये ? या तो कृष्ण ने नये उपजाये, या मै भ्रम मे हूँ । इतना कह फिर कन्दरा को देखने गये । जितने मे देख कर आवै, उतने ही बीच में यहां श्रीकृष्णचन्द्र ने ऐसी माया करी कि जितने ग्वालबाल और बछडे थे सब चतुर्भुज हो गये और एक एक के आगे ब्रह्मा रुद्र इन्द्रादि हाथ जोड़ खडे हैं ।

यह देख देवता डर कर नैन मूद, थर थर कापने लगे । जब अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र ने जाना कि ब्रह्मा अति व्याकुल हैं तब सब का अंश हर लिया और आप अकेले ही रह गये । ऐसे होगये कि जैसे भिन्न भिन्न बादल एक हो जायँ ।

श्रीशुकदेव जी बोले कि हे राजन्! जब श्रीकृष्ण ने अपनी माया उठा ली, तब ब्रह्मा को अपने शरीर का ज्ञान हुआ। ज्ञान होते ही ध्यान कर भगवान् के पास अति गिड़गिड़ाय कर पाँवों मे पड़, विनती कर, हाथ बाँध खड़ा हो कहने लगे कि हे नाथ! तुमने बड़ी कृपा करी, जो मेरा गर्व दूर किया, इसी अंश से अन्धा हो गया था। ऐसी बुद्धि किसकी है? जो विना तुम्हारी दया के तुम्हारे चरित्रों को जाने। तुम्हारी माया ने सब को मोह लिया है। ऐसा कौन है। जो तुम्हे मोहे? तुम सबके कर्ता हो। तुम्हारे रोम रोम मे मुझ से अनेक ब्रह्मा पड़े हैं। मै किस गिनती मे हूँ? दीनदयाल! अब अपराध क्षमा कीजिये, मेरा दोष चित में न दीजिये।

इतना वचन सुन श्रीकृष्ण मुसकराये। तब ब्रह्मा ने सब ग्वालबाल और बछड़े सोते के सोते ला दिये। फिर लज्जित हो स्तुति कर अपने स्थान को गये। जैसी मण्डली आगे थी, तैसी ही बन गई। मोह निद्रा में बरस दिन बीता सो किसी ने न जाना। ज्यों ग्वालवालों की नींद गई त्यों कृष्ण बछड़े घेर लाये। तब उससे लड़के बोले भैया! तुम तो बछड़े वेग ही लाये, हम सब भोजन करने भी न पाये। ऐसे आपस मे बतलाय, बछेरू ले सब हंसते-खेलते अपने घर आये।

(४)

ऋतु लीलाएं

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! अब मैं ऋतु वरनन करता हूँ। श्रीकृष्णचन्द्र जी ने जिस २ ऋतु में जिन २ लीलाओं को करा है, वह कहता हूँ तुम चित्त देकर सुनो। प्रथम ग्रीष्म ऋतु आई, जिसने आते ही सब संसार का सुख ले लिया। धरती से आकाश तक तपा कर अग्नि समान किया। परन्तु श्री कृष्ण के प्रताप से वृन्दावन मे सदा वसन्त ही रहा। जहां पर घनी घनी कुंजों के वृक्षों पर बेलें लहलहा रहीं, वरन वरन के फूल फूले हुए, तिन पर भौरों के झुण्ड के झुण्ड गूंज रहे, आम की डालियों पर कोयलें कुहुक रहीं, ठंडी छाहों मे मोर नाच रहे, सुगन्ध लिये मीठी मीठी पवन वह रही और वन के एक ओर यमुना [illegible] ही शोभा दे रही थी। वहां कृष्ण बलराम गायें छोड़ सब समेत में अनूठे २ खेल खेल रहे। इतने में कंस का पठाया ग्वाल का

रूप बनाय पलम्ब नामक राक्षस तहां आया। उसे देखते ही श्रीकृष्ण-चन्द्र ने बलदेव जी से सैन से कहा कि:—

अपनो सखा नहीं बलवीर। कपटरूप यह मनुज शरीर॥
याके वध को करो उपाय। ग्वालरूप मार्यो नहिं जाय॥
जब यह धारै रूप आपनो। तब तुम याहि तत्छन हनौ॥

इतनी बातें बलदेव जी को बताय, श्रीकृष्ण जी ने प्रलम्ब को हंकार पास बुलाय, हाथ पकड के कहा कि—हे भैया! आज हम सब कोई मिल के कुम्कौअल खेलें जो हारै सो घोड़ा बनकर घुमावे।

यह कह कर उसे साथ ले, आधे ग्वालवाल बांट लिये। आधे अपने लिये और आधे बलराम जी को दिये। दोनों तरफ लडकों को बैठाय, फल फलों का नाम पूछने और बतलाने लगे। इस बताने मे प्रथम श्रीकृष्ण ही हारे, बलदेव जीते। तब श्रीकृष्ण की ओर वाले बोले कि बलदेव जी के साथियों को कन्धे पर चढ़ाय ये ले चलो। तब प्रलम्ब बलराम को सब से आगे ले भागा और बन मे जाय उसने अपनी देह बढ़ाई। उस समय उस पहाड ऐसे राक्षस पर, बलदेव जी ऐसे शोभायमान हो रहे थे जैसे श्याम घटा पर चादनी। उनके कुण्डलों की दमक बिजली सी चमकती थी, पसीना मेह सा बरसता था। इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे महाराज! वह ज्यों ही अकेला पाय बलराम जी को मारने को उद्यत हुआ, त्यों ही उन्होंने मारे घूसों के उसे मार गिराया।

जब प्रलम्ब को मार कर बलराम चले. उसी समय सामने से सखाओं समेत घनश्याम आय मिले और जो ग्वाल बन मे गाय चराते थे, वे भी कहते हुए कि, "दाऊ ने असुर मारा है," यह सुनते ही सब गौएँ छोड, उधर देखने को गये। इधर गौएँ चरती चरती डाभ-काश मे निकल मूंज-बन मे बढ़ गई। दोनों भाई वहा से आय देखें तो एक भी गौ नहीं है।

इतने मे किसी सखा ने आय, हाथ जोड श्रीकृष्ण से कहा कि हे महाराज! गायें सब मूंज-बन मे पैठ गई हैं उनके पीछे, ग्वालवाल न्यारे ही ही ढूंढते भटकते फिरते हैं। इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्ण ने कदम पर चढ जो ऊंचे सुर से बंसी बजाई, सोई सुन ग्वालवाल और सब गाएं मूंज-बन को फाड़ कर ऐसे आन मिलीं, जैसे सावन भादों की नदियां उम्ड-

तरङ्ग को चीर समुद्र में जा मिलती हैं। उसी बीच में देखते क्या हैं कि वन चारों ओर से ढहड़ २ जला चला जाता है। यह देख ग्वालबाल और सखा अति घबराय भय खाकर पुकारे हे कृष्ण! हे कृष्ण! इस आग से बेग ही बचाओ नहीं तो, अभी एक क्षण में सब जल मरते हैं। तब कृष्ण बोले कि तुम सब अपनी आंखें बन्द करलो यह सुन उन्होंने नैन मूंद लिये, तब कृष्ण जी ने पल भर में आग बुझाय एक और माया करी कि गायों समेत सब ग्वालबालों को भण्डारी वन मे ले आये, और कहा कि आँखें खोल दो। जब सब ने आँखें खोली, तो कहीं कुछ नहीं।

गौयें ले सब मिल कृष्ण बलराम के साथ वृन्दावन आये और सबों ने अपने २ घर जाय कहा कि आज वन मे बलराम जी ने प्रलम्ब नामक राक्षस को मारा और मूंजबन मे आग लगी थी वह भी हरि के प्रताप से बुझ गई। इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने कहा, हे राजन्! ग्वालों के मुख से यह बात सुन सब ब्रजवासी देखने को गये परन्तु उन्होंने कृष्ण चरित्र का कुछ भी भेद न पाया।

ग्रीष्म की अति अनीति देख, प्रचण्ड नृप पावस पृथ्वी के पशु पक्षी और जीव जन्तु पर दया विचार गरजता था, मानो धौंसा बजता था और वरन २ की जो घटा घिर आई थी सोई शूरवीर रावत थे। उनके बीच मे विजली की दमक मानो शस्त्र की चमक थी। ठौर २ मे बकपंक्ती मानो श्वेत ध्वजा सी फहराय रही थी। दादुर मोर कड़खैतों की भांति यश बखानते थे। बड़ी बड़ी बूँदों की झड़ी लगी थी। इस धूमधाम से पावस को आते देख ग्रीष्म खेत छोड़ अपना जीव ले भागा। मेघ ने जल बरस कर पृथ्वी को सुख दिया। गिर शीतल हुए। उनमे से अठारह भार पुत्र उपजे, सो फल फूल भेंट ले २ पिता को प्रणाम करने लगे। उस काल मे वृन्दाबन की भूमि ऐसी सुहावनी लगती थी जैसे कि शृङ्गार किये कामिनी। जहाँ तहाँ नदी नाले सरोवर भरे हुए, तिन पर हंस सारस सरख शोभा दे रहे, ऊंचे २ रूखों की डालियां झूम रही, उन पर पिक चातक कपोत कीर बैठे कोलाहल कर रहे थे और ठाँव २ पर कुसुम्भे रंग ओढे पहिरे गोपी ग्वाल झूल २ ऊंचे सुरों मे मलारें गाते थे। ट जाय श्रीकृष्ण बलराम भी बाल लीला कर २ अधिक सुख

दिखाते थे। इस आनन्द से जब वर्षा ऋतु बीती, तब श्रीकृष्ण ग्वालबालों से कहने लगे कि भैया! अब तो सुखदाई शरद ऋतु आई।

श्रीकृष्णचन्द्र ग्वाल बालों को साथ लेकर लीला करने लगे। जब तक श्रीकृष्ण वन मे धेनु चरावे तब तक गोपियां घर बैठी हरि का यश गावें। एक दिन श्रीकृष्ण ने बन मे बेनु बजाई सो उसी बंसी की धुनि सुन कर सारी ब्रज नारी हड़बड़ा कर उठ धाई और एक ठौर मे मिलकर बाट मे आ बैठीं। वहां आपस मे कहने लगी कि हमारे लोचन तब सुफल होंगे, जब श्रीकृष्ण के दर्शन पावेंगे।

दूसरी बोली की जब श्रीकृष्ण बासुरी को पीताम्बर से पोंछ कर बजाते हैं, तब सुर, मुनि, किन्नर और गन्धर्व आदि अपनी २ स्त्रियों को साथ ले विमानों पर बैठ २ हंस कर सुनने को आते हैं। बंशी का स्वर सुन एक गोपी ने उत्तर दिया कि पहले तो इसने बासके वंश मे उपज कर हरिका सुमिरन किया, पीछे घाम, शीत, जल आदि का कष्ट लिया है। फिर टूक २ हो जलते लोह से देह छिदाय धुआ पिया है।

यह सुन एक ब्रजनारी बोली कि ब्रजनाथ ने हमको वेनु क्यों न रचा जो निशिदिन हरि के साथ रहती। इतनी कथा सुनाय कर श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि महाराज! जब तक श्रकृष्ण धेनु चराय वन से न आवैं तब तब नित्त गोपी हरि के गुण गावै।

(५)

गोवर्धन-उत्थापन

श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन्! जैसे कृष्णचन्द्र ने गिरि गोवर्धन उठाया और इन्द्र का गर्व हराया, अब सोई कथा कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो। सब ब्रजवासी बरसवें दिन कार्तिक वदी चौदस को नहाय धोय केसर चन्दन से चौक पुराय भांति भांति की मिठाई और पकवान धर, धूप दीप कर, इन्द्र की पूजा किया करते थे। यह रीति उनके यहां परंपरा से चली आती थी। एक दिन वही दिवस आया, तब नन्दजी ने बहुत सी खाने की सामग्री बनवाई और सब ब्रजवासियों के भी घर २ सामग्री भोजन की हो रही थी वहा श्रीकृष्ण ने आकर माता से यह पूछा कि

माता जी आज घर घर में पकवान मिठाई जो हो रही है, सो क्या है ? हमको भेद समझा कर कहो, जो मेरे मन की दुविधा जाय। यह सुन यशोदा बोली कि बेटा ! इस समय मुझे बात करने का अवकाश नहीं है, तुम अपने पिता से जाकर पूछो, वे बुझाय कर कहेंगे। यह सुन श्रीकृष्ण ने नन्द, उपनन्द के पास आय कर कहा कि पिता ! आज किस देवता के पूजन की ऐसी धूमधाम है। जिसके लिये घर घर पकवान मिठाई हो रही है। वे कैसे भक्ति, मुक्ति, वर के दाता हैं ? उनका नाम और गुण कहो, जो मेरे मन का सन्देह जाय।

तब नन्दमहर बोले कि बेटा ! यह भेद तूने अब तक नहीं समझा है कि मेघों के पति जो सुरपति हैं, तिनकी यह पूजा है। जिनकी कृपा से संसार मे ऋद्धि सिद्धि मिलती है और तृण, जल, अन्न होता है, बन उपबन फलते हैं। उससे सब जीव जन्तु पशु पक्षी आनन्द से रहते हैं। इन्द्र पूजा की यह रीति हमारे यहां पुरुषाओं के आगे से चली आती है, कुछ आज ही नहीं निकली है। इतनी बात नन्द जी की सुन कर श्रीकृष्ण-चन्द्र बोले कि हे पिता, यदि हमारे बड़ों ने जाने वा अनजाने इन्द्र की पूजा की तो की, परन्तु अब तुम बूझ कर धर्म का पथ छोड ऊटपटाग क्यों चलते हो। इन्द्र के मानने से कुछ नहीं होता है। क्योंकि वह भक्ति मुक्ति का दाता नहीं और उससे ऋद्धि सिद्धि ही किसने पाई है ? यह तुम्हीं कहो कि उसे किसने वर दिया है ? हाँ, एक बात है तप यज्ञादिक के करने वाले देवताओं ने उसे अपना राजा बनाय इन्द्रासन दे रक्खा है, इससे कुछ परमेश्वर नहीं हो सकता है। सुनो जब असुरों से बार बार हारता है, तब भाग के कहीं पर छिप कर अपने दिन काटता है। ऐसे कायर को क्यों मानो, अपना धर्म किस लिये नहीं पहिचानो। इन्द्र का किया कुछ नहीं हो सकता है, जो कर्म में लिखा है सोई होगा। सुख, सम्पत, दारा, भाई, बन्धु ये भी सब अपने धर्म कर्म से ही मिलते हैं और आठ मास सूर्य जो जल सोखता है, सोई चार महीने बरसता है। उसी से पृथ्वी मे तृण, जल, अन्न होता है। और ब्रह्मा ने जो चारों वर्ण बनाये ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र तिन के पीछे भी एक एक कर्म लगा

दिया है। जैसे कि ब्राह्मण तो वेद पढ़े, क्षत्री सब की रक्षा करे, वैश्य खेती बनज और शूद्र इन तीनों की सेवा में रहे।

हे पिता! हम वैश्य हैं। गायें बढ़ीं। इससे यह गोकुल हुआ, और उसी से नाम भी गोप पड़ गया। हमारा यही कर्म है कि खेती बनज करें और गो ब्राह्मण की सेवा में रहें। वेद की आज्ञा है कि अपने कुल की रीति न छोड़िये। इससे अब इन्द्र की पूजा छोड़ दीजिये और बन पर्वत की पूजा कीजिये। क्योंकि हम बनबासी हैं और हमारे राजा भी वेई हैं जिनके राज्य में हम सुख से रहते हैं तिन्हें छोड़ और देव को पूजना हमें उचित नहीं है। इससे अब सब पकवान मिठाई अन्न लेकर चलो और गोवर्धन की पूजा करो।

इतनी बात के सुनते ही नन्द उपनन्द उठकर वहां गये, जहां बड़े २ गोप अथाई पर बैठे थे। इन्होंने जाते ही श्रीकृष्ण की कही सब बातें सुनाईं। वे सुनते ही बोले कि श्रीकृष्ण सच कहता है, तुम ही विचारो कि इन्द्र कौन है? और हम किस लिये उसे मानते हैं? उसकी तो पूजा ही भूल है।

हमें कहा सम्पति सों काजा ! पूजैं बन सरिता गिरिराजा ॥

ऐसे कह, फिर सब गोपों ने कहा कि:—

दोहा—भली मतो कान्हर कियो, तजिये सिगरे देव।
गोवर्धन पर्वत बड़ो, ताकी कीजे सेव ॥

यह वचन सुनते ही नन्द जी ने प्रसन्न हो, गांव भर में ढिंढोरा फिरवा दिया कि कल दिन हम सारे ब्रजवासी चलकर गोवर्धन की पूजा करेंगे जिसके २ घर में इन्द्र-पूजा के लिये पकवान मिठाई बनी है सो सब ले ले कर भोर ही गोवर्धन पर जइयो। इतनी बात सुन सकल ब्रजवासी दूसरे दिन भोर में भी तड़के ही उठ २ कर स्नान ध्यान कर सब सामग्री झालों, परातों, थालों, हंडों और चरुओं में भर, गाड़ियों, बंहगियों, पर रखवाय २ गोवर्धन को चले। उसी समय नन्द उपनन्द भी कुटुम्ब समेत सामान ले सब के साथ हो लिये और बाजे गाजे से चले २ सब मिल गोवर्धन पहुंचे।

वहां जाय, पर्वत के चारों ओर झाड़ बुहार, जल छिड़क, घेवर, बावर,

जलेबी, लड्डू, खुरमें, इमरती, फेनी, पेड़े, बरफी, खाजे, गुंझे, मठड़ी, सादी पूरी, कचौरी, पापड़, पकौड़ी, मलगाजा आदि पकवान और भांति भांति के भोजन व्यंजन सधाने चुन चुन कर रख लिये कि जिन मे सारा पर्वत छिप गया। और ऊपर फूलों की माला पहिराय बरन २ पाटम्बर तान दिये।

तिस समय की शोभा बरनी नहीं जाती। गिरि ऐसा सुहावना लगता था, जैसे किसी ने गहने कपड़े पहराय नख सिख में सिंगार किया होय और नन्दजी ने पुरोहित बुलाय, सब ग्वालबालों को साथ ले, रोली, अक्षत, पुष्प चढ़ाय, धूप दीप नैवेद्य कर, पान सुपारी दक्षिणा धर, वेद की विधि से पूजा की। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि अब तुम शुद्ध मन से गिरिराज जी का ध्यान करो, तो वे आय कर तुम लोगों को दर्शन दें और भोजन करें।

श्रीकृष्ण से यह सुनते ही नन्द यशोदा समेत सब गोपी गोप कर जोड़ नैन मूंद ध्यान लगाय खड़े हुए। तिस काल नन्दलाल जी ने प्रबल दूसरी देह धर बड़े २ हाथ पाव कर कमल नैन चन्द्रमुख हो मुकट धर, बनमाला गरे, पीत बसन और जटित आभूषण पहरे, मुंह पसारे चुपचाप पर्वत के बीच से निकले और उधर आपही अपने दूसरे रूप को देख सब से पुकार कर कहा कि देखो पूजा तुमने जी लगाय की है उन गिरिराज ने प्रकट होय दर्शन दिया है। इतना वचन सुनाय श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने गिरिराज को दण्डवत की। उनकी देखादेखी सब गोपी गोप प्रणाम कर आपस मे कहने लगे कि इस भांति इन्द्र ने कब दर्शन दिया था। हम वृथा ही उस की पूजा करते थे और ऐसा जानते थे कि पुरुषाओं ने ऐसे प्रत्यक्ष देव को छोड़ क्यों इन्द्र को माना था ? यह बात समझ मे नहीं आती। यों सब बतलाय रहे थे कि इतने मे श्रीकृष्ण बोले अब देखते क्या हो, जो भोजन लाये हो सो खिलाओ। इतना वचन सुनते ही गोप षटरस भोजन थाल परातों मे भर २ उठाय २ देने लगे और गोवर्धननाथ हाथ बढ़ाय २ भोजन करने लगे। निदान जितनी सामग्री नन्द समेत सब व्रजवासी थे, सो खाई। तदनन्तर वह सूरत पर्वत मे समा गई। इस भांति

ने अद्भुत लीला करी, श्रीकृष्ण चन्द्र सब को साथ ले, पर्वत की परिक्रमा दे, दूसरे दिन गोवर्धन से चले, हंसते खेलते बृन्दावन आये। तिस काल घर २ आनन्द मङ्गल बधाये होने लगे, और ग्वालबाल सब गाय बछड़ों को रंग २ उनके गले मे घंटालियां घुंघरू बाध २ न्यारे हो कुतूहल कर रहे थे!

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि:—

जब सारे देवता इन्द्र के पास गये तब वह उनसे पूछने लगा कि तुम मुझे समझा कर कहो कि कल ब्रज मे किसकी पूजा थी? इसी बीच में नारद जी भी आय पहुंचे और इन्द्र से कहने लगे कि सुनो महाराज। तुम्हें सब कोई मानता है, पर एक ब्रजवासी नहीं मानते। क्योंकि नंद के बेटा हुआ है उसी का कहा सब करते हैं। उन्होंने तुम्हारी पूजा मेट कर कल से पर्वत पुजवाया है। इतनी बात के सुनते ही इन्द्र क्रोध कर बोला कि ब्रजवासियो को धन अधिक बढ़ा है, इसी से उन्हे अति गर्व हुआ है।

जप तप यज्ञ तज्यो व्रत नेरो। काल दरिद्र बुलायो तेरो॥
मानुप कृष्ण देव को मानै। ताकी बातै साची जानै॥
यह बालक मूरख अज्ञाना। बहुवादी राखै अभिमाना॥
अबहीं उनकी गर्व परिहरों। पशु खोऊ लक्ष्मी बिन करों॥

ऐसे बकझक खिजलाय कर सुरपति ने मेघपति को बुला भेजा। वह सुनत ही डरता कांपता हाथ जोड सन्मुख आ खड़ा हुआ उसे देखते ही इन्द्र बोला कि तुम अभी अपना सब दल साथ ले जाओ और गोवर्धन पर्वत समेत ब्रज मण्डल को बरस बहाओ। ऐसा कर दो कि कही गिरि का चिन्ह और ब्रजवासियों का नाम न रहे।

इतनी आज्ञा पाय मेघपति दण्डवत कर राजा इन्द्र से विदा हुआ और उसने अपने स्थान पर आय बड़े २ मेघों को बुलाय के कहा कि सुनो जी, महाराज की आज्ञा है कि तुम अभी जाय ब्रजमण्डल को बरस के बहा दो। यह बचन सुन, सब मेघ अपने २ दल बादल ले ले कर मेघपति के साथ हो लिये। आते ही ब्रजमण्डल को घेर लिया और गरज २ बड़ी २ बूंद के मूसलाधार जल बरसाने लगे और उंगली से गिरि को बताने लगे।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे महाराज ! जब ऐसे चहुँ ओर से घनघोर घटा अखण्ड जल बरसने लगा तब नन्द यशोदा समेत सब गोपी ग्वालबाल भय खा भीगते थर थर कांपते श्रीकृष्ण के पास जाय पुकारे कि हे कृष्ण ! इस महाप्रलय के जल से कैसे बचेंगे ? तब तो तुमने इन्द्र की पूजा मेट पर्वत पुजवाया, अब उसको वेग बुलाइये जो आय हमारी रक्षा करे, नहीं तो क्षण भर में नगर समेत डूब मरते हैं। इतनी बात सुन और सब को भयातुर देख श्रीकृष्ण बोले कि तुम अपने जी मे किसी बात की चिन्ता मत करो, गिरिराज अभी आय तुम्हारी रक्षा करते हैं। यों कह गोवर्धन को तेज से तपाया, अग्निसम किया और बाएँ हाथ की अंगुली पर उठाय लिया। तिस काल सब व्रजवासी अपने ढोरों समेत आय के उसके निचे खड़े हुए और श्रीकृष्णचन्द्र को देख २ अचरज कर आपस में कहने लगे कि—

है कोउ आदि पुरुष औतारी। देवन हू को देव मुरारी॥
मोहन मानुष कैसे भाई। अंगुरी पर क्यों गिरि ठहराई॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि राजा परीक्षित से कहने लगे कि उधर तो मेघपति अपना दल लिये क्रोध कर २ मूसलधार जल बरसाता था और इधर तपे हुए पर्वत पर बूंदे गिर कर तपे तवे की तरह जल जाती थीं। यह समाचार सुन इन्द्र कोप कर चढ़ आया और लगातार उसी भांति सात दिन पानी बरसता रहा परन्तु व्रज मे हरि के प्रताप से एक बूंद भी न पड़ी। जब सब जल निपटा तब मेघों ने आय हाथ जोड़ कर कहा कि हे नाथ ! महाप्रलय का जितना जल था सब का सब हो चुका अब क्या आज्ञा है ? यह सुन इन्द्र ने अपने ज्ञान ध्यान से विचार किया कि आदि पुरुष ने अवतार लिया है। नहीं तो किस में इतनी सामर्थ थी, जो गिरि धारण कर व्रज की रक्षा करता ! इन्द्र ऐसा सोच समझ कर अछता पछता कर मेघों समेत अपने स्थान को गया और बादल उड़े, प्रकाश हुआ, तब सब व्रजवासियों ने प्रसन्न हो श्रीकृष्ण से कहा हे महाराज ! अब गिरि उतार धरिये मेघ जाता रहा। यह वचन सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र जहाँ का तहाँ रख दिया।

[illegible] दे जी बोले कि जब हरि ने गिरि को कर से उतार धरा,

उस समय बड़े २ गोप इस अद्भुत व्यापार को देख यों कह रहे थे कि जिसकी शक्ति ने इस महाप्रलय से आज व्रज मण्डल बचाया, तिसे हम नन्द सुत कैसे कहें ? हां, किसी समय नन्द यशोदा ने महातप किया था उसी प्रभाव से भगवान् ने आय कर इनके घर जनम लिया है । फिर तो ग्वाल बाल आय २ श्रीकृष्ण के गले से मिल २ पूछने लगे कि भैया तूने इस कोमल कमल ऐसे हाथ पर ऐसा भारी पर्वत का का बोझ कैसे सम्भाला । तदन्तर नन्द यशोदा करुणा कर पुत्र को हृदय लगाय, हाथ पाव अँगुली चटकाय, कहने लगे कि साल दिन गिरि कर पर रखा, अतः हाथ दुखता होगा ।

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे महाराज । भोर होते होते ही कृष्ण बलराम सब गायें और ग्वालवालों को संग कर अपनी २ छाछें ले वेणु बजाते और मधुर २ सुर से गाते धेनु चरावते वन को चले । उस समय राजा इन्द्र सकल देवताओ को साथ लिये, कामधेनु को आगे किये, एरावत हाथी पर चढ़ सुरलोक से चल, वृन्दावन मे आय बन की बाट खड़ा हुआ । जब श्रीकृष्ण चन्द्र उसे दूर से दिखाई दिये तब गज से उतर नंग पांवों गले मे कपड़ा डाले, थर थर कांप आकर श्रीकृष्ण के चरणो पर गिरा और पतछाय २ रो २ कहने लगा कि हे व्रजवाल मुझ पर दया करो ।

मै अभिमानी गर्व अति कियो । राजस तामस मे मन दियो ।।
धनमद कर सम्पति सुखमाना । भेद न कछू तुम्हारो जाना ।।
तुम परमेश्वर सबके ईशा । और दूसरो को जगदीशा ।।
ब्रह्मा रुद्र आदि वरदाई । तुम्हरी दई सम्पदा पाई ।।
जगतपिता तुम निगमनिवासी । सेवत नित कमला भइ दासी ।।
जन के हित लिल अवतारा । तव तव हरत भूमि के भारा ।।
दूर करो सब चूक हमारी । अभिमानी मूरख हो भारी ।।

जब ऐसे दीन हो इन्द्र ने स्तुति करी तब श्रीकृष्ण चन्द्र दयालु हो बोले कि अब तो तू कामधेनु के साथ आया है, इससे तेरा अपराध क्षमा किया । परन्तु फिर गर्व मत कीजो । क्योंकि गर्व करने से ज्ञान जाता है और कुमति बढ़ती है, इसी से अपमान होता है । इतनी बातें श्रीकृष्ण के

मुख से सुनते ही इन्द्र ने उठकर वेद की विधि से श्रीकृष्ण की पूजा की और गोविन्द नाम धर चरणामृत ले, परिक्रमा करी। उस समय गन्धर्व भाँति २ के बाजे बजा २ श्रीकृष्ण का यश गाने और देवता अपने अपने विमानों में बैठ आकाश से फूल बरसाने लगे। उस काल में ऐसा समा हुआ कि मानो फिर श्रीकृष्ण ने जन्म लिया है। जब पूजा से निश्चित हो, इन्द्र हाथ जोड़ सन्मुख खड़ा हुआ तब श्रीकृष्ण ने आज्ञा दी कि अब तुम कामधेनु समेत अपने पुर को जाओ। यह आज्ञा पाते ही कामधेनु और इन्द्र बिदा होय, दण्डवत् कर, इन्द्रलोक को गये और श्रीकृष्ण गौ चराय सांझ हुए सब ग्वालों को लिये वृन्दावन आये। और उन्होंने अपने घर जाय २ के कहा कि आज हमने हरि-प्रताप से इन्द्र का दर्शन बन मे किया है।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे राजन! यह जो श्री गोविन्द की कथा मैंने तुम्हे सुनाई है इसके सुनने से संसार मे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ मिलते है।

---

(६)

कंस के दूतों की हत्या

श्री शुकदेव मुनि बोले कि हे महाराज! एक दिन नारद मुनि जी कंस के पास आये और उसका कोप बढ़ाने को उन्होंने बलराम और श्याम होने, माया के आने और कृष्ण के जाने का भेद समझा कर कहा। तब कंस क्रोध कर बोला, नारद जी! तुम सच कहते हो।

दोहा—प्रथम दिया सुत आनि के, मन परतीत बढ़ाय।
ज्यों ठग कछू दिखाइ कै, सर्वसु ले भजि जाय॥

इतना कह वसुदेव को बुलाय पकड़ बाधा और खाँड़े पर हाथ रख अकुला कर बोला।

मिला रहा तू कपटी मुझे। भला साधु जाना मै तुझे॥
दिया नन्द के कृष्ण पठाय। देखो हमे दिखाई आय॥
मनमें छुळी कही मुख औरी। आज अवश्य मारूं इहि ठौरी॥

बक झक कर फिर कंस नारद जी से कहने लगा कि कि है

महाराज ! हमने कुछ भी इस के मनका भेद न जान पाया, हुआ लड़का और कन्या को ला दिखाया, जिसे दिखाया, जिसे कहा कि मर गया सोई जो गोकुल मे बलदेव भया। इतना कह क्रोध कर होठ चबाय खड्ग उठाय ज्यों चाहा कि वसुदेव को मारूं त्यों नारद मुनिने हाथ पकड़ कर कहा कि हे राजन् ! वसुदेव को तू रख आज, और जिस मे कृष्ण बलदेव आवें सो कर काज। ऐसे समझाय बुझाय जब नारदमुनि चले गये, तब कंस ने वसुदेव को तो एक कोठरी मे बन्द किया और भयातुर हो केशी नामक राक्षस को बुला के बोला कि—

महाबली तू साथी मेरा। बड़ा भरोसा मुझ को तेरा ॥
एक बार तू व्रज मे जा। रामकृष्ण हनि मुझे दिखा ॥

इतना बचन सुनते ही केशी तो आज्ञा पा बिदा हो दण्डवत कर वृन्दावन को गया और कंस ने साल, दुसाल, चाणूर, अरिष्ट व्योमासुर आदि जितने मन्त्री थे सब को बुला भेजा। जब वे आये तब उन्हें समझा कर कहने लगा कि मेरा बैरी पास आय बसा है, तुम अपने जी मे सोच विचार कर, मेरे मन मे जो शूल खटकता है, उसे निकालो। तब मन्त्री बोले कि हे पृथ्वीनाथ ! आप महाबली हो किस से डरते हो। राम कृष्ण को मारना क्या बड़ी बात है। कुछ चिन्ता मत करो। जिस छल बल से वे यहां आवें सोई हम तुम्हें बतावें।

पहले तो यहां भली भांति से एक ऐसी सुन्दर रङ्गभूमि बनवावें, कि जिसकी शोभा सुनते ही देखने को नगर अरु गांव २ के लोग उठ धावें। पीछे महादेव जी का यज्ञ कराओ और होम के लिये बकरे भैंसे मंगाओ। यह समाचार सुन व्रजवासी भेंट ले आवेंगे, तिन के साथ राम कृष्ण भी आवेंगे। उन्हें तभी कोई मल्ल पछाड़ेगा। इतनी बात के सुनते ही—

सो०—कहै कंस मन लाय, भलो मतो मन्त्री कियो।
लीने मल्ल बुलाय, आदर कर बीरा दियो ॥

फिर सभा कर अपने बड़े बड़े राक्षसों से कहने लगा कि जब हमारे भानजे राम कृष्ण यहां आवें तब तुम में से कोई उन्हें मार डा[illegible] तो मेरे जी का खटका मिट जाय। उन्हें यों समझाय पुनि महा[illegible] बुला के बोला कि तेरे बश मे मतवाला हाथी है सो तू [illegible] पर

खड़ा रहियो, जब दोनों आवें और द्वार मे पांव दें तव तू हाथी से चिरवा डालियो, किसी भाँति भागने न पावें। जो इन दोनों को मारेगा, सो मुंह मांगा धन पावेगा।

ऐसे सवको सुनाय समझायबुझाय कार्तिक वदी चौदस को शिव का यज्ञ ठहराय कंसने अक्रूर को बुलाय अति भाव भगति कर घरके भीतर ले जाय के एक सिंहासन पर अपने पास बैठाय हाथ पकड़ कर अति प्यार से कहा कि तुम यदुकुल मे सवसे बड़े ज्ञानी, धर्मात्मा, धीर हो, इस लिये तुम्हे देख सुखी न होय। इससे जैसे इन्द्र का काज वामन ने जय किया, जो छल कर, वलि का सारा राज ले लिया और राजा वलि को पाताल में पठाया। तैसे तुम हमारा एक काम यह करो कि एक वेर वृन्दावन को जाओ और देवकी के दोनों लड़कों को जैसे वने तैसे छल कर यहाँ ले आवो। कहा है कि जो बड़े हैं सो आप दुःख सह पराया काज करते हैं। तिस में तुम्हें तो है हमारे सब वात की लाज। अधिक क्या कहे, जैसे वने तैसे उन्हे ले आओ। वह यहाँ सहज ही मे मारे जायेंगे, कै तो देखते ही चाणूर पछाड़ेगा, कै गज कुवलिया पकड़ चीर डालेगा। नहीं तो मै ही उठ कर मारूंगा, अपना काज अपने हाथ सँवारूंगा और दोनों को मार पीछे उग्रसेन को हनूँगा। क्योंकि वह बड़ा कपटी है, मुझे मारना चाहता है। फिर देवकी के पिता देवक को आग से जलाय पानी मे डुबाऊँगा, तव निष्कण्टक राज करेंगे। जरासन्ध जो मेरा मित्र है प्रचण्ड, उस के त्रास से काँपते हैं नौ खण्ड। और नरकासुर तथा बाणासुर आदि बड़े महाबली राक्षस जिसके सेवक हैं तिससे जा मिलूंगा, जो तुम रामकृष्ण को ले आओ।

इतनी वातें कह तर कंस फिर अक्रूर को समझाने लगा कि तुम वृन्दावन मे जाय के तहाँ नन्दसे यह कहियो कि शिव का यज्ञ है, धनुष धरा है अनेक प्रकार के कुतूहल वहाँ होयंगे। यह सुन नन्द उपनन्द गोप समेत वकरे भेंस भेंट ले देने को आवेंगे। तिन के साथ देखने को कृष्ण बलदेव भी आवेंगे। यह तो मैने तुम्हे उनके लावने का उपाय वता दिया। सज्ञान हो, और जो उक्ति वनी आवे सो करियो तुम से अधिक

इतनी बात के सुनते ही पहले तो अक्रूर ने अपने मन में विचारा कि जो मैं अब इससे कुछ भली बात कहूंगा तो यह न मानेगा। इस से मनभाती सुहाती बात कहूं। ऐसा और भी कई ठौर कहा है कि वही कहिये जो जिसे सुहाय। यों विचार सोच अक्रूर हाथ जोड़ शिर झुकाय बोले कि हे महाराज! तुमने भली भाँति बिचार किया है। यह बचन हमने भी सिर चढाय के मान लिया। होनहार पर कछु वश नहीं चलता मनुष्य अनेकों मनोरथ कर धावता है पर कर्म का लिखाही फल पावता है। सोचते हैं और, होता है और। किसी के मन का सोचा होता नहीं, आगम बाँध कर तुमने यह बात विचारी है किन्तु जानिये कैसी होय। मैंने तुम्हारी बात मान ली, कल भोर को जाऊँगा और राम कृष्ण को ले आऊंगा। ऐसे कह कंस से विदा हो अक्रूर अपने घर आये।

जब श्रीकृष्णचन्द्र ने केशी को मारा और नारद ने आय स्तुति करी, पुनि हरि ने व्योमासुर को हना, सो सब चरित्र कहता हूँ तुम चित्त देकर सुनो। भोर होते ही केशी अतिऊंचा भयावना घोड़ा बन कर बृन्दावन मे आया और लाल लाल आँखें कर नथुने चढ़ाय कान पूंछ उठाय टाप से भू खोदने और हंस २ काँध कम्पाय कम्पाय लात चलाने लगा।

उसे देखते ही ग्वालबालों ने भय खाय कर श्रीकृष्ण से जाके कहा कि आज घोड़ा वेष मे एक असुर आया है। यह सुनके श्रीकृष्ण वहीं आये जहाँ वह था और देख लड़ने को फेंटा बाँध ताल ठोक सिंह की भाँति गरज कर बोले, अरे दुष्ट! तू कंस का तो बड़ा प्रीतम है जो घोड़ा बन कर आया है, किन्तु औरों के पीछे क्यों फिरता है? आ मुझ से लड़। मैं तेरा बल देखूं कि तू दीपक के पतंग की भाँति कब तक चारों ओर फिरता है। तेरी मृत्यु तो निकट आय पहुंची है। यह वचन सुन केशी कोप कर अपने मन मे कहने लगा कि आज इसका बल देखूंगा।

इतना कह मुँह बाय के ऐसे दौड़ा कि मानो सारे संसार को खा जायगा। आते ही पहले उसने ज्यों श्रीकृष्ण पर मुँह चलाया है कि त्यों ही उन्होंने एक बेर तो टकेल कर पीछे को हटाया। जब दूसरी [illegible] फिर सम्भल के मुख फैलाय के धाया तब श्रीकृष्ण जी ने

उसके मुंह में डाल लोहे की लाठी सा करके ऐसा बढ़ाया कि जिसने उसके दशों द्वार जा रोके, तब तो केशी घबरा कर जी में कहने लगा कि अब देह फटती है। यह कैसी भई ? जो अपनी मृत्यु अपने मुंह में ली। जैसे मछली बंसी को निगल प्राण देती है तैसे मैंने भी अपना जीव आज खोया।

इतना कह उसने बहुतेरे उपाय हाथ को निकालने के लिये किये, एक भी काम न आया। निदान सांस रुककर पेट फट गया, तब पछाड़ खाय के गिरा। तब उसके शरीर से नदी की भांति लोहू बह निकला। तिस समय ग्वालबाल आय २ देखने लगे। फिर तो श्रीकृष्ण चन्द्र आगे जाय बन में एक कदम के छाँह तले खड़े हुये।

इसी बीच में बीणा हाथ मे लिये नारद मुनि जी आ पहुंचे और प्रणाम कर खड़े होय, बीन बजाय, श्री कृष्ण चन्द्र की भूत भविष्य की सब लीला और चरित्रों को गाय के बोले, हे कृपानाथ ! तुम्हारी लीला अपरम्पार है, इतनी किस मे सामर्थ है जो आप के चरित्रों को बखानै। परन्तु हे प्रभु ! तुम्हारी दया से इतना जानता हूं कि भक्तों को सुख देनें के अर्थ और साधुओं की रक्षा के निमित्त आते हो। हे नाथ ! दुष्ट असुरों के नाश करने ही के हेतु आप बारबार अवतार ले संसार मे प्रगटते हो, भूमि का भार उतारते हो।

इतना बचन सुनते ही प्रभु ने नारद मुनि को सब भांति से सम्मानित कर बिदा दी। वे तो दंडवत कर सिधारे और आप सब ग्वालबाल सखाओं को साथ लिये एक बट के तले बैठे। पहिले आप राजा हो, फिर किसी को मंत्री, किसी को प्रधान किसी को सेनापति बनाय, राजनीति से खेलने लगे और पीछे आँख मिचौनी हुई। इधर कंस ने व्योमासुर से कहा कि वसुदेव के पुत्र की हत्या कर उसे हमारे पास ले आओ।

यह सुन हाथ जोड़ के व्योमासुर बोला कि हे महाराज ! जो बसायगा सो करूँगा आज। मेरी देह है आप ही के काज। जो जी के लोभी हैं तिन्हे स्वामी के अर्थ जी देते आती है लाज। सेवक और स्त्री तो इसी में यश व धर्म है कि स्वामी के निमित्त प्राण दे दें। कृष्ण बलदेव के मारने का बीड़ा उठाय, कंस को

प्रणाम कर, व्योमासुर बृन्दावन को चला। वाट में जाय ग्वालबाल का भेष बनाया। चला २ वहाँ पहुँचा जहाँ हरि ग्वाल सखाओं के साथ आँख मिचौनी खेल रहे थे। जाते ही उसने दूर से हाथ जोड़ श्रीकृष्ण-चन्द्र से जब यह कहा कि महाराज! मुझे भी अपने साथ खिलाओगे? तब हरि उसे ने बुलाकर कहा कि तू अपने जी मे किसी बात की हौंस मत रख। जो तेरा मन माने सो खेल, हमारे संग खेल। यह सुन वह प्रसन्न होकर बोला कि बृकमेढे का खेल भला है। तब श्रीकृष्ण-चन्द्र ने मुसकुराय के कहा बहुत अच्छा तू भेड़िया बन और सब ग्वालबाल मेढ़े होवें। यह सुनते ही फूल कर व्योमासुर तो भेड़िया हुआ और ग्वाल बाल मेढे बने इस प्रकार सब के सब आपस मे मिल कर खेलने लगे।

तिस समय वह असुर क्या करै कि एक २ को उठा ले जाय और पर्वत की गुफा मे रख उसके मुँह पर आडी सिला धर मुख मूँद के चला आवै। ऐसे करके जब सब को वहाँ रख आया और अकेले श्रीकृष्ण बाकी रहे, तो ललकार कर बोला कि आज कंस का काज करूँगा, और सब यदुवंशियों को मारूँगा। यह कह कर ग्वाल का भेष छोड सचमुच भेड़िया का रूप बन ज्यों हरि पर झपटा त्यों उन्होंने, पकड़ गला घोंट, मारे घूंसों के ऐसा मार पटका कि जैसे यज्ञ के बकरे को मार डालते हैं।

कंस का वध

हे महाराज! कंस के दूत अक्रूर जी जब बृन्दावन पहुंचे तो उधर वन से गौ चराय ग्वालबाल समेत कृष्ण बलदेव भी आये, तो इनसे उनकी बृन्दावन के बाहर भेंट भई। अक्रूर हरि छवि दूर से देखते ही रथ से उतर अति अकुलाय दौड के पाओं पर जा गिरा और ऐसा मग्न हुआ कि मुंह से बोल न आया। महाआनन्द मे भर नैनों से जल बरसाने लगा। तब श्रीकृष्ण जी उसे उठाय अति प्यार से हाथ पकड़ घर लिवाय

ले गये। वहाँ नन्दराय जी अक्रूरजी को देखते ही प्रसन्न हो उठकर मिले और बहुत सा आदर मान किया, फिर पाँव धुलाय आसन दिया।

जब अंचाय कर पान खाय के बैठे तब नन्द जी उनकी कुशलक्षेम पूछ बोले कि तुम तो यदुवंशियों में बड़े साधु हो, सदा अपनी बड़ाई से रहे हो। किन्तु कहो तो सही कि अब कंस दुष्ट के पास कैसे रहते हो और वहां के लोगों की क्या गति है ? सो भेद कहो। तब अक्रूर जी बोले—

दोहा—पशु मेढ़े छेरीन को, ज्यों जु खटिक रिपु होई।
त्यों परजा को कंस है, दुख पावै सब कोई॥

इतना कह फिर अक्रूर बोले कि तुम कंस का व्यौहार जानते हो। अधिक क्या कहैं।

कोई यदुकुल का महारोग जन्म ले आया है, तिसी से वस यदुवंशियों को सताय है। और सच पूछो तो वसुदेव देवकी हमारे ही लिये इतना दुःख पाते हैं। जो हमे न छिपाते, तो वे इतना दुःख न पाते यों कह फिर कृष्ण बोले कि—

तुमसों कहा चलति उनि कह्यो। तिन कौं सदा ऋणी हौं रह्यौं॥
करतु होयँगे सुरति हमारी। संकट मे पावत दुःख भारी॥

यह सुन अक्रूर बोले, कृपानाथ ! तुम सब जानते हो, मैं क्यों कहूँगा कंस की अनीति, उसकी किसी से नहीं है प्रीति। वसुदेव और उग्रसेन को नित मारने का विचार किया करता है, पर वे आजतक अपनी प्रारब्ध से बचे जा रहे हैं और जब से नारद मुनि आप के होने का सब समाचार बुझाय कर कह गये हैं, तब से वसुदेव जी को बेड़ी हथकड़ी दे महा दुःख मे रक्खा है। और कल उसके यहाॅ महादेव का यज्ञ है और धनुप धरा है, सब कोई देखने को आवेंगे। सो तुम्हे बुलाने को भेजा है। यह कह कर कि तुम जाय राम कृष्ण समेत नन्दराय को यज्ञ की भेंट के सहित लिवाय लाओ। सो मै तुम्हे लेने के लिये आया हूॅ। इतना वचन सुनकर राम कृष्ण समेत नन्दरायजी से कहा कि—

कंस बुलायो है सुनो वात। कही अक्रूर कका यह वात॥
गोरस भेंड़े छेरी लेउ। धनुप यज्ञ है ताको देउ॥
चलो साथ आपने। राजा बोले रहत न बने॥

जब समझाय बुझाय कर श्रीकृष्णचन्द्र जी ने नन्द जी से कहा तब नन्दराय जी ने उसी समय ढँढोरिये को बुलाय सारे नगर मे यों कह के डौंडी फिरवाय दो कि कल सबेरे ही सब मिल कर मथुरा को जायँगे, राजा ने बुलाया है। इस बात के सुनते ही भोर होते ही भेंट ले ले सकल ब्रजवासी आन पहुँचे और नन्द जी दूध दही माखन भेंड़े बकरे भैंसे ले सग्गड़ जुतवाय उनके साथ हो लिये और कृष्ण बलदेव भी अपने ग्वाल और सखाओं को साथ ले रथ पर चढ़े।

श्रीकृष्णचन्द्र सब के समेत चले २ यमुना तीर पर आ पहुँचे। तहाँ ग्वालबालों ने जल पिआ और हरि ने भी एक वट की छाँह मे रथ खड़ा किया। जब अक्रूर जी नहाने का विचार कर रथ से उतरे तब श्रीकृष्णचन्द्र जी ने नन्दराय से कहा कि आप सब ग्वालों को ले आगे को चलिये, चचा अक्रूर स्नान कर लें तो पीछे से हम भी आकर मिलते हैं।

यह सुन सबको लेकर नन्द जी आगे बढ़े और अक्रूर जी कपड़े खोल हाथ पाँव धोय आचमन कर तीर पर जाय नीर मे पैठ, डुबकी मार आँख जब देखें तो वहाँ रथ समेत श्रीकृष्ण दृष्टि आये।

हे महाराज! अक्रूर जी तो एक ही मूरति को बाहर और भीतर देख दख सोच रहे थे कि उसी बीच मे पहले तो श्रीकृष्णचन्द्र ने चतुर्भुज हो शंख चक्र गदा पद्म धारण कर सुर मुनि किन्नर गन्धर्व आदि सब भक्तों समेत जल मे दर्शन दिया और पीछे शेषशायी हो गये। सो देख अक्रूर और भूल रहे।

श्री शुकदेव जी बोले कि हे महाराज! पानी मे खडे २ अक्रूर को कितनी एक देर मे प्रभु का ध्यान करने मे जब ज्ञान हुआ, तब साथ जोड़ प्रणाम कर कहने लगा कि, करता हरता भरता तुम्हीं हो भगवन्त, भक्तों के हेतु संसार मे आय धरते हो भेद अनन्त। और सुर नर मुनि तुम्हारे अंश हैं। तुम ही से प्रगट होते हैं और तुम्ही मे ऐसे समाते हैं, जैसे जल सागर मे समाता है। तुम्हारी महिमा है अद्भुत और अनूप, कौन कह सके सदा रहते हो विराट रूप। सिर स्वर्ग, पृथ्वी पाँव, पेट समुद्र, नाभि आकाश, केश बादल, रोम वृक्ष, मुख अग्नि, कान दशों दिशा, नयन चन्द्र और भानु, भुज इन्द्र बुद्धि ब्रह्मा, अहंकार रुद्र, गरजन वचन, प्राण, जल,

पलक लगना रात दिन, इत्यादि इत्यादि इस रूप से विराजते हो, तुम्हें कौन पहचान सकता है ? इस भाँति से स्तुति कर अक्रूर ने प्रभु के चरण का ध्यान धर कहा कि हे कृपानाथ ! मुझे अपनी शरण मे रक्खो ।

श्री शुकदेव जी बोले कि हे महाराज ! जब श्रीकृष्णचन्द्र ने नट-माया की भाँति जल में अनेक रूप दिखाय के मोह हर लिये, तब अक्रूर जी ने नीर से निकल, तीर पर आय, हरि को प्रणाम किया। तिस काल मे नन्दलाल ने अक्रूर से पूछा कि कका ! शीत समै जल के बीच इतनी देर क्यों लगी ? हमें यह अति चिन्ता थी तुम्हारी, कि चचा ने किस लिये चलने की सुधि बिसारी । क्या कुछ अचरज तो जाकर नहीं देखा ? यह समझाय के कहो, हमारे मन की दुविधा जाय ।

सुनि अक्रूर जोर कह हाथा । तुम सब जानत हो व्रजनाथा ॥
भलौ दरश दीनो जलमाहीं । कृष्णचरित्र को अचरज नाही ॥

अब यहाँ बिलम्ब न करिये, शीघ्र चल कर कारज कीजिये। इतनी बात सुनते ही हरि झट पट रथ पर बैठ कर अक्रूर को साथ ले चल खड़े हुए और नन्द आदि जो सब गोप ग्वाल आये थे, उन्होंने जाकर मथुरा के बाहर डेरा किया और कृष्ण बलदेव की बाट देख देख अति चिन्ता कर आपस में कहने लगे कि इतनी अबेर नहाते क्यों लगी और किस लिये अब तक नहीं आये हरि । इसी बीच में चले आनन्दकन्द श्रीकृष्ण-चन्द्र भी आय मिले । उस समय हाथ जोड़ सिर झुकाय बिनती कर अक्रूर जी बोले कि हे व्रजराज ! अब आप चल के मेरा घर पवित्र कीजै और अपने भक्तों को दरश दिखा सुख दीजै । इतनी बात के सुनते ही हरि ने अक्रूर जी से कहा कि:—

मोहिं भरोसौ भयो तिहारो । वेगि नाथ मथुरा पगु धारो ॥
पहले सुधि कंस को देहु । तब अपनो दिखरावौ गेहु ॥
सबकी बिनती कहौं बुझाय । सुनि अक्रूर चले सिर नाय ॥

चले २ कितनी एक बेर मे रथ से उतर कर वहाँ पहुँचे जहाँ कंस सभा किये बैठा था । इनके देखते ही सिंहासन से उठ नीचे आय अति कर मिला और बड़े आदर मान से हाथ पकड के ले जाय कर सिंहा-

सन पर अपने पास बैठाया। इनकी कुशल क्षेम पूछ कर बोला कि जहाँ गये थे वहाँ की बात कहो।

कंस प्रसन्न हो बोला कि अक्रूरजी आज तुमने हमारा बड़ा काम किया जो राम कृष्ण को ले आये। अब घर जाय कर विश्राम करो।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! कँस की आज्ञा पाय अक्रूर जी तब अपने घर गये और वह सोच विचार करने लगे। इधर जहाँ नन्द उपनन्द बैठे थे, तहाँ उनसे हलधर और गोविन्द ने पूछा कि जो हम आप की आज्ञा पायें तो नगर देख आवें। यह सुन पहले तो नन्दराय जी ने खाने को मिठाई निकाल कर दी, उन दोनों भाइय ने मिलकर खाय ली। पीछे बोले कि अच्छा, जाओ देख आओ, पर विलंब मत कीजियो।

इतना वचन नन्द महर के मुख से निकलते ही आनन्दकन्द दोनों भाई अपने ग्वालबाल सखाओं को साथ ले नगर देखने चले। नगर के बाहर चारों ओर वन उपवन मे फल फूल रहे हैं, और बड़े पंछी बैठे अनेक अनेक भाँति के मन को भावनी बोलियाँ बोलते हैं, और बड़े सरोवर निर्मल जल से भरे हैं, उनमे कमल खिले हुए हैं, जिन पर भौरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे हैं, और तीर पर हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे हैं, शीतल सुगन्धसनी मन्द पवन बह रही है और बड़ी बड़ी वाडियों की वाड़ों पर पनवाड़ियाँ लगी हुई हैं, बीच बीच मे बरन बरन के फूलों की क्यारियाँ कोसों तक फूली हुई हैं, ठौर ठौर पर इन्दारों बावड़ियों पर पहट परोहे चल रहे हैं, माली मीठे सुरों से गाय गाय जल सींच रहे हैं।

यह शोभा वन उपवन की निरख, हरष कर प्रभु सब ग्वालबाल सखा समेत मथुरापुर मे पैठे। पुरी कैसी है जिसके चहु ओर तांबे के कोट और पक्की चुआन चौकड़ी खाई, स्फटिक के चार फाटक जिनमे अष्टधाती किवाड़ कञ्चन खचित लगे हुए हैं, और नगर मे बरन २ के लाल पीले हरे धौले पञ्चखने मन्दिर ऊँचे २ ऐसे बने हैं कि घटा से बातें कर रहे हैं, धवजा पताका फहराय रही हैं, जाली झरोखों मे धूप की सुगन्ध आय रही है, द्वार २ पर केले के खम्भे और सुवरन कलश पल्लव भरे धरे भए हैं, तोरण बन्दनबार बन्धी हुई है, दर २ बाजने बाज रहे हैं और एक ओर

भाँति भाँति के मणिमय कँचन के मन्दिर राजा के न्यारे ही जगमगाय रहे हैं, तिनकी शोभा कुछ वरनी नहीं जाती है । ऐसी जो सुन्दर सुहावनी मथुरा पुरी, तिसे श्रीकृष्ण बलदेव ग्वालवालों को साथ लिये देखते चले जा रहे हैं।

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे महाराज ! जिस हाट बाट चोहटे में हो सब सखा समेत कृष्णबलराम निकलते थे, वहीं से अपने अपने कोठों पर खड़े हो पुरवासी इनपर चोवा चन्दन छिड़क २ आनन्द से फूल बरसाते थे और नगर की शोभा देख देख ग्वालबालों से यह कहते जाते थे कि भैया ! कोई भूलियो मत और जो कोई भूले तो पिछले डेरों पर जाइयो। इसी तरह से कितनी एक दूर जाय के देखते क्या हैं कि कँस के धोबी धोये कपडों की लादियां लाद पोटें मेठें लिये मद पिये रंग राते कँस यश गाते नगर के बाहर से चले आते हैं। उन्हें देख श्री कृष्ण ने बलदेव जी से कहा कि भैया ! इनके सब चीर छीन लीजिये और आप पहिर, बाकी को ग्वालबालों को पहिरा दीजिये, जो बचे सो लुटाय दीजिये । भाई को यों सुनाय सब समेत धोबियों के पास जाय हरि बोले कि:—

हमको उज्वल कपड़ा देहु । राजहि मिल आवें फिर लेहु ॥
जो पहिरावनि नृपसों पैहैं । तामे से कछु तुमको दै है ॥

इतनी बात के सुनते ही उन मे जो बड़ा धोबी था सो हंस कर कहने लगा कि:—

बन बन फिरत चरावत गैयां । अहिर जात कामरी उढ़ैया ॥
नट का भेष बनाय के आये । नृप अम्बर पहरन मन भाये ॥
जुरिके चले नृपति के पासा । पहिरावनि लैवे की आशा ॥

यह बात धोबी की सुन कर हरि ने फिर मुसकाय के कहा कि हम तो सीधी चाल से मांगते हैं, तुम उलटा क्यों समझाते हो, कपड़े देने से कुछ तुम्हारा न बिगड़ेगा वरन् कुछ लाभ होगा । यह वचन सुन रजक झुंझला कर बोला कि राजा की बागे पहरने का मुंह तो देखो, मेरे आगे से जा, नहीं तो अभी मार डालता हू । इतनी बात के सुनते ही क्रोध कर श्रीकृष्णचन्द्र ने तिरछी नज़र कर एक हाथ से ऐसा मारा कि उस का भुट्टा सा उड़ गया । तब जितने उसके साथी और टहलुए थे, सबके

साथ पोट मोटे लादियों को छोड़ अपना जीव ले भागे और कंस से जाय पुकारे कि महाराज! श्रीकृष्ण जी ने सरकारी कपड़े ले लिये और आप पहरे, भाई को पहराय और ग्वालबालों को बाँट दिये, बाकी जो बचे सो लुटाय दिये। यह सुन कर कंस को बड़ा क्रोध आया, उन धोबियों को घर न जाने की आज्ञा देकर अपने दूतों को बुलवाया और उन से कहा कि तुम लोग नगर मे जा कर देखो कि नन्दन के दोनों बेटे कौन २ से काम करते हैं। दूत इस बात को सुन कर चला चला वहा आया जहाँ कृष्ण बलराम बड़े आनन्द से अपने मित्रों मे लूटे हुए कपडों को बाँट रहे थे। तिस समय ग्वाल बाल अति प्रसन्न हो उलटे पुलटे वस्त्र पहन रहे थे।

जब वहाँ से आगे बढ़े तो एक सूजा ने आय दण्डवत कर खड़े हो हाथ जोड़ के कहा कि महाराज! मै कहने को तो कंस का सेवक कहलाता हू पर मन मे सदा आप ही का गुण गाता हू। दया कर कहिये तो वागे पहिराऊँ, जिससे तुम्हारा दास कहलाऊं।

इतनी बात उसके मुख से निकलते ही अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र ने उसे अपना भक्त जान निकट बुलाय के कहा कि तू भले समय मे आया, अच्छा पहराय दे। तब उसने झटपट ही खोल उधेड़ कतर छाँट सी कर ठीक ठीक बनाय चुन २ राम कृष्ण समेत सब को वागे पहिराय दिये। इस हाल मे नन्दलाल उसे भक्ति दे साथ ले आगे चले।

श्री शुकदेव जी बोले कि हे पृथ्वीनाथ! श्रीकृष्ण वहा से आगे जाय देखें तो सोहीं गली से एक कुबड़ी केशर चन्दन से कटोरियाँ भरे थाली के बीच धरे हाथ मे लिये खड़ी है। उससे हरि ने पूछा कि कौन है? और यह कहाँ से चली है। तब वह बोली कि हे दीनदयाल! मै कंस की दासी हूँ, मेरा नाम कुब्जा है। नितचन्दन घिस के कंस को लगाती हू और मन से तुम्हारे गुण गाती हू। तिसी के प्रताप से आज आपका दर्शन पाय, जन्म को सार्थक किया और अपने नैनों का फल लिया। अब दासी का मनोरथ यह है कि जो प्रभुकी आज्ञा पाऊँ तो चन्दन अपने हाथों से लगाऊँ। उस की अति भक्ति देख हरि ने कहा जो तेरी इसी में प्रसन्नता है सो लगावे। इतना वचन सुनते ही कुब्जा ने बड़े राव चाव से चित्त

लगाय जब श्रीकृष्ण को चन्दन चरचा, तब श्रीकृष्णचन्द्र ने उसके मन की लगी देख कर दया कर पाव धर दो अँगुली ठोढी तले लगाय के उसे सीधी किया। हरिका हाथ लगते ही वह महा सुन्दरी हुई। तब विनती कर प्रभु से कहने लगी कि हे कृपानाथ! ज्यों आपने कृपा कर इस दासी की देह सूधी की, त्यों ही दया कर अब चल के घर पवित्र कीजिये और वहां विश्राम ले दासी को सुख दीजिये।

आय मिलोंगो कंसहि मारी। यों कह आगे चले मुरारी॥

और कुब्जा अपने घर जाय केसर चन्दन से चौक पुराय हरि के मिलने की आस मन मे रख मंगलाचार करने लगी।

इसी बीच मे नगर देखते २ सब के समेत प्रभु रंगभूमि देखने के हेतु राजपौरि पर जा पहुँचे, तो इन्हे अपने रंग मे रंगराते मदमाते से आते देखते ही पौरिये रिसाय के बोले कि किधर उधर चले आतेहो गँवार दूर खड़े रहो यह है राजद्वार। द्वारपालों की बात सुनी अनसुनी कर हरि सब समेत दर्राने वहां चले गये, जहा तीन ताड लम्बा अति मोटा भारी महादेव का धनुष धरा था, जाते ही झट उठाय चढ़ाय सहज स्वभाव ही खैच के यों तोड़ डाला कि जैसे हाथी गाँड़ा तोड़ता है।

इस मे जो सब रखवाले कंस के बिठाये धनुप की चौकी देते थे सो चढ़ आये, तब प्रभु ने उन्हे भी मार गिराया। तिस समय पुरवासी लोग यह चरित्र देख विचार कर निशंक हो आपस मे यों कहने लगे कि देखो, राजा ने घर बैठ अपनी मृत्यु आप ही बुलाई है। इन दोनों भाइयों के हाथ से अब जीता न बचेगा और उधर धनुप टूटने का अति शब्द सुन कंस अति भय खाय अपने सेवक लोगो से पूछने लगा कि यह महाशब्द काहे का हुआ? इसी बीच मे कितने एक लोग जो राजा से दूर खड़े हो देखते थे, वे मूढ फिर कर यों जाय पुकारे कि महाराज की दुहाई, राम कृष्ण ने आय नगर मे बड़ी धूम मचाई। शिवका धनुप तोड़ सब रखवारों को मार डाला।

इतनी बात के सुनते ही कंस ने बहुत से योधाओं को बुला के कहा तुम इन के साथ जाओ और कृष्ण बलदेव को छल बल कर अभी [illegible]ओ। इतना वचन कंस के मुख से निकलते ही वे अपने २

अस्त्र-शस्त्र ले कर वहां गये, जहा वे दोनों भाई खडे थे। इन्होंने उन्हें ज्यों ललकारा, त्यों उन्होंने इन सब को भी आय कर मार डाला। जब हरि ने देखा कि यहा कंस का सेवक अब कोई नहीं रहा, तब बलराम जी से कहा कि बाबा नन्द हमारी बाट देख अनेकों भावना करते होयँगे। यों कह सब ग्वालबालों को साथ ले प्रभु बलराम समेत चल कर वहां आये, जहां डेरे पड़े थे। आते ही नन्द महर से तो कहाकि पितर! हम नगर में भला कुतूहल देख आये और गोपबालों ने अपने आगे दिखलाये।

श्रीकृष्णचन्द्र बड़े लाड से बोले कि पिता! भूक लगी है, जो हमारी माता ने खाने को साथ कर दिया है सो दीजिये। इतनी बात के सुनते ही उन्होंने जो पदार्थ खाने का साथ लाये थे सो निकाल कर दिया, तब कृष्ण बलदेव ने उसे ले ग्वालबालों के साथ मिल कर खाय लिया। इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि बोले कि महाराज! इधर तो ये आय परमानन्द से ब्यालू कर सोये, और उधर श्रीकृष्ण की बातें सुन २ कंस के चित मे अति चिन्ता हुई। सो न उसे बैठे चैन था, न खड़े, मन कुढ़ता था, अपनी पीर किसीसे रो कर न कहता था।

निदान अति घबराय, मन्दिर मे जाय सेज पर सोया, पर उसे मारे डर के नींद न आई।

तीन पहर निसि जागत गई। लागी पलक नींद छिन भई॥
तब सपनो देख्यो मन माँह। फिरे सीस बिन धर की छाँह॥
कबहुं नगन रेत मे न्हाय। धावै गदहा चढ़ विष खाय॥
बसे मसान भूत संग लिये। रक्त फलन की माला हिये॥
बरत रूख देखै चहुं ओर। तिन पर बैठे बाल किशोर॥

श्री शुकदेव जी बोले कि हे महाराज। जब कंस ने ऐसा सपना देखा, तब तो वह अति व्याकुल हो चौंक पडा और सोच विचार करता उठ कर बाहर आया और अपने मन्त्रियो को बुलाय के बोला कि तुम अभी जाओ रंगभूमि को झड़वाय छिड़कवाय सँवारो और नन्द उपनन्द समेत सब ब्रजवासियो को और बसुदेव आदि यदुवंशियों को रंगभूमि मे बुलाय बिठाओ और जो सब देश विदेश के राजा आये है तिन्हें भी रंगभूमि मे बुलाय बैठाओ इतने मे मै आता हू।

कंस की आज्ञा पाय मन्त्री रंगभूमि मे आये। उसे झड़वाय छिड़कवाय वहाँ पाटम्बर बिछाय ध्वजा पताका तोरण वंदनवार बँधवाय अनेक अनेक भांति के बाजे बजवाय सब को बुलाय भेजा। वे आये और अपने अपने मंच पर जाय बैठे। इसी बीच मे राजा कंस भी अति अभिमान भरा अपने मचान पर बैठा। उस समय देवता भी अपने २ विमानों मे बैठ आकाश मे देखने लगे।

श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज ! भोर ही जब नन्द उपनन्द आदि सब बड़े २ गोप रंगभूमि की सभा मे गये, तब श्रीकृष्णचन्द्र ने बलदेव जी से कहा कि भाई! सब गोप आगे गये, अब विलम्ब न करिये, शीघ्र ग्वालबाल सखाओं को साथ ले रंगभूमि को देखने चलिये।

इतनी बात के सुनते ही बलराम जी उठ खड़े हुए और सब ग्वालबाल सखाओं से कहा कि भाइयो, चलो रंगभूमि की रचना देख आवें। यह बचन सुनते ही तुरन्त सब साथ हो लिये। निदान श्रीकृष्ण बलराम नटवर भेष किये ग्वालबाल सखाओं को साथ लिये, चले २ रंगभूमि की पौर पर आय खड़े हुए, जहाँ दश सहस्र हाथियों के बल वाला मतवाला कुबलिया गज खड़ा भूमता था।

ये त्रिभुवनपति हैं, दुष्टों को मारकर भूमि का भार उतारने को आये है। यह सुन महावत क्रोध कर बोला कि मै जानता हूँ कि गो चराय के त्रिभुवनपति भये हैं, इसी से यहां आय बड़े शूर की भाँति अड़े खड़े हैं। धनुष का तोड़ना न समझियो, मेरा हाथी दस सहस्र हाथियो का बल रखता है, जब तक इससे न लड़ोगे तब तब भीतर न जाने पाओगे। तुमने तो बहुत बली मारे हो परन्तु आज इसके हाथ से बचोगे तब मै जानूँगा कि तुम बड़े बली हो।

तब झुँझला कर गजपाल ने गज पेला। ज्यों वह बलदेव जी पर टूटा, त्यों इन्होंने हाथ घुमाय के एक थपेड़ा ऐसा मारा कि वह सूँड सिकोड़ चिग्घाड़ मार पीछे हटा। यह चरित्र देख कंस के बड़े योधा जो खड़े देखते थे, सो अपने चित्त से हार मान मनही मन कहने लगे कि इन महाबलवानों से कौन जीत सकेगा। और महावत भी हाथी को पीछे हटा

अति भयमान जी मे विचार करने लगा कि जो ये बालक न मारे

जायेंगे तो कंस भी मुझ को जीता न छोड़ेगा। यह सोच समझ कर उसने फिर अंकुश मार हाथी को तत्ता किया, और इन दोनों भाइयों पर हूल दिया। उसने आते ही सूँड से हरि को पकड़ा, पिछाड़ी खुनसाय के जो हरि को दांतों से दबाया तो प्रभु सूक्ष्म शरीर बनाय दांतों के बीच मे बच रहे।

श्री शुकदेव जी बोले हे महाराज! उसे कभी बलराम सूंड पकड़ खैंचते थे, कभी श्याम पूंछ पकड़ते और जब उन्हे पकड़ने को आता था, तब ये अलग हो जाते थे। कितनी एक बेर तक उससे ऐसे खेलते रहे जैसे बछड़े के साथ बालकपन मे खेलते थे। निदान हरि ने पूंछ पकड़ के फिराय कर उसे दे पटका और मारे घूसों के मार डाला। जब दांत उखाड़ लिये तब उसके मुंह से लोहू नदी की भाति बह निकला। हाथी के मरते ही जब महावत ललकार कर आया तब प्रभु ने उसे भी हाथी के पॉव तले धर झट मार गिराया और हँसते हँसते दोनों भाई नटवर भेष किये एक २ दांत हाथी का हाथ मे लिये रंगभूमि के बीच मे जा खड़े हुए। उस समय नन्दलाल को जिन जिन ने जिस भाव से देखा, उस उस को उसी उसी भाव से दृष्टिगोचर हुए। मल्लों ने मल्ल माना, राजाओं ने राजा जाना, देवताओं ने अपना प्रभु करके बूझा, ग्वालबालों ने सखा, नन्द उपनन्द ने बालक समान और पुर की युवतियों ने रूप निधान और कंसादिक राक्षसों ने काल के समान देखा। महाराज! इनको निहारते ही कंस ने अति भय मान कर पुकारा कि अरे मल्लो! इन्हे पकड़ मारो इनको मेरे आगे से टारो।

इतनी बात जब कंस के मुंह से निकली, तब, मल्ल गुरु सुत चेले सग लिये वस्त्र २ के भेष किये, ताल ठोंक २ भिड़ने को श्रीकृष्ण बलराम के चारो ओर घिर आये। जैसे ही वे आये कि तैसे ये सँभल कर खड़े हुए। तब उन मे से चाणूर इनकी ओर देख कर, चतुराई से बोला कि सुनो, आज हमारे राजा कुछ उदास है इस से जी बहलाने को तुम्हारा युद्ध देखना चाहते हैं। क्योकि तुमने बन मे हर प्रकार की सब विद्यायें सीखी हैं। और किसी बात का मन मे सोच न कीजे, हमारे साथ मल्लयुद्ध कर अपने राजा को सुख दीजे।

यह सुन श्री कृष्ण जी बोले कि राजा जी ने बड़ी दया कर के हमे

आज बुलाया है। हम से क्या इनका काज सरेगा? तुम अति बली और गुणवान हो, हम बालक अनजान हैं। अतः तुम से हाथ कैसे मिलावें? कहा है कि ब्याह, वैर और प्रीति समान से करना चाहिये पर राजा जी मे कुछ हमारा बस नहीं चलता, इस से तुम्हारा कहा मानते हैं, किन्तु हमे बचा लेना बल करके पटक देना, अब हमे तुम्हे यही उचित है कि जिस में धर्म रहे सोई करें, और मिल कर अपने राजा को सुख दें।

श्री शुकदेव जी बोले कि पृथ्वीनाथ! ऐसे कितनी एक बातें कर ताल ठोंक के चाणूर तो श्री कृष्ण के सोही हुआ और मुष्टक बलराम जी से आय भिड़ा। उनसे मल्लयुद्ध होने लगा।

दोहा—सिर सों सिर भुज सों भुजा, दृष्टि दृष्टि सों जोरि।
चरण चरण गहि झपट कैं, लपटन झपक झकोर॥

उस काल सब लोग उन्हे देख देख आपस मे कहने लगे कि भाइयो इस सभा मे अति अनीति होती है, देखो कहां ये बालक रूपनिधान, कहां ये सब मल्ल बज्र समान। जो बरजें तो कंस रिसाय, न बरजैं तो धर्म नसाय। इस से अब यहां रहना उचित नहीं, क्योंकि हमारा कुछ वश नहीं चलता है।

श्री शुकदेव मुनि बोले कि हे महाराज! इधर तो वे सब लोग यों कहते थे और उधर श्री कृष्ण बलराम मल्लों से मल्ल युद्ध करते थे। निदान इन दोनों भाइयों ने उन मल्लों को पछाड़ मारा। उनके मरते ही सब मल्ल आय जुटे, तब प्रभु ने पल भर मे तिन्हे भी मार गिराया, तिस समय हरि भक्त तो प्रसन्न हो बाजने बजाय जै जैकार करने लगे और देवता आकाश से अपने विमानों मे बैठे कृष्णयश गाय २ फूल बरसावने लगे, और कंस अति दुःख पाय व्याकुल हो रिसाय अपने सेवक लोगों से कहने लगा कि अरे बाजे क्यों बजाते हो? तुम्हें क्या कृष्ण की जीत भाती है?

यों कह कर बोला कि यह दोनों बालक बड़े चंचल हैं, इन्हे पकड़ बांध कर सभा से बाहर ले जावो और देवकी समेत उग्रसेन तथा बसुदेव कपटी को पकड़ लावो। पहले उन्हे मारो, पीछे इन दोनों को भी मार डालो। इतना वचन कन्स के मुख से निकलते ही भक्तों के हितकारी ने सब असुरों को क्षण भर मे मार डाला, और उछल करके वहां

जा चढ़े, जहां अति ऊँचे मंच पर झीलम टोप दिये फरी खांडा लिये बड़े अभिमान से कन्स बैठा था, वह इनको काल समान निकट आते देख भय खाय कर उठ खड़ा हुआ लगा थर थर कांपने।

मन में तो यह आया कि भागूँ पर मारे लाज के भाग न सका। फिर खांडा सँभाल लगा चोट चलाने। उस काल नन्दलाल अपनी चोट लगाते और उसकी चोट बचाते थे, और सुर नर मुनि गंधर्व यह महायुद्ध देख २ भयभीत हो यों पुकारते थे, कि हे नाथ! इस दुष्ट को वेग मारो। कितनी एक बेर तक मंच पर युद्ध रहा। निदान प्रभु ने सब को दुःखित जान, उसके केश पकड़ मंच से नीचे पटका और ऊपर से आप भी उसके ऊपर कूदे कि जिसके आघात से उसका जीव घट से निकल सटका। तब सभा के सब लोग यह पुकारे कि श्रीकृष्णचन्द्र ने कन्स को मारा! यह शब्द सुन सुर नर मुनि सब को अति आनन्द हुआ।

दोहा—करि अस्तुति पुनि हरष, बरष सुमन सुरवृन्द।
मुदित बजावत दुंदुभी, कहि जै जै नंद नन्द॥

सो०—मथुरापुर नर नारि, अति प्रफुलित सब को हियो।
मनहुँ कुमुदबन चारु, बिकसित हरि शशिमुख निरखि॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षत से कहा कि हे धर्मावतार! कन्स के मरते ही उसके आठ भाई जो अति बलवान थे सो लड़ने को चढ़ आये। तब तो प्रभु ने उन्हे भी मार गिराया। जब हरि ने देखा कि अब यहाँ राक्षस कोई नहीं रहा, तब कन्स की लोथ को घसीट कर यमुना तीर पर ले आये और दोनों भाइयों ने वहीं बैठ कर विश्राम किया, उसी दिन से उस ठौर का नाम विश्रामघाट हुआ।

आगे कन्स का मरना सुन कन्स की रानियां सौरानियां समेत अति व्याकुल हो रोती पीटती वहां आईं, जमुना के तीर पर दोनों वीर मृतक लिये बैठे थे। और अपने पति का मुख निरख २ सुख सुमिरि सुमिरि गुण गाय गाय व्याकुल हो हो पछाड़ खाय खाय रोने लगीं। इसी बीच में करुणानिधान कान्हजू करुणा कर उनके निकट जाय कर बोले कि—

मामी सुनहु शोक नाहि कीजे। मामा जू को पानी दीजे॥
सदा न कोऊ जीवत रहै। झूठो सो जो अपनो कहै॥

मातपितासुत बन्धु न कोई। जन्ममरण फिरहि फिरि होई॥
जौं लौं जासो सनमद रहै। तौं ही लौ मिलिके सुख लहैं॥

हे महाराज! जब श्रीकृष्ण ने रानियों को ऐसे समझाया तब उन्होंने वहाँ से धीरज धर यमुना तीर पै आय कर पति को पानी दिया और आप प्रभु ने अपने हाथ से कंस को आग दे उसकी गति की।

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे राजा! रानियां तो औरानियों समेत वहाँ से नहाय धोय रो पीट कर राजमन्दिर को गई और श्रीकृष्ण बलराम वसुदेव देवकी के पास आय उनके हाथ पांव की हथकड़िया व बेड़ियाँ काट दण्डवत कर हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हुए। तिस समय प्रभु का रूप देखकर वसुदेव देवकी को जब ज्ञान हुआ तब उन्होंने अपने मनमे यों निश्चय करके जाना कि ये दोनों विधाता हैं, असुरों को मार भूमि का भार उतारने संसार मे अवतार लेकर आये हैं।

---

(८)

जरासन्ध और कालयवन

श्रीशुकदेव जी बोले हे महाराज! जिस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र जरासंध को दल समेत जीत, कालयवन को मार, मुचुकन्द को तार ब्रज को तज द्वारिका मे जाय बसे सो सब कथा मै कहता हूं। तुम सचेत हो चित्त लगाय कर सुनो। राजा उग्रसेन मथुरापुरी मे राज करते थे, और श्रीकृष्ण बलराम सेवक की भाँति उनकी आज्ञाकारी मे रहते थे। इससे राजा के राज्य की प्रजा सब सुखी थी। बस एक कंस की रानियाँ ही अपने पति के इस शोक से महादुखी थीं उन्हे न नीद आती थी, न भूख प्यास लगती थी, आठों पहर उदास रहती थीं।

एक दिन वे दोनों बहिन अति चिन्ता कर आपस मे कहने लगीं कि जैसे नृप बिना प्रजा, चन्द्र बिन यामिनी शोभा नही पाती है तैसे ही कन्त बिन कामिनी भी शोभा नही पाती है। अब अनाथ हो यहाँ रहना भला नहीं है, इससे अपने पिता के घर चल कर रहिये, सो अच्छा है। हे राज! ये दोनों रनियाँ ऐसा आपस मे सोच विचार कर रथ मंगवाय चढ़ कर मथुरा से चलीं, मगध देश मे अपने पिता के यहां आई

और जैसे श्रीकृष्ण बलराम जी ने सब असुरों समेत कंस को मारा था, तैसे ही उन दोनों ने रो रो कर सब समाचार अपने पिता से कह सुनाया।

सुनते ही जरासंध अति क्रोध कर सभा मे आया और कहने लगा कि ऐसे बली कौन यदुकुल मे उपजे हैं जिन्होंने सब असुरों समेत महाबली कंस को मार मेरी बेटियों को राँड किया। अपनी सब कटक लेकर चढ आऊँगा और यदुवंशियों समेत मथुरापुरी को जलाय राम कृष्ण को जीता बाँध लाऊँगा तो मेरा नाम जरासंध नही तो नहीं।

इतना कह उसने तुरन्त ही चारों ओर के राजाओं को पत्र लिखा कि तुम अपना २ दल लेकर हमारे पास आओ, हम कंस का पलटा ले यदुवंशियों को निर्वंस करेंगे। जरासंध का पत्र पाते ही सब देश २ के नरेश अपना दल साथ ले शीघ्र ही चले आये और यहाँ जरासंध ने भी अपनी सब सेना ठीक ठीक बनाय रक्खी थी। निदान सब असुर दल साथ ले जरासन्ध ने जिस समय मगध देश से मथुरापुरी को प्रस्थान किया, उस समय उसके संग तेईस अक्षौहिणी सेना थी। इकीस सहस्र आठ सौ सत्तर रथी और इतने ही गजपति। तथा एक लाख नौ सहस्र साढे तीन सौ पैदल और छाछठ सहस्र अश्वपति। यह अक्षौहिणी सेना प्रमाण है।

ऐसी तेईस अक्षौहिणी सेना उसके पास थी और उनमे से एक एक राक्षस ऐसा बली था, सो मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। हे महाराज! जिस काल जरासंध सब असुर सेना साथ ले धौंसा देकर चला, उस कालमे दशों दिशा के दिक्पाल थर २ कांपने लगे और सब देवता मारे डरके भागने लगे पृथ्वी की न्यारी ही बोझ से छाती हिलने लगी। निदान कितने एक दिनों मे चला चला वहाँ पहुँचा और चारों ओर से मथुरापुरी को घेर लिया। तब सब नगर-निवासी अति भय खा श्रीकृष्णचन्द्र के पास जाय पुकारे कि हे महाराज! जरासंध ने आकर चारों ओर से नगर घेर लिया, अब क्या करें, किधर जायें?

इतनी बात सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र कुछ सोच विचार करने ... इसी विचार मे बलराम जी ने आकर प्रभु से कहा कि हे ... आपने भक्तो का दु:ख दूर करने के हेतु अवतार लिया। अब

धारण कर, असुर रूपी वन को जलाय भूमि का भार उतारिये। यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र उनको साथ ले उग्रसेन के पास गये और कहा कि हे महाराज ! आप हमको लड़ने की आज्ञा दीजिये और सब यदुवंशियों को साथ ले गढ़ की रक्षा कीजिए ।

इतना कह ज्यों माता पिता के निकट आये त्यों सब नगर निवासी फिर आय, अति व्याकुल हो कहने लगे कि हे कृष्ण ! अब इन असुरों के हाथ से कैसे बचेंगे ? तब हरि ने माता पिता समेत सब को भयातुर देख समझाय के कहा कि तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। यह सब असुरदल जो तुम देखते हो, सो पल भर मे यहा का यहीं विलाय जायगा, जैसे कि पानी के बबूले पानी में विलाय जाते हैं । यह सबको समझाय ढ़ाढस बँधाय उनसे बिदा हो प्रभु ज्योंहीं बढ़े हैं कि त्योंही देवताओं ने दो रथ शस्त्रों से भर कर इनके लिये भेज दिये। वे भी आय के इनके सोंही खड़े हुए। तब दोनों भाई उन दोनों रथों मे बैठ गये।

निकसे दोऊ जन यदुराय । पहुँचे सुन्दर दल मे जाय ॥

जहां जरासन्ध खड़ा था तहां जा निकले । इन्हे देखते ही जरासंध श्रीकृष्णचन्द्र से अति अभिमान कर कहने लगा कि अरे ! मेरे सोंही से भाग जा, क्योंकि मै तुझे क्या करूँ, तू बल मे मेरे समान नहीं हैं, जो मै तुझ पर शस्त्र चलाऊँ। किन्तु बलराम को मैं देख लेता हूं। इतना सुन कर श्रीकृष्ण चन्द्र बोले कि अरे मूर्ख, अभिमानी ! तू यह क्या बकता है ? जो सूरमा होते हैं, सो बड़ा बोल किसी से नहीं बोलते। सब से दीनता करते हैं, काम पड़ने पर अपना बल दिखाते हैं। और जो अपने मुँह अपनी बड़ाई हाँकते हैं सो क्या कुछ भले कहाते हैं। कहा है कि गरजता है सो बरसता नहीं। इससे वृथा बकवाद क्यों करता है। इतनी बात के सुनते ही जरासंध ने जब क्रोध किया, तब श्रीकृष्ण बलराम चल खड़े हुए। इनके पीछे वह भी अपनी सब सेना ले धाया कि उसने यों पुकार कर यह सुनाया कि अरे दुष्टो ! मेरे आगे से तुम कहाँ भाग कर [illegible]गे ? बहुत दिन जीते बचे। तुमने मन मे यही समझ रक्खा कि हम किन्तु अब जीते न रहने पाओगे, जहाँ सब असुरों समेत कं[illegible]

गया है वहां सब यदुवंशियों समेत तुम्हे भी भेजूँगा। हे महाराज ! ऐसा दुष्ट वचन असुर के मुख से निकलते ही कितनी एक दूर जाय दोनों भाई फिर खड़े हुए। अनन्तर श्रीकृष्ण जी ने तो सब शस्त्र लिये और बलराम जी ने हल मूसल लिया। फिर जब असुरदल उनके निकट गया तब दोनों वीर ललकार के ऐसे टूटे कि जैसे हाथियों के यूथ पर सिंह टूटे। और लोहा बजने लगा।

उस काल मे मारू बाजा जो बजता था, सोई मानो मेघ गरजता था और चारों ओर से राक्षसों का दल जो घिर आया था, सोई दल मानो बादल सा छाया था और शस्त्रों की जो झडी लगी थी, सोई पानी की झड़ी सी लगी थी। उसके बीच मे श्रीकृष्ण बलराम युद्ध करते समय ऐसे शोभायमान लगते थे जैसे श्याम घन मे दामिनी सुहावनी लगती है। उस समय सब देवता अपने २ विमानों पर बैठ, आकाश से देख २ प्रभु का यश गाते थे और इन्हीं की जीत मनाते थे और उग्रसेन समेत सब यदुवंशी अति चिन्ता कर मन ही मन पछताते कि हमने यह क्या किया जो कृष्ण बलराम को असुर दल मे जाने दिया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि हे पृथ्वीनाथ! जब लड़ते २ असुरों की बहुत सी सेना कट गई, तब बलदेव जी ने रथ से उतर कर जरासन्ध को बांध लिया। उस समय श्रीकृष्ण जी ने जाके बलराम से कहा कि भाई! जीता ही छोड दो मारो मत। क्योंकि यदि यह जीता जायगा तो फिर असुरों को साथ ले आवेगा, तिन्हे मार हम भूमि का भार उतारेंगे। और जो जीता न छोडेंगे, तो जो राक्षस भाग गये हैं सो हाथ न आवेंगे। ऐसे बलदेव जी को समझाय प्रभु ने जरासन्ध को छुड़वाय दिया। वह अपने उन साथी लोगों के पास गया जो रण मे भाग के बचे थे।

चहुँ दिशि जाहि कहै पछताय। सिगरी सेना गई बिलाय॥
भयो दुःख अति कैसे जीजै। अब घर छांडि तपस्या कीजै॥
कबहूँ हार जीत पुनि होई। राज देश छाड़े नहिं कोई॥

क्या हुआ जो अब लडाई मे हारे, फिर अपना दल जोड लावेंगे और यदुवंशियों समेत कृष्ण बलदेव को स्वर्ग पठावेंगे। तुम किसी बात की

चिन्ता मत करो। हे महाराज! ऐसे समझाय बुझाय जो असुर रण में भाग के बचे थे तिन्हें और जरासन्ध को मन्त्री ने घर पहुँचाया और वह फिर वहां कटक जोड़ने लगा। यहां श्रीकृष्ण बलराम रणभूमि में देखते क्या है कि लहू की नदी बह निकली है, जिसमें रथ बिना रथी के नाव से बहे जाते हैं। ठौर २ पर हाथी मरे भये पहाड़ से पड़े दृष्टि आते हैं, उनके घावों से रक्त झरनों की भांति झरता है। तहां महादेव जी भूत-प्रेत संग लिये अति आनन्द से नाच २ गाय २ मुण्डों की माला बनाय २ पहनते हैं और भूतनी, प्रेतनी, जोगिनियां खप्पर भर २ रक्त पीती हैं। गिद्ध, गीदड़, काग लोथों पर बैठे २ मांस खाते हैं और आपस में लड़ते हैं।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज! जितने रथ, हाथी, घोड़े और राक्षस उस खेत में गिर गये थे, तिन्हें पवन ने तो समेट कर इकट्ठा किया और अग्नि ने पल भर में सब को जला कर भस्म कर दिया, सब पंचतत्व में मिल गये। उन्हें आते तो सब ने देखा पर जाते किसी ने न देखा कि किधर गये! ऐसे असुरों को मार, भूमि का भार उतार, श्रीकृष्ण बलराम भक्तहितकारी उग्रसेन के पास दण्डवत् कर हाथ जोड़ बोले कि हे महाराज! आप के प्रताप से असुर दल को मार भगाया। अब निर्भय राज कीजिये, और प्रजा को सुख दीजिये। इतना बचन इन के मुख से निकलते ही राजा उग्रसेन अति आनन्द मान बड़ी बधाई की और धर्मपूर्वक राज करने लगे। इस प्रकार कितने दिन पीछे फिर जरासन्ध उतनी ही सेना ले चढ़ि आया। और श्रीकृष्ण बलदेव जी ने भी पुनि उन्हें यों ही मार भगाया। ऐसी २ तेइस अक्षौहिणी सेना ले जरासन्ध सत्रह बेर चढ़ि आया और प्रभु ने उसे मार हटाया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि हे महाराज! इसी बीच नारद मुनि के जी में कुछ आई तो ये एका-एकी उठ कर कालयवन के यहां गये। इन्हें देखते ही वह सभा समेत उठ खड़ा हुआ और उसने दण्डवत् कर हाथ जोड़ के पूछा कि हे महाराज! आपका आना यहां कैसे हुआ।

मुनि के नारद कहैं बिचारी। मथुरा में बलभद्र मुरारी॥
तो बिन तिन्हें हतै नहीं कोई। जरासन्ध सों कछु नहिं होई॥

तू है अमर और अति वली। ना क हैं बलदेव और हरी॥

यों कह फिर नारद जी बोले कि जिसे तू मेघवरन कमलनैन अति-सुन्दर वदन पीताम्बर पहिरे पीतपट ओढे देखे तिस का पीछा तू बिना मारे मत छोड़ियो। इतना कह नारद मुनि तो चले गये और कालयवन अपना दल जोडने लगा। इसके कुछ दिन बीते बाद मे उसने तीन करोड महा म्लेच्छ अति भयानक इकट्ठे किये। ऐसे कि जिनकी मोटी भुजा, बड़े दांत, मैले भेष, भूरे केश, नैन घुमचीसे लाल, तिन्हे साथ ले डंका दे कर मथुरापुरी पर चढि आया। और उसे चारों ओर से घेर लिया। उस काल मे श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने उस का यह व्यवहार देख अपने जी मे विचार किया कि अब यहां रहना भला नहीं है क्योंकि आज यह चढि आया है और कल को जरासन्ध भी चढि आवे तो प्रजा दुःख पाएगी। इससे उत्तम यही है कि यहा न रहिये, सब समेत समुद्र मे वसिये। हे महाराज ! हरि ने यों विचार कर विस्सकर्मा को बुलाय समभाय के कहा कि तू अभी जा के समुद्र के बीच मे एक नगर बना। ऐसा नगर हो कि जिसमे सब यदुवंशी सुख से रहे परन्तु वे भेद न जानें कि ये हमारा घर नही है और पल भर मे सब को वहा ले जाकर पहुंचा आओ।

इतनी बात सुनते ही विश्वकर्मा ने समुद्र के बीच मे सुदर्शन के ऊपर बारह योजन का नगर जैसा कि श्रीकृष्ण ने कहा था वैसा ही रात भर मे बनाया और उस का नाम द्वारिका रख आकर हरि से कहा कि आपकी आज्ञा का पालन होगया। फिर प्रभु ने उसे आज्ञा दी कि इसी समय तू सब यदुवंशियों को वहा पहुंचाय आव किन्तु कोई यह भेद न जानने पाये कि हम कहा आये ? और कौन ले आया ?

इतना वचन प्रभु के मुख से ज्यो निकला त्यों ही रातोंरात उग्रसेन, वसुदेव आदि समेत विश्वकर्मा ने सब यदुवंशियों को वहा पहुंचाय दिया और श्रीकृष्ण बलराम भी वहा पधारे। इसी बीच मे समुद्र की लहर का शब्द सुन कर यदुवंशी चौंक पडे और अति अचरज कर आपस मे कहने लगे कि मथुरा मे समुद्र कहा से आया ? भेद कुछ जाना नहीं जाता ?

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे धर्मराज ! ऐसे सब यदुवंशियों को द्वारिका मे बसाय श्रीकृष्णचन्द्र जी

ने बलदेव जी से कहा कि हे भाई ! अब चल के प्रजा की रक्षा कीजिये और कालयवन का वध कीजिये। इतना कह दोनों भाई वहां से चल कर ब्रजमण्डल में आये।

श्रीशुकदेव मुनि बोले हे महाराज ! ब्रजमण्डल में आते ही श्रीकृष्णचन्द्र ने बलराम जी को तो मथुरा में छोड़ा और आप रूपसागर जगत उजागर पीताम्बर पहन पीतपट ओढ सब सिंगार किये कालयवन के दल में जाकर उसके सम्मुख हो कर निकले, वह उन्हे देखते ही अपने मन में कहने लगा कि हो न हो यही कृष्ण हैं, क्यों कि नारद मुनि ने जो चिह्न बताये थे, सो सब पाये जाते हैं। इन्हीं ने कंसादि असुरों को मारा है और जरासंध की सेना हनी है। ऐसा मन ही मन विचार—

काल यवन यों कहै पुकारी। काहे भागे जात मुरारी॥
आय परयौं अब मोसों काम! ठाढ़े रहो करो संग्राम॥
जरासंध यों नाहीं कंस। यादव कुल को करौं विध्वंस॥

हे राजन् ! यह कालयवन अति अभिमान करके अपनी सब सेना को छोड अकेला ही श्रीकृष्ण चन्द्र के पीछे धाया, परन्तु उस मूर्ख ने प्रभु का भेद न पाया। आगे २ तो हरि भागे जाते थे और एक हाथ के अन्तर पर पीछे २ कालयवन दौड़ा जाता था। निदान भागते २ जब बहुत दूर निकल गये, तब प्रभु पहाड़ की गुफा मे चले गये, वहा जाकर देखा कि एक पुरुष सोया है। ये झट अपना पीताम्बर उसे उढ़ाय, आप अलग एक ओर छिप रहे। पीछे से कालयवन भी दौड़ता हाँफता उस अन्धेरी कन्दरा मे जा पहुँचा और पीताम्बर ओढे उस पुरुष को सोता देख अपने जी मे जाना कि यह कृष्ण ही छल करके सो रहा है।

हे महाराज ! ऐसा मन ही मन विचार करके क्रोध कर उस सोते हुए को एक लात मार, कालयवन बोला कि अरे कपटी ! क्या मिस करके साधु की भांति निश्चिन्तताई से सो रहा है। उठ मै तुझे अभी मारता हूं। यह कह कर उसने उसके ऊपर से पीताम्बर झटक लिया। तब वह नींद से चौक पड़ा और ज्यों ही उसने इसकी ओर देखा कि त्यों ही वह कर भस्म हो गया। इतनी बात सुनते ही राजा परीक्षित कि—

यह शुकदेव कहो समझाय। को वह रह्यो कन्दरा जाय ॥
ताकी दृष्टि भस्म क्यों भयो। काने वाहि महा वर दयो ॥

श्रीशुकदेव जी बोले कि पृथ्वीनाथ! इक्ष्वाकुवंशी क्षत्री मान्धाता का बेटा मुचुकुन्द अति बली महाप्रतापी जिसका अरिदलन यश नौ खण्ड में छाय रहा था एक समय सब देवता असुरों के सताये, निपट घबराये, मुचुकुन्द के पास आये और अति दीनता कर उन्हों ने कहा कि हे महाराज! असुर बहुत हैं अब तिनके हाथ से बच नहीं सकते। वेग ही हमारी रक्षा करो। यह रीति परंपरा से चली आई कि जब २ सुर, मुनि, ऋषि, अबल हुए हैं, तब २ उनकी सहायता क्षत्रियों ने करी है।

इतनी बात सुनते ही मुचुकुन्द उनके साथ हो लिया और जाके असुरों से युद्ध करने लगा। उनसे लडते २ कितने ही युग बीत गये, तब देवताओं ने मुचुकुन्द से कहा कि हे महाराज! हमारे लिये बहुत श्रम किया।

बहुत दिननि कीनौ संग्राम। गयो कुटुम्ब सहित धनधाम ॥
रह्यो न कोऊ तहां तिहारौ। ताते अब निज घर पगु धारौ ॥

अब जहां तुम्हारा मन माने तहाँ जाओ! यह सुन मुचुकुन्द ने देवताओं से कहा कि हे कृपानाथ! मुझे कहीं पर कृपा करके ऐसा एकान्त ठौर बताइये जहाँ जाय कर मैं निश्चिन्तताई से सोऊँ और कोई न जगावे। इतनी बात के सुनते ही देवताओं ने प्रसन्न हो मुचुकुन्द से कहा कि हे महाराज! आप धवलागिरि पर्वत की कन्दरा मे जाय के शयन कीजिये, वहाँ तुम्हे कोई न जगावेगा। और जो कोई अनजाने वहाँ तुम्हे जगावेगा तो वह तुम्हारी दृष्टि को देखते ही जल बल कर राख हो जावेगा।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि हे महाराज! ऐसे देवताओं से वर पाय मुचुकुन्द उस गुफा मे जा कर सोया था। इससे उसकी दृष्टि पड़ते ही कालयवन जल कर क्षार हो गया। तब कल्यानिधान आनन्द भक्तहितकारी ने मेघवरण चन्द्रमुख कमलनैन चतुर्भुज हो, शंख चक्र गदा पद्म लिये, मोरमुकुट मकराकृत कुण्डल बनमाला और पीताम्बर धरे, मुचुकुन्द को दर्शन दिया। प्रभु का स्वरूप देखते ही वह साष्टांग प्रणाम कर खड़ा हो हाथ जोड़ बोला कि हे कृपानिधान! जैसे आप ने हमे

इस महा अन्धेरी कन्दरा मे आय उजाला कर तम दूर किया, तैसे ही दया कर अपना नाम आदि भेद बताय मेरे मन का भ्रम दूर कीजिये।

श्री कृष्णचन्द्र बोले कि मेरे तो जन्म कर्म और गुण हैं घने, वे किसी भांति गिने न जायँ कोई कितना ही गिने। पर मै इस जन्म का भेद कहता हूँ सो सुनो। अब के बसुदेव के यहाँ जन्म लिया है, इससे मेरा नाम कृष्ण हुआ। मथुरापुरी मे सब असुरों समेत कंस को मैंने ही मार भूमि का भार उतारा है और सत्रह बेर तेईस २ अक्षौहिणी सेना ले जरासंध युद्ध करने को चढ़ आया सो भी मुझसे हारा और यह कालयवन तीन करोड़ म्लेच्छ की भीड़ भाड़ से लड़ने को आया था सो तुम्हारी दृष्टि मे जल मरा। इतनी प्रभु के मुख से सुन कर मुचुकुन्द को जब ज्ञान हुआ तब बोला कि हे महाराज! आपकी माया अति प्रबल है। उसने सारे संसार को मोह लिया है, इसी से किसी की कुछ भी सुधि बुधि ठिकाने नही रहती।

करत कर्म सब सुख के हेत। ताते भारी दुख सहि लेत॥

दोहा—चुने हाड ज्यों श्वानमुख, रुधिर चचोरे आप॥
जानत ताही ते चुवत, सुख माने संताप॥

हे महाराज! जो संसार मे आया है, सो गृहरूपी अन्धकूप से बिना आपकी कृपा के निकल नही सकता। इससे मुझे भी चिन्ता है कि मैं गृह रूपी कूप से निकलूंगा या नही? यह सुन श्रीकृष्ण जी बोले कि सुन मुचुकुन्द! बात तो ऐसी ही है जैसी कि तू ने कही, परन्तु मै तेरे तरने का उपाय बता देता हूं, सो तू कर। तैने राज पाकर भूमि, धन, स्त्री के लिये अधिक अधर्म किये है, सो बिना तप किये न छूटेंगे। इससे उत्तर दिशा मे जाकर तपस्या कर के अपनी देह छोड़ दे। फिर ऋषि के घर मे जन्म लेगा, तब तू मुक्ति पदार्थ पावेगा। महाराज! इतनी बात जब मुचुकुन्द ने सुनी, तब जाना कि कलियुग आया। यह समझ प्रभु से बिदा हो दण्ड-वत् कर परिक्रमा दे मुचुकुन्द तो बद्रीनाथ गया और श्रीकृष्ण जी ने मथुरा में आय के बलराम जी से कहा कि—

कालयवन को किया निकन्द। बद्रीदिशि पठयो मुचकुन्द॥
कालयवन की सेना घनी। तिन घेरी मथुरा आपनी॥
तहाँ मलेच्छन मारैं। सकल भूमि का भार उतारैं॥

ऐसे कह हलधर को साथ ले श्रीकृष्णचन्द्र मथुरापुरी से निकल वहाँ आये, जहां कालयवन का कटक खड़ा था। और आते ही उनसे युद्ध करने लगे। निदान लड़ते २ जब सेना प्रभु ने मारी, तब बलदेव जी से कहा कि भाई अब मथुरा की सब सम्पत्ति ले द्वारिका को भेज दीजिये। तब बलराम जी बोले कि बहुत अच्छा! तब श्रीकृष्णचन्द्र ने मथुरा का सब धन निकलवाया भैंसों छकड़ों ऊँटों पर लदवाया द्वारिका को भेज दिया। इसी बीच में फिर जरासंध तेईस अक्षौहिणी सेना ले मथुरापुरी पर चढ़ि आया। तब श्रीकृष्ण बलराम अति घबरा के निकले और उसके सन्मुख जाय अपने को दिखा उसके मन का संताप मिटाने को भाग चले। तब मन्त्री ने जरासंध से कहा कि महाराज! आपके प्रताप के आगे ऐसा कौन बली है जो ठहरे, देखो वे दोनों भाई कृष्ण बलराम छोड़के सब धनधाम अपना प्राण ले के तुम्हारे त्रास के मारे नंगे पावों भागे चले जाते हैं। इतनी बात मन्त्री से सुन कर जरासंध भी पुकार कर यह कहता हुआ सेना ले उनके पीछे दौड़ा—

काहे डर के भागे जात। ठाढे रहो करो कुछ बात॥
परत उठत क्यों कंपत भारी। आई है ढिग मीच तिहारी॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे पृथ्वीनाथ! जब श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जी ने भाग के लोकरीति दिखाई तब जरासंध के मन से पिछला सब शोक चला गया और अति प्रसन्न हुआ, ऐसा कि जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जाता है। आगे श्री कृष्ण बलराम भागते २ एक गौतमनामक पर्वत जो कि ग्यारह योजन ऊंचा था, तिस पर चढ़ और उसकी चोटी पर जाय खड़े भये—

देखि जरासंध कहै पुकारी। शिखर चढ़े बलभद्र मुरारी॥
अब बिधि हमसों जाय पलाय। या पर्वत को देहु जलाय॥

इतना बचन जरासंध के मुख से निकलते ही सब असुरोंने उस पहाड़ को आ घेरा और नगर २ गांव २ से काठ कबाड़ लाय उसके चारों ओर चुन दिया, तिस पर गुड़ गूदड़ घी तेल से भिगो के आग लगा दी। तब वह आग चोटी तक लहकी, तब उन दोनों भाईयों ने वहां से इस भांति कौतुक की बाट ली कि किसी ने उन्हें जाते भी न देखा और पहाड़ भस्म

हो गया। उस काल जरासंध श्रीकृष्ण बलराम को उस पर्वत के संग मरा जान, अति सुख मान सब दल साथ ले मथुरापुरी मे आया और वहाँ का राज ले नगर मे ढिंढोरा दे उसने अपना थाना बैठाया। जितने उग्रसेन वसुदेव के पुराने मन्दिर थे सो सब ढहवाये और आप अपने नये बनवाये।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि हे महाराज! इस रीति से जरासंध को धोखा दे श्री कृष्ण बलराम जी तो द्वारिका में जाय बसे और जरासंध भी मथुरा नगरी से चले सब सेना साथ लेकर अति आनन्द करता निशंक हो अपने घर आया।

(८)

रुक्मिणी से विवाह

श्रीशुकदेव जी ने कहा कि हे महाराज! रुक्मिणी नित्त सखियों के संग खेलती थी और दिन २ उसकी छवी दूनी होती थी। इसी बीच मे एक दिन नारद जी कुण्डलपुर आये और रुक्मिणी को देख श्रीकृष्णचन्द्र के पास द्वारका जायके उन्हों ने कहा कि हे महाराज! कुण्डलपुर मे राजा भीष्मक के घर एक कन्या रूप, गुण-शीलकी खान, लक्ष्मी के समान जन्मी है, सो तुम्हारे योग्य है। यह भेद जब नारदमुनि से सुन पाया तभी से रात दिन एक करके श्रीकृष्णचन्द्र जी रुक्मिणी का नाम स्मरण करने लगे और श्रीकृष्ण चन्द्र का रुक्मिणी ने कैसे नाम गुण सुना सो कहता हूँ। एक समय देश २ के कितने एक याचकों ने जाय के कुण्डलपुर में श्रीकृष्णचन्द्र का यश गाया, जैसे प्रभु ने मथुरा मे जन्म लिया और गोकुल बृन्दाबन मे जाय, ग्वालबालों के संग मिल, बालचरित्र किया, और असुरोंको मार भूमि का भार उतार, यदुबंशियों को सुख दिया था तैसे ही गाय सुनाया। हरि के चरित्र सुनते ही सब नगर के निवासी अति आश्चर्य कर आपस मे कहने लगे कि जिनकी लीला हमने कानों से सुनी है तिन्हें कब नैनों से देखेंगे? इसी बीच में किसी याचकने सुन्दर ढब से राजा भीष्मक की सभा मे जाय के प्रभु के चरित्र और गुण को गाया।

काल में—

बढ़ी अटा रुक्मिणी सुन्दरी। हरि चरित्र सुन श्रवननि पुरी ॥
अचरज करै भूलि मन रहै। फेर उझक कर देखनि चहै ॥

यों कहकर श्रीशुकदेव जी बोले हे पृथ्वीनाथ! इसभाँति से श्रीरुक्मिणी जी ने प्रभु का यश और नाम सुना। तब उसी दिन से रात दिन आठ पहर, चौंसठ घडी, सोते-जागते, बैठे-खड़े, चलते-फिरते, खाते पीते खेलते तिन्हीं का ध्यान किये रहें और गुण गाया करे। नित भोरही उठ स्नान कर मट्टी की गौर बना, रोली, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य चढावें, मनावे और हाथ जोड सिर नाय उसके आगे कहा करै कि:—

मोपर गौरि कृपा तुम करौ। यदुपति दे मम दुःख हरौ ॥

इसी रीति सदा रुक्मिणी रहने लगी। एक दिन सखियों के संग खेलती थी कि राजा भीष्मक उसे देख मन मे चिन्ता कर कहने लगा कि अब यह व्याहने योग्य हुई, इसे शीघ्र व्याह न दूँगा तो लोग हँसेंगे। कहा है कि जिसके घर मे कन्या बड़ी हो जाती है, उसका दान, पुण्य, जप, तप करना वृथा है क्योंकि ये सब किये से तब तक कुछ धर्म नहीं होता जब तक कन्या के ऋण से उऋण न होय। यह विचार कर राजा भीष्मक अपनी सभा मे आकर सब मन्त्री और कुटुम्ब के लोगों को बुलाकर बोला कि भाइयो! कन्या व्याहने योग हुई इसके लिये कुलवान,, गुणवान, रूपनिधान, शीलवान, कहीं वर ढूँढना चाहिये।

इतनी बात के सुनते ही उन लोगो ने अनेक देशों के राजाओं के कुल, गुण, रूप और पराक्रम कह सुनाये। परन्तु राजा भीष्मक के चित्त मे किसी की बात कुछ न आई। तब उनका बड़ा बेटा जिसका नाम रुक्म था, सो कहने लगा हे पिता! नगर चंदेरी का राजा शिशुपाल अति बलवान है, और सब भाँति हमारे समान है। तिससे रुक्मिणी की सगाई वहाँ कीजिये और जगत मे यश लीजिये। हे महाराज! जब उसकी भी बात राजा ने सुनी अनसुनी की, तब तो रुक्मकेश नामक उनका छोटा लड़का बोला कि —

रुक्मिणी पिता कृष्ण को दीजै। वासुदेव सों सगाई कीजै ॥
यह सुनि भीष्मक हरषे गात। कही पूत तैं नीकी बात ॥
है बालक सब सो अतिज्ञानी। तेरी बात भली हम मानी ॥

कहा है—

दो०—छोटे बडेनि पूछिकै, लीजै मन परतीति ।
सार वचन गह लीजिये, यही जगत की रीति ।।

ऐसे कह फिर राजा भीष्मक बोले कि यह तो रुक्मकेश ने भली बात कही है क्योंकि यदुवंशियों मे राजा शूरसेन बड़े यशस्वी और प्रतापी हुए हैं, तिन्ही के पुत्र वसुदेव जी हैं। सो कैसे हैं कि जिनके घर मे आदि पुरुष, अविनाशी, सकल देवन के देव श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने जन्म ले महाबली कंसादिक राक्षसों को मारा और भूमि का भार उतार यदुकुल को उजागर किया, और सब यदुवंशियों समेत प्रजा को सुख दिया। ऐसे जो द्वारिकानाथ श्रीकृष्णचन्द्र हैं उनको जो रुक्मिणी दें तो जगत मे यश और बड़ाई लें। इतनी बात के सुनते ही सब सभा के लोग अति प्रसन्न हो बोले कि महाराज! यह तो तुमने भली विचारी। क्यों कि ऐसा वर और घर कहीं न मिलेगा। इससे उत्तम यही है कि श्रीकृष्णचन्द्र को रुक्मिणी व्याह दीजिये। हे महाराज! जब सभा के सब लोगों ने कहा तब राजा भीष्मक का बड़ा बेटा जिसका नाम रुक्म था सो यह सुनि निपट झुँझलाय के बोला कि—

समझ न बोलत महागँवार। जानत नही कृष्ण व्योहार ।।
सोरह बरष नन्द के रह्यो। तब अहीर सब काहू कह्यो ।।
कामरि ओढ़े गाय चराई। बन मे बैठी छाक तिन खाई ।।

वही तो गँवार ग्वाल है, उसकी जात पांत का क्या ठिकाना और जिसके बाँ किसी बात का भेद नही जाना जाता, उसे हम पुत्र किसका समझें। कोई नन्दगोप का जानता है, कोई वसुदेव का कर मानता है, पर आज तब यह भेद किसी ने नही पाया कि कृष्ण किसका बेटा है। इसी से जो जिसके मन मे आता है सो गाता है। हे महाराज! हमे सब कोई जानता व मानता है, और यदुवंशी राजा ही कब भये? क्या हुआ जो थोड़े दिनों से बढ़कर उन्होंने बड़ाई पाई। पहला कलंक तो अब छूटेगा। यह उग्रसेन का चाकर कहाता है, इससे सगाई कर क्या हम कुछ संसार पावेंगे? कहा है कि व्याह, वैर और प्रीति समान से करिये तो

शोभा पाइये। और जो कृष्ण को देंगे तो हमें लोग कहेंगे कि ग्वाल को मारा, तिससे सब जायेगा नास और यश हमारा।

हे महाराज! यह कह फिर रुक्म बोला कि नगर चेदी का राजा शिशुपाल बड़ा बली और प्रतापी है, उसके डर से सब थर थर काँपते हैं और परंपरा से उनके घर से राजगद्दी चली आती है। इससे अब उत्तम यही है कि रुक्मिणी उसी को दीजिये, और मेरे आगे कृष्ण का नाम भी न लीजिये। इतनी बात के सुनते ही सब सभा के लोग मारे डरके मन ही मन अछताय पछताय के चुप हो रहे और राजा भीष्मक भी कुछ न बोला। इसी बीच में रुक्म ने ज्योतिषी को बुलाय, शुभ दिन लग्न ठहराय, एक ब्राह्मण के हाथ राजा शिशुपाल के यहाँ टीका भेज दिया। वह ब्राह्मण टीका लिये चला चला नगर चेदी में जाय राजा शिशुपाल की सभा में पहुंचा। देखते ही राजा ने प्रणाम कर, जब ब्राह्मण से पूछा कि कहो देवता आपका आना कहाँ से हुआ? और यहाँ किस मनोरथ के लिये आये हो? तब तो उस विप्र ने आसीस दे अपने आने का सब ब्योरा कह सुनाया। यह सुनते ही प्रसन्न हो राजा शिशुपाल ने अपना पुरोहित बुलाय टीका लिया और उस ब्राह्मण को बहुत सा धन दे बिदा किया। पीछे जरासंध आदि सब देश देश के नरेशों को न्योत बुलाया। वे भी अपना दल ले ले आये। तब वह भी अपना सब कटक ले ब्याहन चढ़ा। उस ब्राह्मण ने आकर राजा भीष्मक से कहा कि हे महाराज! मैं राजा शिशुपाल को टीका दे आया। वह बड़ी धूम-धाम से बरात ले ब्याहन को आता है, आप अपना कार्य कीजिये।

यह सुन राजा भीष्मक पहले तो निपट उदास हुए। पीछे कुछ सोच समझ कर मन्दिर जाय उन्होंने पटरानी से कहा। यह सुन कर नगर की और कुटुम्ब की नारियों को बुलाय मंगलाचार करवाय ब्याह की सब रीति भाँति करने लगीं। फिर राजा ने बाहर आय प्रधान और मन्त्रियों को आज्ञा दी कि कन्या के विवाह में जो जो वस्तु चाहिये सो सब इकट्ठी करो। राजा की आज्ञा पाते ही मन्त्री और प्रधानों ने सब वस्तु बात की बात में बनवाय व मँगवाय के लाय रक्खीं। लोगों ने सब देखा और [illegible] तब चर्चा नगर में फैली कि रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्णचन्द्र से [illegible] था उसे दुष्ट रुक्म ने न होने दिया, अब शिशुपाल से होगा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे पृथ्वीनाथ ! नगर में तो घर २ यह बात हो रही थी और राजमन्दिर में नारियाँ गाय बजाय के रीति भाँति करती थीं ब्राह्मण वेद पढ़ २ टेहले करवाते थे और दुन्दुभी बाजे बजते थे। द्वार पर सपल्लव केले के खंभे गाड़ २ सोने के कलश भर लोग धरते थे और तोरण बंदनवारें बांधते थे और एक ओर नगर निवासी न्यारे ही हाट बाट चौहट्टे झाड़ बुहार पट से पीटते थे। इस भाँति से घर और बाहर सब तरफ धूम मच रही थी। उसी समय दो चार सखियों ने जाकर रुक्मिणी से कहा कि—

देख तोहि रुक्म शिशुपालहि दई। अब तू रुक्मिणी रानी भई॥
बोली सोच नाय कर सीस। मन वच मेरे प्राण जगदीश॥

इतना कह रुक्मिणी ने अति चिन्ता कर एक ब्राह्मण को बुलाय हाथ जोड़ उसकी बहुत सी विनती और बड़ाई कर अपना मनोरथ उससे सब सुनाय के कहा कि हे महाराज ! मेरा संदेशा द्वारिका ले जाओ और द्वारिकानाथ को सुनाय उन्हे साथ ले आओ, तो तुम्हारा बड़ा गुण मानूंगी और यह जानूंगी कि तुमने ही दया करके मुझे श्रीकृष्ण वर दिया।

इतनी बात के सुनते ही वह ब्राह्मण बोला कि अच्छा तुम संदेश कहो, मै उसे ले जाऊंगा और श्री कृष्णचन्द्र को सुनाऊंगा। वे कृपानाथ हैं, जो कृपा कर मेरे संग आवैंगे तो ले आऊंगा। इतना वचन जब ब्राह्मण के मुख से निकला तब रुक्मिणी जी ने एक पाती प्रेमरङ्ग राती लिख कर उसके हाथ दी और कहा श्री कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को पाती देकर मेरी ओर से कहियो कि उस दासी ने कर जोड़ अति विनती करके कहा है कि आप अन्तर्यामी है, घट २ को जानते हैं, अधिक क्या कहूँ, मैंने तुम्हारी शरण ली है, अब मेरी लाज तुम्हे है। जिस मे बात रहै सो कीजै और दासी को आय बेग दर्शन दीजै।

हे महाराज ! ऐसे कह सुन कर जब रुक्मिणी जी ने उस ब्राह्मण को विदा किया। तब वह प्रभु का ध्यान कर नाम लेता द्वारिका को चला और हरि इच्छा से बात के कहते ही जा पहुँचा। वहां जाय के देखे कि समुद्र के बीच मे वह अद्भुत पुरी बनी हुई जिसके चहुँ ओर बड़े २ पर्वत बन शोभा दे रहे हैं, जिन में भाँति २ के पशु पक्षी बोल रहे है, और

निर्मल जल भरे सुथरे सरोवर मे कमल गहगहाय रहे हैं, जिन पर भौंरों के झुण्ड गूँज रहे हैं, और तीर पै हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे हैं; कोसों तक अनेकों प्रकार के फल, फूलों की क्यारियाँ चली गई है कितनी बाड़ियों पर पनवाड़िया लहलहा रही है, बावड़ी इन्दारों पै खड़े हो माली मीठे सुरों से गाय २ रहट परोहे चलाय चलाय ऊँचे नीर खींच रहे हैं, और पनघटों पर पनिहारियों के ठट्ट के ठट्ट लगे हुए हैं।

यह छवि निरख हरष के ब्राह्मण जब आगे बढ़ा, तब देखता क्या है नगर के चारों ओर अति ऊँचा कोट है, जिसमे चार फाटक है जिन मे कञ्चन खचित जड़ाऊ किवाड़ लगे हुए हैं और पुरी के भीतर चादी सोने के मणिमय पचखने मन्दिर ऐसे ऊँचे है कि मानों आकाश से बातें कर रहे हैं जिनके कलस कलसियाँ बिजली सी चमकती है, बरन बरन की ध्वजा व पताकाएं फहराय रही हैं। खिड़की झरोखों, जालियों से सुगन्ध की लपटें आय रहीं हैं। द्वार २ सपल्लव केले के खम्भे और कञ्चन कलश जल भरे धरे हैं। तोरण वन्दनवार बँधी हुई हैं और घर २ आनन्द के बाजने बज रहे हैं। ठौर २ पर कथा पुराण और हरि चरचा हो रही हैं। अठारह बरन सुख-चैन से वास करते हैं। सुदर्शनचक्र उस पुरी की रक्षा करता है।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि हे राजा! ऐसी जो सुन्दर सुहावनी द्वारिकापुरी है, तिसे देखता देखता वह ब्राह्मण राजा उग्रसेन के सभा मे जा खड़ा हुआ। और आशीरा देकर वहां उसने पूछा कि श्री कृष्णचन्द्र जी कहां विराजते हैं? तब किसी ने हरि का मन्दिर बता दिया। वह ज्यों द्वार पर जाय खड़ा हुआ, त्योंही द्वारपालों ने उन्हे देख दण्डवत कर पूछा कि—

कौ हो आप कहां ते आये। कौन देश की पाती लाये॥

यह सुनकर वह बोला कि मै ब्राह्मण हूं और कुण्डलपुर का रहने वाला का भीष्मक है, उसकी कन्या जो रुक्मिणी है उसकी चिट्ठी श्री कृष्णचन्द्र को देने आया हूं। इतनी बात के सुनते ही पौरियों ने कहा कि महाराज मन्दिर मे पधारिये श्री कृष्णचन्द्र सो ही सिंहासन पर विराजते

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे पृथ्वीनाथ ! नगर मे तो घर २ यह बात हो रही थी और राजमन्दिर में नारियाँ गाय बजाय के रीति भाँति करती थीं ब्राह्मण वेद पढ़ २ टेहले करवाते थे और दुन्दुभी बाजे बजते थे। द्वार पर सपल्लव केले के खंभे गाड़ २ सोने के कलश भर लोग धरते थे और तोरण बंदनवारें बांधते थे और एक ओर नगर निवासी न्यारे ही हाट बाट चौहट्टे झाड़ बुहार पट से पीटते थे। इस भाँति से घर और बाहर सब तरफ धूम मच रही थी। उसी समय दो चार सखियों ने जाकर रुक्मिणी से कहा कि—

देख तोहि रुक्म शिशुपालहि दई। अब तू रुक्मिणी रानी भई ॥
बोली सोच नाय कर सीस। मन वच मेरे प्राण जगदीश॥

इतना कह रुक्मिणी ने अति चिन्ता कर एक ब्राह्मण को बुलाय हाथ जोड़ उसकी बहुत सी विनती और बड़ाई कर अपना मनोरथ उससे सब सुनाय के कहा कि हे महाराज ! मेरा संदेशा द्वारिका ले जाओ और द्वारिकानाथ को सुनाय उन्हे साथ ले आओ, तो तुम्हारा बड़ा गुण मानूंगी और यह जानूंगी कि तुमने ही दया करके मुझे श्रीकृष्ण वर दिया।

इतनी बात के सुनते ही वह ब्राह्मण बोला कि अच्छा तुम संदेश कहो, मैं उसे ले जाऊंगा और श्री कृष्णचन्द्र को सुनाऊंगा। वे कृपानाथ हैं, जो कृपा कर मेरे संग आवेंगे तो ले आऊंगा। इतना बचन जब ब्राह्मण के मुख से निकला तब रुक्मिणी जी ने एक पाती प्रेमरङ्ग राती लिख कर उसके हाथ दी और कहा श्री कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को पाती देकर मेरी ओर से कहियो कि उस दासी ने कर जोड़ अति बिनती करके कहा है कि आप अन्तर्यामी है, घट २ को जानते हैं, अधिक क्या कहूँ, मैंने तुम्हारी शरण ली है, अब मेरी लाज तुम्हे है। जिस मे बात रहे सो कीजे और दासी को आय बेग दर्शन दीजे।

हे महाराज ! ऐसे कह सुन कर जब रुक्मिणी जी ने उस ब्राह्मण को बिदा किया। तब वह प्रभु का ध्यान कर नाम लेता द्वारिका को चला और हरि इच्छा से बात के कहते ही जा पहुँचा। वहां जाय के देखे कि समुद्र के मे वह अद्भुत पुरी बनी हुई जिसके चहुँ ओर बड़े २ पर्वत क शोभा दे रहे हैं, जिन में भाँति २ के पशु पक्षी बोल रहे हैं, औ

निर्मल जल भरे सुथरे सरोवर मे कमल गहगहाय रहे है, जिन पर भौंरो के झुण्ड गूँज रहे है, और तीर पै हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे हैं, कोसों तक अनेकों प्रकार के फल, फूलों की बाड़ियाँ चली गई है कितनी बाड़ियों पर पनवाड़िया लहलहा रही है, बावड़ी इन्दारों पै खड़े हो माली मीठे सुरो से गाय २ रहट परोहे चलाय चलाय ऊँचे नीर खींच रहे है, और पनघटों पर पनिहारियों के ठट्ट के ठट्ट लगे हुए हैं।

यह छवि निरख हरष के ब्राह्मण जब आगे बढ़ा, तब देखता क्या है नगर के चारो ओर अति ऊँचा कोट है, जिसमे चार फाटक है जिन मे कञ्चन खचित जड़ाऊ किवाड लगे हुए हैं और पुरी के भीतर चादी सोने के मणिमय पचखने मन्दिर ऐसे ऊँचे है कि मानों आकाश से बातें कर जगमगा रहे हैं जिनके कलस कलसियाँ बिजली सी चमकती हैं, बरन बरन की ध्वजा व पताकाएं फहराय रही है। खिड़की झरोखों, जालियों से सुगन्ध की लपटें आय रहीं हैं। द्वार २ सपल्लव केले के खम्भे और कञ्चन कलस जल भरे धरे है। तोरण वन्दनवार बँधी हुई है और घर २ आनन्द के बाजने बज रहे हैं। ठौर २ पर कथा पुराण और हरि चरचा हो रही है। अठारह बरन सुख-चैन से बास करते है। सुदर्शनचक्र इस पुरी की रक्षा करता है।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि हे राजा! ऐसी जो सुन्दर सुहावनी द्वारिकापुरी है, तिसे देखता देखता वह ब्राह्मण राजा उग्रसेन की सभा मे जा खड़ा हुआ। और आशीस देकर वहा इसने पूछा कि श्री कृष्णचन्द्र जी कहां विराजते है? तब किसी ने हरि का मन्दिर बता दिया। वह ज्यों द्वार पर जाय खड़ा हुआ, त्योंही द्वारपालों ने इन्हे देख दण्डवत कर पूछा कि—

को हो आप कहां ते आये। कौन देश की पाती लाये॥

यह सुनकर वह बोला कि मै ब्राह्मण हूं और कुण्डलपुर का रहने वाला हो भीष्मक है, उसकी कन्या जो रुक्मिणी है उसकी चिट्ठी श्री कृष्णचन्द्र को देने आया हूं। इतनी बात के सुनते ही पौरियो ने कहा कि महाराज! मन्दिर मे पधारिये श्री कृष्णचन्द्र सो ही सिंहासन पर विराजते

हैं। यह बचन सुनकर वह ब्राह्मण ज्यों भीतर गया त्यों हरि ने देखते ही सिंहासन से उतर दण्डवत करि अति आदर व मान किया और सिंहासन पर बिठाय चरण धोय चरणामृत लिया। फिर ऐसे सेवा करने लगे जैसे कोई अपने इष्ट की सेवा करता है। निदान प्रभु ने सुगन्धित उबटन तेल लगाय नहलाय धुलाय पहले तो उन्हें षटरस भोजन करवाया, पीछे बीड़ा देके चन्दन अगर फूलों की माला पहिराय मणिमय मन्दिर में ले जा कर एक सुथरे जड़ाऊ छप्परखट में लिटाया। हे महाराज! यह भी बाट के हारे थके थे सो लेटते ही सुख पाय के सो गये। श्रीकृष्ण जी कितनी एक बेर तो उन की बातें सुनने की अभिलाषा किये २ वहाँ बैठ, मन ही मन कहते थे कि अब उठें, अब उठें, निदान जब देखा कि वह न उठे तब आतुर हो उन के पैताने बैठ पाँव दबाने लगे। इस से उन की नींद टूटी तो वह उठ बैठे। तब हरि ने उनकी क्षेम-कुशल पूछ कर पूछा कि—

नीको राजदेश तुम जानो। हम सों भेद कहौ तुम अपनो ॥
कौन काज याँ आवन भयौ। दरस दिखाय हमें सुख दयौ ॥

तब ब्राह्मण बोला कि हे कृपानिधान! आप मन लगाय के सुनिये, मैं अपने आने का कारण कहता हूं कि हे महाराज! कुण्डलपुर के राजा भीष्मक की कन्या ने जब से आप का नाम और गुण सुना है, तभी से वह निस दिन तुम्हारा ध्यान किये रहती थी, और चरण कमल की सेवा किया चाहती थी और संयोग भी आय बना था परन्तु बिगड़ गई। प्रभु बोले, सो क्या? तब ब्राह्मण ने कहा कि हे दीन दयालु! एक दिन राजा भीष्मक ने अपने सब कुटुम्ब और सभा के लोगों को बुलाय के कहा, भाइयो! कन्या ब्याहने योग भई, अब इस के लिये वर ठहराना चाहिए। इतना बचन राजा के मुख से निकलते ही उन्होंने अनेक राजाओं का कुल, गुण, नाम पराक्रम कह सुनाया, परन्तु उनके मन मे न आया। जब रुक्म-केश ने आप का नाम लिया, तब प्रसन्न हो राजा ने उसका कहना मान लिया और सब से कहा कि भाइयो! मेरे मन मे तो इस की बात पत्थर कीर हो चुकी, किन्तु तुम क्या कहते हो? वे बोले कि महाराज! घर वर जो त्रिलोक में ढूँढियेगा, तो भी न पाइयेगा इस से अब यही है कि विलम्ब न कीजिये, शीघ्र श्रीकृष्ण चन्द्र रुक्मिणी

का विवाह रच दीजिये। महाराज ! यह बात ठहर चुकी थी कि इस मे रुक्म ने भाँजी मार रुक्मिणी की सगाई शिशुपाल से की है, और वह असुर दल साथ ले व्याहने को चढा है।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि हे पृथ्वीनाथ ! ऐसे वह ब्राह्मण ने समाचार कह रुक्मिणी की चिट्ठी हरि के हाथ मे दी। तब प्रभु ने अति हित से पाती ले छाती से लगाय ली और पढ कर प्रसन्न हो ब्राह्मण से कहा कि हे देवता ! तुम किसी बात की चिंता मत करो, मैं तुम्हारे साथ चल असुरों को मार उस का मनोरथ पूरा करूँगा। यह सुन कर ब्राह्मण को धीरज हुआ, परन्तु हरि रुक्मिणी का ध्यान कर चिन्ता करने लगे।

श्रीशुकदेव जी बोले कि हे राजा ! श्रीकृष्ण चन्द्र ने ऐसे उस ब्राह्मण को ढारस बँधाय फिर कहा कि—

दोहा—जैसे घिस के काठ ते काढहिं ज्वाला जारि।

ऐसे सुन्दरि लावहौं, दुष्ट असुर दल मारि ॥

इतना कह फिर सुथरे वस्त्र आभूषण मनसाने पहने और राजा उग्रसेन के पास जाय के प्रभु ने हाथ जोड़ कर कहा कि हे महाराज ! कुण्डलपुर के राजा भीष्मक ने अपनी कन्या देने को पत्र लिखा है और पुरोहित के साथ मुझे अकेला बुलाया है। जो आज्ञा दें तो मैं जाऊँ और उनकी बेटी व्याह लाऊँ ?

सुनकर उग्रसेन यों कहैं। दूर देश कैसे मन रहैं ॥

तहाँ अकेले जात मुरारी। मत काहू सों उपजै रारी ॥

तब तुम्हारा समाचार हमे वहाँ कौन पहुंचावेगा ? ? यह कह कर पुनि उग्रसेन बोले अच्छा तुम वहाँ जाना चाहते हो तो अपनी सब सेना साथ ले दोनों भाई जाओ और व्याह कर शीघ्र चले आओ। वहाँ किसी से झगड़ा न करना। क्योंकि तुम चिरंजीव रहोगे तो व्याह हो ही जायगा। यह आज्ञा पाते ही श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे महाराज ! तुमने सच कहा है, परन्तु मै आगे चलता हूं। आप कटक समेत बलराम जी को पीछे से भेज दीजिये।

ऐसे कह हरि उग्रसेन वसुदेव से विदा हो उस ब्राह्मण के निकट आये और रथ समेत अपने दारुण सारथी को बुलवाया। वह भी प्रभु की आज्ञा पाते ही चारों घोड़े का रथ तुरत जोत लाया। तब श्रीकृष्णचन्द्र उस पर चढ़ और ब्राह्मण को पास बिठाय द्वारिका से कुण्डलपुर को चले। ज्यों नगर के वाहर निकले त्यों देखते क्या हैं कि दाहिनी ओर मृग के झुँड चले जाते हैं। और सन्मुख से सिंह सिंहनी अपना भक्ष्य लिये गर्जते आते हैं। यह शुभ सगुन देख ब्राह्मण अपने जी में विचार कर बोला कि हे महाराज इस सगुन के देखने से मेरे विचार मे यह आता है कि जैसे ये अपना काज साध के आते हैं तैसे ही तुम भी अपना काज सिद्ध करके आवोगे। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि आप की कृपा से। इतना कह हरि यहाँ से आगे बढ़े और नये नये देश, नगर, गाँव देखते देखते कुण्डलपुर में जा पहुंचे। वहाँ देखते हैं कि ठौर ठौर पर व्याह का सामान जो सजाय धरी है, तिससे नगर की छवि और ही हो रही है।

झारे गली चौहट छावें। चोआ चन्दन सों छिरकावें॥
पाय सुपारी भौरा किये। बिचबिच कनक नारियर दिये॥
हरे पात फल फूल अवारा। ऐसो घर घर बन्दनवारा॥
ध्वजा पताका तोरण तने। सुढब कलस कंचन के बने॥

और घर घर में आनन्द हो रहा है। हे महाराज! यह नगर की शोभा थी, और राजमन्दिर मे जो कुतूहल हो रहा था, उसका वर्णन कोई क्या करेगा वह देखते ही बनि आवेगा। आगे श्रीकृष्णचन्द्र ने सब नगर देखकर आके राजा भीष्मक की बाड़ी में डेरा किया। और शीतल छाँह मे बैठ ठण्डे हो उस ब्राह्मण से कहा कि देवता! तुम पहले हमारे आने का समाचार रुक्मिणी जी को सुनाओ जो हम फिर उस का उपाय करें। तब वह ब्राह्मण बोला कि हे कृपानाथ! आज व्याह का पहिला दिन है, अतः राजमंदिर मे बड़ी धूमधाम हो रही है। मै जाता हूँ परन्तु रुक्मिणी को अकेला पाकर आपके आने का भेद कहूँगा। यह कह वहाँ से चला। हे महाराज! इधर से हरि यों चुपचाप अकेले पहुंचे उधर से राजा शिशुपाल जरासंध समेत असुरदल लिये इस धूम से आया

कि जिसका वारापार नहीं और इतनी भीड़ संग कर लाया कि जिसके बोझ से शेषनाग डगमगाने लगे और पृथ्वी उछलने लगी। उसके आने की सुधि पाकर राजा भीष्मक अपने मन्त्री और कुटुम्ब के लोगों समेत आगे बढ़ लेने गये और बड़े आदर मान से आगौनी कर सबको पहरावन पहराय रत्न जटित वस्त्र आभूषण और हाथी घोड़े दे उन्हें नगर मे ले आये और जनवासा दिया। फिर खाने पीने का सामान किया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे महाराज! अब आगे की कथा कहता हूं। आप चित्त लगाय के सुनिये। जब श्रीकृष्णचन्द्र द्वारिका से चले तिसी समय यदुवंशियों ने जाय राजा उग्रसेन से कहा कि हे महाराज! हमने सुना है कि कुण्डलपुर मे राजा शिशुपाल, जरासंध समेत सब असुर-दल ले ब्याहने को आया है और हरि अकेले गये हैं इससे हम जानते हैं कि वहाँ श्रीकृष्ण जी से और उससे युद्ध होगा। यह बात जान के भी हम अजान ही हरि को छोड यहाँ कैसे रहें? हमारा मन तो नहीं मानता। आगे जो आप आज्ञा कीजिये, सो करें?

इस बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति भय खाय घबराय बलराम जी को निकट बुलाय के कहा कि तुम हमारी सब सेना लेके श्रीकृष्ण के पहुंचने से पहले ही शीघ्र कुण्डलपुर जाओ उन्हें अपने संग करके ले आओ। राजा की यह आज्ञा पाते ही बलदेवजी छप्पन करोड यादव जोड़ के कुण्डलपुर को चले। उस काल मे कटक के हाथी काले, धौले, धूमर, बादल दलसे जनाते थे और उनके श्वेत २ दांत बक-पंक्ति से थे, धौंसा गाज सा गर्जता था और शस्त्र बिजली से चमकते थे। रंग रंगराते चले बागे पहिरे घुड़चढ़ों के टोल के टोल जिधर तिधर दृष्टि आते थे। रथों के तांते झनझनाते चले जाते थे। तिनकी शोभा निरख निरख हरष देवता अपने हित से अपने विमानों पर बैठे आकाश से फूल बरसाय २ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द की जै मनाते थे। इसी बीच मे सब दल लिये धाय के कुण्डलपुर मे हरि के पहुंचते ही बलराम जी भी जा पहुँचे। यह सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र रूपसागर जगत उजागर तो इस भांति कुण्डलपुर पहुँच चुके थे परन्तु रुक्मिणी उनके आने का समाचार न पाकर:—

ऐसे कह हरि उग्रसेन वसुदेव से विदा हो उस ब्राह्मण के निकट आये और रथ समेत अपने दारुण सारथी को बुलवाया। वह भी प्रभु की आज्ञा पाते ही चारों घोडे का रथ तुरत जोत लाया। तब श्रीकृष्णचन्द्र उस पर चढ़ और ब्राह्मण को पास बिठाय द्वारिका से कुण्डलपुर को चले। ज्यों नगर के बाहर निकले त्यों देखते क्या हैं कि दाहिनी ओर मृग के झुँड चले जाते हैं। और सन्मुख से सिंह सिंहनी अपना भक्ष्य लिये गर्जते आते हैं। यह शुभ सगुन देख ब्राह्मण अपने जी में विचार कर बोला कि हे महाराज इस सगुन के देखने से मेरे विचार मे यह आता है कि जैसे ये अपना काज साध के आते हैं तैसे ही तुम भी अपना काज सिद्ध करके आवोगे। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि आप की कृपा से। इतना कह हरि यहाँ से आगे बढ़े और नये नये देश, नगर, गाँव देखते देखते कुण्डलपुर में जा पहुंचे। वहाँ देखते हैं कि ठोर ठोर पर व्याह का सामान जो सजाय धरी है, तिससे नगर की छवि और ही हो रही है।

झारे गली चौहट छावें। चोआ चन्दन सों छिरकावें॥
पाय सुपारी झौरा किये। बिचबिच कनक नारियर दिये॥
हरे पात फल फूल अवारा। ऐसो घर घर वन्दनवारा॥
ध्वजा पताका तोरण तने। सुढव कलस कंचन के बने॥

और घर घर में आनन्द हो रहा है। हे महाराज! यह नगर की शोभा थी, और राजमन्दिर में जो कुतूहल हो रहा था, उसका वर्णन कोई क्या करेगा वह देखते ही बनि आवेगा। आगे श्रीकृष्णचन्द्र ने सब नगर देखकर आके राजा भीष्मक की बाडी मे डेरा किया। और शीतल छाँह मे बैठ ठण्डे हो उस ब्राह्मण से कहा कि देवता! तुम पहले हमारे आने का समाचार रुक्मिणी जी को सुनाओ जो हम फिर उस का उपाय करें। तब वह ब्राह्मण बोला कि हे कृपानाथ! आज व्याह का पहिला दिन है, अतः राजमंदिर मे बडी धूमधाम हो रही है। मैं जाता हूँ परन्तु रुक्मिणी को अकेला पाकर आपके आने का भेद कहूँगा। यह कह वहाँ से चला। हे महाराज! इधर से हरि यों चुपचाप अकेले पहुंचे उधर से राजा शिशुपाल जरासंध समेत असुरदल लिये इस धूम से आया

कि जिसका वारापार नहीं और इतनी भीड़ संग कर लाया कि जिसके बोझ से शेषनाग डगमगाने लगे और पृथ्वी उछलने लगी। उसके आने की सुधि पाकर राजा भीष्मक अपने मन्त्री और कुटुम्ब के लोगों समेत आगे बढ़ लेने गये और बड़े आदर मान से आगौनी कर सबको पहरावन पहराय रत्न जटित वस्त्र आभूषण और हाथी घोड़े दे उन्हे नगर मे ले आये और जनवासा दिया। फिर खाने पीने का सामान किया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे महाराज! अब आगे की कथा कहता हू। आप चित्त लगाय के सुनिये। जब श्रीकृष्णचन्द्र द्वारिकामे चले तिसी समय यदुवंशियों ने जाय राजा उग्रसेन से कहा कि हे महाराज! हमने सुना है कि कुण्डलपुर मे राजा शिशुपाल, जरासंध समेत सब असुर-दल ले व्याहने को आया है और हरि अकेले गये हैं इससे हम जानते हैं कि वहाँ श्रीकृष्ण जी से और उससे युद्ध होगा। यह बात जान के भी हम अजान ही हरि को छोड यहाँ कैसे रहे? हमारा मन तो नहीं मानता। आगे जो आप आज्ञा कीजिये, सो करें?

इस बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति भय खाय घबराय बलराम जी को निकट बुलाय के कहा कि तुम हमारी सब सेना लेके श्रीकृष्ण के पहुँचने से पहले ही शीघ्र कुण्डलपुर जाओ उन्हे अपने संग करके ले आओ। राजा की यह आज्ञा पाते ही बलदेवजी छप्पन करोड़ यादव जोड के कुण्डलपुर को चले। उस काल मे कटक के हाथी काले, धौले, धूमर, बादल दलसे जनाते थे और उनके श्वेत २ दांत बक-पंक्ति से थे, धौंसा मेघ सा गर्जता था और शस्त्र बिजली से चमकते थे। रंग रंगराते चले बागे पहिरे घुड़चढ़ों के टोल के टोल जिधर तिधर दृष्टि आते थे। रथों के ताते भनभनाते चले जाते थे। तिनकी शोभा निरख निरख हरष देवता अति हित से अपने विमानों पर बैठे आकाश से फूल बरसाय २ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द की जै मनाते थे। इसी बीच मे सब दल लिये चले २ कुण्डलपुर में हरि के पहुँचते ही बलराम जी भी जा पहुँचे। यह सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र रूपसागर जगत उजागर तो इस भाँति कुण्डलपुर पहुँच चुके थे परन्तु रुक्मिणी उनके आने का समाचार न पाकरः—

निकल वदन चितवैं चहुँ ओर । जैसे चन्द्र मलिन भये भोर ॥
अति चिंता सुन्दरिजिय वाढी । देखे ऊँच अटा पर ठाढ़ी ॥
चढ़ि चढ़ि उभकै खिरकी द्वार । नैननि ते छाँडे जल धार ।
दोहा—बिलखि वदन अति मलिन मन; लेत उसासनि सांस ।
व्याकुल वरषा नैन जल, सोचति कहति उदास ॥

कि अब तक हरि क्यों नहीं आये ? जिनका नाम तो अन्तर्यामी है। ऐसी मुझ से क्या चूक पडी है जो अब तक विन्होंने मेरी सुध न ली। क्या ब्राह्मण वहां नहीं पहुँचा ? कै हरिने मुझे कुरूप जान मेरी प्रीति की प्रतीति न करी ? कि जरासंध का आना सुन प्रभु न आये ? कल व्याह का दिन है और असुर आय पहुँचा है। जो वह कल मेरा कर गहेगा, तो यह पापी जीव हरिबिन कैसे रहेगा ? जप तप नेम धर्म कुछ आड़े न आया, अब क्या करूँ किधर जाऊँ ? अपनी बरात ले आया शिशुपाल, कैसे बिरमे प्रभु दीन दयाल ।

इतनी बात जब रुक्मिणी के मुँह से निकली, तब एक सखी ने तो कहा कि दूर देश, बिन पिता वन्धु आज्ञा हरि कैसे आवेंगे ? फिर दूसरी बोली कि जिसका नाम अन्तर्यामी दीन दयाल है वे बिन आये न रहें रुक्मिणी तू धीरज धर व्याकुल न हो। मेरा मन यह हामी भरता है अभी आय कोई यह कहता है कि हरि आये। हे महाराज ! ऐसे वे आपस में बतकहाव कर ही रही थी कि वैसे ब्राह्मण ने जाय के देकर कहा कि श्रीकृष्णचन्द्र जी ने आय के राजबाड़ी मे डेरा कि और सब दल लिये बलदेव जी पीछे से आते हैं। ब्राह्मण को देखते इतनी बात के सुनते ही रुक्मिणी के जी मे जी आया और उन्होंने काल ऐसा सुख माना कि जैसा तपस्वी तप का फल पाय सुख मनाता

आगे श्री रुक्मिणी जी हाथ जोड़ शिर झुकाय उस ब्राह्मण के सन्‍ कहने लगीं कि आज तुमने यह हरि का आगमन सुनाय मुझे प्राणदा दिया, मै इसके पलटे क्या दूँ ? जो त्रिलोकी की माया दूँ तो भी तुम्हारे से उऋण नहीं हूँ। ऐसे कह मनमार सकुचाय रहीं। तब वह ब्राह्मण तुष्ट हो आशीर्वाद देकर वहाँ से उठके राजा भीष्मक के पास

गया और उसने श्रीकृष्ण के आने का सब व्योरा समझाय के कहा। जिसके सुनते ही वेग्रगण राजा भीष्मक उठ धाया और चला २ वहां आया जहाँ बाड़ी में श्रीकृष्ण बलराम सुखधाम विराजते थे। आते ही साष्टांग प्रणाम कर सन्मुख खड़े हो हाथ जोड़ के राजा भीष्मक ने कहा कि:—

मेरे मन वच हो तुम हरी। कहा कहों जो दुष्टन करी॥

अब मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ, जो आपने आय दर्शन दिया। यह कह प्रभु के डेरे करवाय राजा भीष्मक तो अपने घर आय के चिंताकर के ऐसे कहने लगा कि:—

हरि चरित्र जाने सब कोई, क्या जाने अब कैसी होई॥

और जहाँ श्रीकृष्ण बलदेव थे, तहाँ सम्पूर्ण नगर निवासी क्या स्त्री क्या पुरुष सिर नाय प्रभु का यश गाय २ सराहि २ आपस में यह कहते थे कि रुक्मिणी के योग्य वर श्रीकृष्ण ही हैं। विधना ऐसी करे कि यह जोड़ी जुड़े और चिरंजीव रहे। इसी बीच में दोनों भाइयों के जी में जो कुछ आया तो नगर देखने चले। उस समय में दोनों भाई जिस हाट बाट चौहट्ट मे हो कर जाते थे, वहाँ नर-नारियों के ठट्ट के ठट्ट लग जाते थे और वे इनके ऊपर चोआ, चन्दन, गुलाबनीर, छिड़क २ फूल बरसाय २ हाथ बढ़ाय २ प्रभु को आपस में यह कह कर बताते थे कि:—

नीलो पट ओढ़े बलराम। पीताम्बर पहने घनश्याम॥
कुण्डल चपल मुकुट सिरधरे। कमल नयन चाहत मनहरे॥

और ये देखते जाते थे। निदान सब नगर और राजा शिशुपाल का कटक देख ये तो अपने दल में आये और इनसे आने का समाचार सुन राजा भीष्मक का बड़ा बेटा अति क्रोध कर अपने पिता के निकट आय कहने लगा कि सच कहो, कृष्ण यहाँ किसका बुलाया आया? यह भेद मैंने नहीं पाया, बिन बुलाये वह कैसे आया, व्याह का काज है सुख धाम, इसमें इसका है क्या काम। ये दोनों कपटी कुटिल जहाँ जाते हैं, वहाँ ही उत्पात मचाते हैं, जो तुम भला अपना भला चाहो तो तुम मुझ से सत्य कहो ये किसके बुलाये आये हैं।

हे महाराज ! रुक्म ऐसे पिता को धमकाय वहाँ से उठ कर सात पांच करता हुआ वहाँ गया, जहाँ राजा शिशुपाल और जरासंध अपनी सभा में बैठे थे। वहाँ जाकर उसने कहा कि यहाँ रामकृष्ण भी आये हैं अतः तुम अपने लोगों को जना दो, जो सावधानी से रहें। इन दोनों भाइयों का नाम सुनते ही राजा शिशुपाल तो हरि-चरित्र को लख व्योहार, जोहार और कहने लगा मन ही मन विचार। और जरासंध कहने लगा सुनो जी ? जहाँ ये दोनों आवे हैं तहाँ कुछ न कुछ उपद्रव मचावें हैं। ये महाबली और कपटी हैं, इन्हें तुम मत जानो बारे, ये कभी किसी से लडकर नहीं हारे। श्रीकृष्ण ने सत्रह बेर मेरा दल हना है। जब मै अठाहरवीं बेर चढ़ आया तब यह भाग के पर्वत पै जा चढ़ा, जब मैंने उस मे आग लगाई तब यह छलकर द्वारिका को चला गया।

याको काहू भेद न पायो। अब ह्यां करन उपद्रव आयो ॥
है यह छली महाछल करै। काहू पै नहिं जान्यो परै ॥

इससे अब ऐसा कुछ उपाय कीजिये जिससे हम सब की बात रहै। इतनी बात जरासंध ने कही तब रुक्म बोला कि वे क्या वस्तु हैं जिनके लिये तुम इतने भयभीत हो रहे हो ? विन्हें तो मैं भली भाँति जानता हूँ कि बन बन गाते नाचते बेनु बजाते धेनु चराते थे। गंवार बाल युद्ध विद्या की रीति क्या जानें, तुम किसी बात की चिन्ता अपने मन मे मत करो। हम सब यदुवंशियों समेत श्रीकृष्ण बलराम को क्षण भर मे मार हटावेंगे।

श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज ! उस दिन रुक्म तो जरासंध और शिशुपाल को समझाय बुझाय ढाढ़स बंधाय अपने घर आया और उन्होंने सात पांच कर रात गवांई। भोर होते ही इधर राजा शिशुपाल और जरासंध तो ब्याह का दिन जान बरात निकालने की धूमधाम मे लगे और उधर राजा भीष्मक के यहां भी मङ्गलचार होने लगे। इतने में रुक्मिणी जी ने उठते ही एक ब्राह्मण के हाथ श्रीकृष्णचन्द्र को कहला भेजा कि हे कृपानिधान ! आज ब्याह का दिन है, दो घडी दिन रहे, नगर के पूरब देवी का मंदिर है, तहां मैं पूजा करने जाऊँगी। मेरी लाज तुम्हारे जिसमे रहे सो करियेगा।

एक पहर दिन चढ़े सखी सहेली और कुटुम्ब की स्त्रियाँ आईं।

जिन्होंने आते ही पहले तो आंगन में गजमोतियों का चौक पुरवाय, कञ्चन की जड़ाऊ चौकी बिछवाय, तिसपर रुक्मिणी को विठाय सात सुहागिनों से तेल चढ़वाया। पीछे सुगन्ध उबटन लगाय नहवाय धुलाय उसे सोलह सिंगार करवाय वारह आभूषण पहराय, ऊपर से सारी चोली चढ़ाय बन्नी बनाय के विठाया। इतने में घड़ी चार एक दिन पिछला रह गया। उस काल में रुक्मिणी अपनी सब बाल सखी सहेलियों को साथ ले गाजे बाजे से देवी की पूजा करने को चलीं, तब राजा भीष्मक ने राजसेवक लोगों को रखवाली के लिये उसके साथ कर दिया।

यह समाचार पाकर कि राजकन्या नगर के बाहर देवी पूजने चली है, राजा शिशुपाल ने भी श्रीकृष्णचन्द्र के डर से अपने बड़े बड़े सामंत शूरवीर योद्धाओं को बुलाय के सब भाँति से ऊँच नीच समझाय के रुक्मिणी जी की चौकसी को भेज दिया। वे भी आकर अपने २ शस्त्र संभाल कर राजकन्या के संग हो लिये। उस बेरियाँ रुक्मिणी जी सब सिंगार किये सखी सहेलियों के झुण्ड के झुण्ड लिये अन्तरपटकी ओट में और काले २ राक्षसों के कोट में जाते समय ऐसी शोभायमान लगती थी कि जैसे श्यामघटा के बीच में तारामण्डल समेत चन्द्रमा। निदान कितनी एक बेर में चली २ देवी के मन्दिर पहुँचीं, वहाँ जाय हाथ पांव धोय आचमन कर शुद्ध होय पहले तो चन्दन अक्षत पुष्प धूप दीप नैवेद्य कर श्रद्धा समेत वेद की विधि से देवी की पूजा की। पीछे ब्राह्मणियों को इच्छाभोजन करवाय सुथरी तियल पहराय रोली की खौर काढ़ अच्छत लगाय उन्हें दक्षिणा दीं और उनसे असीस लीं।

आगे देवी की परिक्रमा दे वह चन्द्रमुखी, चंपकबरनी, मृगनयनी, पिकबयनी, गजगामिनी, सखियों को साथ ले, हरि के मिलने की चिन्ता किये ज्यों वहाँ से निश्चिन्त होकर चलने को हुई त्यों श्रीकृष्णचन्द्र जी अकेले रथ पर बैठे वहाँ पहुंचे जहाँ रुक्मिणी के साथी सब योधा अस्त्र शस्त्र से जकड़े खड़े थे। इतना कह श्रीशुकदेव जी बोले कि—

दोहा—पूजि गौरि जबहीं चली, एक कहति अकुलाय।
सुनि सुन्दरि आये हरी, देख ध्वजा फहराय॥

यह एक बात सखी ने प्रभु के रथ की खबर सुन, राजकन्या से कहा। यह सुन कर वह आनन्दकर फूली

समाती थी और सखी के हाथ पर हाथ दिये सुन्दर मोहिनीरूप किये, हरि के मिलने की आस किये, कुछ २ मुस्कराती हुई सब के बीच में मन्दगति से जाती थी कि जिस की शोभा कुछ बरनी नहीं जाती। आगे श्रीकृष्ण को देखते ही सब रखवाले भूल से खड़े हुये। तब प्राणपति को देखते ही उसने सकुचाय कर मिलने को ज्यों हाथ बढ़ाया त्यों प्रभु ने हाथ से उठाय रथ पर बैठाय लिया।

काँपत गाढ़ सकुच मन भारी। छाँड सबन हरि संग सिधारी।
ज्यों बैरागी छांडे गेह। कृष्ण चरण सों करै सनेह॥

हे महाराज! रुक्मिणी जी ने तो जप, तप, व्रत आदिक पुण्य किये का फल पाया, और पिछला दुःख सब गँवाया, वैरी अस्त्र शस्त्र लिये खड़े मुख देखते ही रह गये। प्रभु उन के बीच मे रुक्मिणी को ले कर ऐसे चले कि—

दोहा—ज्यों बहु झुण्डनि स्यार के, परे सिंह बिच आय।
अपनौ भक्षण लेई के, चले निडर घहराय॥

आगे से श्रीकृष्णचन्द्र के चलते ही बलराम जी पीछे से धौंसा दे सब सैन्यदल साथ ले जा मिले।

श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज! कितनी एक दूर जाय के श्रीकृष्णचन्द्र ने रुक्मिणी जी को सोच संकोचयुक्त देख कर कहा कि हे सुन्दरी! अब तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, मैं शंखध्वनि कर तुम्हारे मन का सब डर दूर करूँगा, और द्वारिका मे पहुँच वेद की विधि से वरूँगा। यह कह प्रभु ने उसे अपनी माला पहिराय बाईं ओर बैठाया। ज्यों शंखध्वनि करी त्यों शिशुपाल और जरासन्ध के साथी सब चौंक पड़े। और यह बात सारे नगर में फैल गई कि हरि रुक्मिणी को हर ले गये।

इस रुक्मिणी-हरण को अपने उन लोगों के मुख से सुन कर जो कि चौकसी को राजकन्या के संग गये थे, राजा शिशुपाल और जरासन्ध अति क्रोधकर, झिलम टोप पहन, पेटी बांध, सब शस्त्र लगाय, अपनी २ कटक ले, लड़ने के लिये श्रीकृष्ण के पीछे चढ़ दौड़े और उनके निकट के आयुध सँभाल कर ललकारा कि अरे! भागे क्यों जाते हो?

खड़े रहो। शस्त्र पकड़ के लड़ो, जो क्षत्री शूरवीर हैं, वे खेत में पीठ नहीं देते हैं। हे महाराज! इतनी बात के सुनते ही यादव फिर कर सन्मुख हुये और दोनों ओर से शस्त्र चलने लगे। उस काल रुक्मिणी जी अति भय मान के घूँघट की ओट किये आँसू भर २ लम्बी सासें लेती थीं और प्रीतम का मुख निरख २ मन ही मन विचार यह कहती थीं कि ये मेरे लिये इतना दुःख पाते हैं। अन्तर्यामी प्रभु रुक्मिणी के मन का भेद जान बोले कि सुन्दरि! तू क्यों डरती है? तेरे देखते ही देखते सब असुर दल को मार भूमि का भार उतारता हूं। तू अपने मन मे किसी बात की चिन्ता मत कर। इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि राजा! उस समय देवता अपने विमान मे बैठे आकाश से देखते क्या है कि—

दोहा—यादव असुरन सो लरत, होत महा संग्राम।
ठाढ़े देखत कृष्ण हैं, करत युद्ध बलराम॥

उस समय मारूबाजा बजाते हैं, कड़खैत कड़खा गाते हैं, चारण यश बखानते हैं, अश्वपति अश्वपति से, गजपति गजपति से, रथी रथी से, भिड रहे है। इधर उधर के शूरवीर मिल २ के हाथ मारते है और कायर खेत छोड़ कर अपना जी ले भागते है। घायल खड़े भूमते है, कबंध हाथ मे तलवार लिये चारों ओर घूमते हैं और लोथ पर लोथ गिरती हैं, तिनसे लोहू की नदी बह चली है, तिन मे जहाँ तहाँ हाथी जो मरे पड़े हैं सो टापू से जान पड़े है और सूंड़ें मगरसी प्रतीत होती हैं। उस समय महादेव भूत, प्रेत पिशाचों को संग लिये सिर चुन २ मुण्डमाल बनाय २ पहिनते हैं, और गिद्ध, शृगाल, कूकर, आपस मे लड २ लोथ खैंच २ लाते हैं और फाड़ २ के खाते हैं। कौवे घड़ों से आँखें निकाल ले जाते हैं। निदान देवताओं के देखते ही बलराम जी ने सब असुरदल को यों काट डाला जैसे किसान खेती काट डालते हैं। आगे जरासन्ध और शिशुपाल सब दल कटायके कई एक घायल को संग लिये भाग के एक ठौर मे जा खड़े भये। तहाँ शिशुपाल ने बहुत अछताय पछताय सिर डुला के जरासंध से कहा कि अब तो अपयश पायके और कुल मे कलंक लगाय के संसार मे जीना उचित नही है। इससे आप आज्ञा दें तो मै रण मे जाय के लड़ मरूं।

नातर हौं करिहौं बनवास। लेउँ योग छाडौं सब आस।
गई आज पत अब क्यों जीजै। राखि प्राण क्यों अपयश लीजै।

इतनी बात सुनकर जरासन्ध बोले कि हे महाराज! आप ज्ञानवान हैं और सब बात भी जानते हैं। मै तुम्हे क्या समझाऊँ! जो ज्ञानी पुरुष हैं सो हुई बात का सोच नहीं करते। भले बुरे का करता कोई और ही है। मनुष्य का कुछ वश नहीं है, यह परवश व पराधीन है। जैसे काठकी पुतली को नटुआ जब नचावता है तब नाचती है, ऐसे ही मनुष्य करता के वश है वह जो चाहता है सो करता है। इससे सुख दुख मे हर्ष शोक न कीजै, सब सपना सा जान के जीजै। मैं तेईस २ अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा-पुरी पर सत्रह बेर चढ गया और इसी कृष्ण ने सत्रह बार मेरा सब दल हना किन्तु मैंने कुछ सोच न किया। और अठारहवीं बार जब इस का दल मारा तबकुछ हर्ष भी न किया। यह भाग कर पहाड़ पर जा चढ़ा मैंने वहीं इसे फूँक दिया। न जानिये यह क्योंकर जिया। इसकी गति कुछ जानी नहीं जाती है। इतना कह फिर जरासन्ध बोला कि हे महाराज! अब उचित यही है कि इस समय को टाल दीजिये, क्योंकि कहा है कि जो प्राण बचेगा तो पीछे सब ही रहेगा। जैसा हमे हुआ कि सत्रह बार हार अठारहवीं बार जीते। इससे जिस मे अपनी कुशल होय सो कीजै और हठको तो छोड ही दीजै।

हे महाराज! जब जरासन्ध ने ऐसे समझाय के कहा तब उसे कुछ धीरज हुआ और जितने घायल योधा बचे थे तिन्हे साथ ले अछता पछता कर जरासंध के संग हो लिया। ये तो यहाँ से यों हार के चले और जहा शिशुपाल का घर था तहाँ की बात सुनो कि पुत्र का आगमन विचार शिशुपाल की माँ ज्यों मंगलाचार करने लगी त्यों सन्मुख छीक हुई और दाहिनीं आँख उसकी फड़कने लगी। यह अशकुन देख उसका माथा ठनका कि इसी बीच मे किसी ने आय के कहा कि तुम्हारे पुत्र की सब सेना कट गई और दुलहिन भी न मिली। अब वहाँ से भाग के अपना जीव लिये आता है। इतनी बात के सुनते ही शिशुपाल-महतारी अति चिन्ता कर हो रही।

आगे शिशुपाल और जरासन्ध का भागना सुन रुक्म अति क्रोध कर

अपनी सभा में आन बैठा और सब को सुनाय के कहने लगा कि कृष्ण मेरे हाथ से बच कर कहां जा सकता है ? अभी जाय उसे मार रुक्मिणी को ले आऊँ तो मेरा नाम रुक्म, नहीं तो कुण्डलपुर मे न आऊँगा। हे महाराज ! ऐसे पैज कर रुक्म एक अक्षौहिणी सेना दल साथ मे ले श्री कृष्णचन्द्र से लड़ने को चढ धाया। और उसने यादवों का दल जा घेरा। उस काल में उसने अपने सैनिक लोगों से कहा कि तुम तो यादवों को मारो और मैं आगे जाय के कृष्ण को जीता पकड लाता हूं। इतनी बात के सुनते ही उसके साथी तो यदुवंशियों से युद्ध करने लगे और वह रथ बढाय के श्रीकृष्णचन्द्र के निकट जाय के ललकार कर बोला कि अरे कपटी ! गँवार ! तू क्या जाने राज व्योहार, बालकपन मे जैसे तूने दूध दही की चोरी करी है तैसे यहाँ भी तूने आय नारी हरी है।

ब्रजवासी हम नहीं अहीर। ऐसे कहकर लीने तीर॥
विषके बुझे लिये उनबीन। खैंच धनुष शर छोड़े तीन॥

उन बाणों को आते देख श्रीकृष्णचन्द्र ने बीच ही में काट दिया। फिर रुक्म ने और बाण चलाये, प्रभु ने भी काट गिराये। अपना धनुष सँभाल कई एक बाण ऐसे मारे कि रथ के घोड़े समेत सारथी उड गया और धनुष उसके हाथ से कट के नीचे गिरा, पुनि वह अति झुँझलाय के फेर खाँडा उठाय रथ से कूद श्रीकृष्णचन्द्र की ओर यों झपटा कि जैसे बावला गीदड गज पर आवे, के ज्यों पतंग दीपक पर धावे, निदान जाते ही उसने एक हाथ पर एक गदा चलाई कि प्रभु ने झट उसे पकड़ के बाँध लिया और चाहा कि मारें इतने मे रुक्मिणी बोली कि :—

मारो मत भैया है मेरो। छाँड़ो नाथ तिहारो चेरो॥
मूरख अन्ध कहा यह जाने। लक्ष्मी कन्तहिं मानुष माने॥
तुम योगेश्वर आदि अनन्त। भक्त हेत प्रगटे भगवन्त॥
यह जड कहा तुम्हें पहचाने। दीनदयाल कृपाल बखाने॥

इतना कह फिर कहने लगी कि साधु जन जड़ और बालक का अपराध मन में नहीं लाते, जैसे सिंह स्वान के भूकने पर ध्यान नहीं करता, और जो तुम इसे मारोगे तो होगा मेरे पिता को सोग, यह करना

तुम्हे नहीं है लोग। जिस ठौर तुम्हारे चरण पड़ते हैं, तहाँ के सब प्राणी आनन्द में रहते हैं। यह बड़े अचरज की बात है कि तुम सा सगा रहते राजा भीष्मक का पुत्र दुःख पावे। हे महाराज! तुमने सम्बन्धी से भला हित किया जो पकड़ के बांधा और खंग हाथ मे ले मारने को उपस्थित हुए। पुनि अति व्याकुल हो थरथराय डबडबाय बिसूर २ पावों पड़ गोद पसार कहने लगीं कि :—

बन्धु भीख प्रभु मोको देउ। इतनों यश जगमे तुम लेउ ॥

इतनी बातके सुनते रुक्मिणी जी की ओर देखने से श्रीकृष्णचन्द्र जी का कोप शान्त हुआ तब उन्हों ने उसे तो न मारा, परन्तु सारथी को सैन से इशारा किया, उसने झट इसकी पगड़ी उतार, मुश्क चढ़ाय मूँछ दाढ़ी और सिर मूँड़ सात चोटी रख, रथ के पीछे बाँध लिया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज! रुक्म की तो श्रीकृष्ण जी ने यहाँ यह अवस्था की, और बलदेव जी वहाँ के सब के सब असुर दल कोमार भगाय कर भाई के मिलने को ऐसे चले कि जैसे श्वेत गज कमलदल मे कमलों को तोड़ खाय, बिखराय, अकुलाय के भागता होय। निदान कितनी एक बेर मे प्रभु के समीप जाय पहुंचे और रुक्म को बँधा देख श्रीकृष्ण जी से अति झुंझलाय बोले कि तुमने यह क्या काम किया जो साले को पकड़ के बांधे। तुम्हारी कुटेव जाती नहीं।

बाँध्यो याहि करी बुधि थोरी। यह तुम कृष्ण सगाई तोरी।
औ यदुकुल को लीक लगाई। अब हम सो को करहि सगाई।

जिस समय यह युद्ध करने को आपके सन्मुख आया तब तुमने इसे समझाय के उलटा क्यों न फेर दिया? हे महाराज! ऐसे कह बलराम जी ने रुक्म को तो खोल कर समुझाय बुझाय के अति शिष्टाचार कर बिदा किया। फिर हाथ जोर अदि बिनती कर बलराम सुखधाम रुक्मिणी जी से कहने लगे कि हे सुन्दरी! तुम्हारे भाई की जो यह दशा हुई, इसमें हमारी कुछ चूक नहीं है। यह उसके पूर्व जन्म के किये का फल है। और [illegible]ो का धर्म भी है, कि भूमि, धर्म, त्रिया के काज करते हैं युद्ध, दल

परस्पर साज । इस बात को तुम बिलग मत मानो मेरा कहा सच्चा ही जानो, हार जीत भी इसके साथ ही लगी है और यह संसार दुःख का समुद्र है यहाँ आये पीछे सुख कहाँ ? परन्तु मनुष्य माया के वश मे हो दुःख सुख, भला बुरा, हार जीत, संयोग आदि को मन ही से मान लेते हैं। पर इसमे हर्ष शोक जीव को नहीं होता, तुम भाई के विरूप होने की चिंता मत करो, क्योंकि ज्ञानी लोग जीव को अमर तथा देह का नाश कहते हैं। इस बचन के अनुसार देह की पत जाने से कुछ जीव की प्रतिष्ठा नहीं गई।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने कहा-ऐसे रुक्मिणी को समझाया तब

दो०—सुनि सुन्दरि मन समुझि के, कियो जेठ की लाज ॥
मैन माहि पियसों कहत, हाँकहु रथ ब्रजराज ॥
घूँघट ओट वदन को करै। मधुर वचन हरिसों उच्चरै ॥
सन्मुख ठाढ़े हैं बलदाऊ। अहो कन्त रथ बेग चलाऊ ॥

इतने वचन रुक्मिणी जी के मुख से निकलते ही इधर तो श्री कृष्णचन्द्र जी ने रथ द्वारिका की ओर हाँका और उधर रुक्म अपने साथी लोगों मे जाय अति चिन्ता कर कहने लगा कि मैं कुण्डलपुर से यह पैज करके आया था अभी जाय के कृष्ण बलराम को सब यदुवंशियों समेत मार, रुक्मणी को ले आऊँगा। सो मेरा प्रण पूरा न हुआ और उलटी अपनी पत खोई, अब जीता न रहूँगा। इस देश और गृहस्थाश्रम को छोड बैरागी हो कहीं जा मरूंगा।

जब रुक्म ने ऐसा कहा, तब उसके साथी लोगों मे से कोई बोला कि हे महाराज ! तुम महावीर और बड़े प्रतापी हो, किन्तु तुम्हारे हाथ से जो वे जीते बच गये तो विन के भले दिन थे। अपनी प्रारब्ध के बल से निकल गये। नहीं तो, आपके सन्मुख हो कोई शत्रु कब जीता बच सकता है। तुम सज्ञान हो ऐसी बात विचारते हो ? कभी हार होती है और कभी जीत, परन्तु शूरवीरों का धर्म है कि साहस नहीं छोडते। भला रिपु आज बच गया तो क्या, फिर मार लेंगे। हे महाराज ! जब विनों ने यों रुक्म को समझाया तब वह यह कहने लगा कि सुनो—

हारयो उनसों और पत गई। मेरे मन अति लज्जा भई ॥

जन्म नही कुण्डलपुर जाऊँ। वरन और ही गांव बसाऊँ॥
यों कह उन इक नगर बसायो। सुत दारा धन तहाँ मँगायो॥
ताकौ धरयो भोजकटु नाम। ऐसे रुक्म बसायो गाम॥

हे महाराज। उधर रुक्म तो राजा भीष्मक मे वैर कर वहाँ रहा और उधर श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जो चले २ द्वारिका के निकट आय पहुंचे।

उडी रेणु आकाश जु छाई। तवहीं पुरवासिन सुध पाई॥

दो—आवत हरि जाने जवहि, राख्यो नगर बनाय।
शोभा भई तिहुं लोक की, कही कौन पै जाय॥

उस काल मे घर २ मंगलाचार हो रहे थे। द्वार २ केले के खंभे गडे, कंचनकलस और सजल सपल्लव धरे, ध्वजा पताका फहराय रही, तोरण बन्दनवारे बन्धी हुई, हर बाट चौहाट मे चौमुख दिये वारे युवतियों के यूथ खड़े और राजा उग्रसेन भी सब यदुवंशियों समेत बाजे गाजे से अगाउ जाय रीति भाँति कर बलराम सुखधाम और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को नगर मे ले आये। उस समय के बनाव की छवि कुछ बरनी नहीं जाती है। क्या स्त्री पुरुष सब ही के मन मे आनन्द छाय रहा था। प्रभु के सोंही आय आप सब भेंट दे दे भेंटते थे और नारियाँ अपने अपने द्वारों बारों चौबारों कोठों पर से मंगल गान गाय आरती उतार फूल बरसाती थीं और श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जी यथा योग्य सबका मनुहार करते जाते थे। निदान इसी रीति से चले २ राज मन्दिर मे जा विराजे। आगे कई एक दिवस पीछे एक दिन श्री कृष्ण जी राज सभा मे गये, जहाँ राजा उग्रसेन सूरसेन बसुदेव आदि सब बड़े बड़े यदुवंशी बैठे थे और प्रणाम कर उन्होंने उनके आगे कहा कि हे महाराज! युद्ध जीति जो कोई सुन्दरी लाता है वह राजसी व्याह कहलाता है।

इतनी बात के सुनते ही सूरसेन जी ने पुरोहित बुलाय तिसे समझाय के कहा कि श्रीकृष्णचन्द्र के विवाह का दिन ठहरा दो। उसने झट पत्रा खोल भला महीना दिन वार नक्षत्र देख शुभ सूर्य चन्द्रमा विचार व्याह का दिन ठहरा दिया तब राजा उग्रसेन ने अपने मन्त्रियों को तो यह आज्ञा दी, कि तुम व्याह की सब सामग्री इकट्ठी करो और आप बैठ पत्र लिख कौरव आदि सब देश विदेश के राजाओं को ब्राह्मणों के हाथ पत्र

भिजवाये। हे महाराज! चिट्ठी पाते ही सब राजा प्रसन्न हो कर उठ धाये, तिन्हों के साथ ब्राह्मण, पण्डित, भाट, भिखारी हो लिये।

और ये समाचार पाकर राजा भीष्मक ने भी बहुत अस्त्र शस्त्र जड़ाऊ आभूषण और रथ हाथी घोड़े दास दासियों के डोले एक ब्राह्मण को कन्यादान का संकल्प मनही मे ले अति विनती कर द्वारिका को भेज दिया। उधर से तो देश देश के नरेश आये और उधर से राजा भीष्मक का पठाया सब सामान लिये वह ब्राह्मण भी आया। आगे ब्याह का दिन जब आया तो सब रीति भाँति कर बर कन्या को मडो के नीचे ले जा बैठाया और सब बडे बड़े मुख्य यदुवंशी भी आय बैठे। उस बिरियाँ—

पंडित तहाँ वेद उचारैं। रुक्मिणि संग हरि भांवर डारैं॥
ढोल दुन्दुभी भेर बजावैं। हरषहिं देव पुहुप बरसावैं॥
सिद्ध साधु चारण गन्धर्वा। अन्तरिक्ष भये देखैं सर्वा॥
चढे विमान घिरे सिर नावैं। देवबधू सब मंगल गावैं॥
हाथ गहो प्रभु भाँवर पारी। वाम अंग रुक्मिणि बैठारी॥
छोरी गांठ पटा फेर दियो। कुलदेवी को तबै पूजियो॥
छोरत कंकण हरि सुन्दरी। खेलत दूधा भाती करी॥
अति आनन्द रचो जगदीश। निरषि हरषि सब देहिं असीस॥
हरि रुक्मिणि-जोरी चिरजियो। जिनको चरित सुधारस पियो॥
दानौ दान विप्र जो आये। मागध बन्दी जनं पहिराये॥
जे नृप देश देश के आये। दीनी विदा सबै पहुंचाये॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज! जो जन हरि रुक्मिणी का चरित्र पढ़ै या सुनेगा और पढके सुमिरन करेगा सोभुक्ति मुक्ति यश पावेगा, पुनि जो फल अश्वमेधादि यज्ञ, गौ आदि दान, गङ्गा आदि स्नान, प्रयागादि तीर्थ के करने मे होता है, सोई फल हरि-कथा कहने सुनने मे मिलता है।

———

राजसूय-यज्ञ और दुर्योधन का मान-मर्दन

श्रीकृष्णाचन्द्र जी ने सब राजाओं से कहा कि तुम हस्तिनापुर मे राजा युधिष्ठिर के यहा राजसूय यज्ञ मे शीघ्र आवो। हे महाराज ! इतना वचन श्रीकृष्णाचन्द्र जी के मुख से निकलते ही सहदेव ने सब राजाओं के जाने का सामान जितना चाहिये, तितना बात की बात में लाकर उपस्थित किया। उन्हे ले और सब से बिदा होकर अपने देशको गये और श्रीकृष्ण जी भी सहदेव को साथ लेकर भीम व अर्जुन सहित यहा से चले। आनन्दमंगल से हस्तिनापुर मे आये। आगे प्रभु ने राजा युधिष्ठिर के पास जाकर जरासन्ध के मारने का समाचार और सब राजाओं के छुडाने का हाल ब्योरे समेत कह सुनाया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे महाराज ! श्रीकृष्णाचन्द्र आनन्दकन्द के हस्तिनापुर मे पहुँचते वे सब राजा भी अपनी २ सेना व भेंट सहित आन पहुँचे और राजा युधिष्ठिर को भेंट दे श्रीकृष्णाचन्द्र जी की आज्ञा ले हस्तिनापुर के चारों ओर जा उतरे और यज्ञ के महल मे आकर उपस्थित हुए।

श्रीशुकदेव जी बोले, हे महाराज। युधिष्ठिर ने जैसे यज्ञ किया और शिशुपाल मारा गया, सो सब कथा मै कहता हूँ, तुम चित्त देकर सुनो। बीस सहस्र आठ सौ राजाओं के आते ही चारों ओर जितने राजा थे क्या सूर्यवंशी और क्या चन्द्रवंशी सब हस्तिनापुर मे उपस्थित हुए। उस समय श्रीकृष्णाचन्द्र और युधिष्ठिर ने मिल कर सब राजाओं का सब भाँति से शिष्टाचार करके समाधान किया और हर एक को यज्ञ का एक एक काम सौंपा। आगे श्रीकृष्णाचन्द्र जी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि हे महाराज ! भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव सहित हम पाँचों भाई तो राजाओं को साथ लेकर ऊपर की टहल करें और आप ऋषि मुनि ब्राह्मणों को बुलाकर यज्ञ का आरम्भ कीजिये। हे महाराज ! जो जो वस्तु यज्ञ मे चाहिये, सो सो आज्ञा कीजिये। हे महाराज। इस बात के सुनते ही ऋषि .. ने ग्रन्थ देख कर यज्ञ की सब सामग्री एक पत्र पर लिख दी और

राजा ने भी वही वस्तु मँगवा कर उनके आगे धरवा दी। अनन्तर ऋषि, मुनि और ब्राह्मणों ने मिल कर यज्ञ की वेदी रची तथा चारों वेद के ऋषि, मुनि, ब्राह्मण वेदी के बीच मे आसन बिछाय कर जा बैठे और द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, शिशुपाल आदि जितने योद्धा और बड़े २ राजा थे वे भी आय बैठे। ब्राह्मण ने स्वस्तिवाचन करके गणेश पुजवाया, और कलस स्थापन किया। तब राजा ने भारद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, पराशर, व्यास, कश्यप आदि बड़े २ ऋषि मुनि ब्राह्मणों का वरण किया और उन्होंने वेदमन्त्र पढ़कर सब देवताओं का आवाहन किया और राजा से यज्ञ का संकल्प करवाया, होम धर्म आरम्भ किया। हे महाराज ! मन्त्र पढ़ कर ऋषि, मुनि, ब्राह्मण आहुति देने लगे। उस समय ब्राह्मण वेद पाठ करते थे और सब राजा होम की सामग्री ला ला कर देते थे और राजा युधिष्ठिर होम करते थे। इस प्रकार से निर्विघ्न यज्ञ पूर्ण हुआ, राजा ने पूर्णाहुति दी। उस काल मे सुर नर मुनि सब राजा को धन्य २ कहने लगे। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे महाराज ! यज्ञ से निश्चिन्त होकर राजा युधिष्ठर ने सहदेव को बुलाय के पूछा कि:—

पहिले पूजा काकी कीजै। अक्षत तिलक कौन को दीजै ॥
कौन बड़ो देवन को ईश। ताहि पूज हम नावैं शीश ॥

यह सुन कर सहदेव जी बोले कि महाराज ! सब देवों के देव हैं वासुदेव, कोई नहीं जानता इनका भेव। ये हैं ब्रह्मा रुद्र के ईश, इन्हीं को पहिले पूज नवाइये शीश। जैसे तरुवर की जड़ मे जल देने से सब देवता सन्तुष्ट होते हैं तैसे ही इनके पूजन से सब प्रसन्न होयँगे। क्योंकि येही जगत के कर्ता हैं और यही उपजाते और मारते हैं। इनकी लीला है अनन्त, कोई नहीं जानता इनके अन्त। येही प्रभु-अलख-अगोचर-अविनाशी। इन्हीं के चरण कमल को सदा सेवती कमला भई दा। । भक्तों के हेतु बार २ लेते हैं अवतार, तनु धर करते हैं लोक को व्यवहार।

बन्धु कहत घर बैठे आवैं। अपनी माया माहि भुलावै ॥
महा मोह हम प्रेम भुलाने। ईश्वर को भ्राता करि जाने ॥
इनते बड़ो न दीखत कोई। पूजा प्रथम इन्हीं की होई ॥

हे महाराज! इस बात के सुनते ही सब ऋषि, मुनि और राजा बोल उठे कि सहदेवजी ने सत्य कहा है। प्रथम पूजन योग्य हरि ही हैं। तब तो राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णचन्द्र जी को सिंहासन पर बैठा कर आठों पटरानियों समेत चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य करके पूजा की। पुनि देवताओं, ऋषियों, ब्राह्मणों और देवताओं की पूजा की। रङ्ग बिरङ्ग के जोड़ पहिनाय चन्दन केशर की खौर की, फूलों के हार पहिराय, सुगन्ध लगाय, यथा योग्य राजा ने सब की मनुहार की। श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज!

हरि पूजत सब को सुख भयो। शिशुपालहि को शिर धुनयो॥

कितनी एक बेर तक तो वह शिर झुकाये मनही मन कुछ सोच विचार करता रहा। निदान कालवश हो कर अति क्रोध कर के सिंहासन से उतर कर सभा के बीच में निःसंकोच भाव से निडर होकर बोला कि इस सभा मे धृतराष्ट्र, दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य आदि सब बड़े २ ज्ञानी व मानी हैं, परन्तु इस समय सब की गति मति मारी गई है। क्योंकि बड़े २ मुनीश बैठे रहे और नन्दगोप के सुत की पूजा भई और कोई कुछ न बोला। जिसने ब्रज मे जन्म लेकर ग्वालों की जूठी छाछ खाई, तिसकी इस सभा मे प्रभुताई बडाई।

ताहि बड़ो सब कहत अचेत। सुरपति को बलि कागहि देत॥

जिसने गोपी ग्वालों से स्नेह किया, इस सभा मे तिसही को सब से बडा साधू बनाय दिया। जिसने दूध, दही, माखन घर २ चुराय खाया, उसी का यहाँ हुआ सन्मान। जिसने सब को छल से मारा, सब ने एक मता कर के उसी को पहले तिलक दिया, ब्रज मे से इन्द्र की पूजा उस ने उठाई और पर्वत की पूजा उत्तम ठहराई। पुनि पूजा की सब सामग्री गिरि के निकट लिवाय ले जा कर ईश्वर को मिस करके आप ही खाई तौ भी उसे जरा लाज न आई। जिस के जाति-पाति और माता पिता व कुल धर्म का नहीं ठिकाना, उसी को अलख अविनाशी करके सब ने माना। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि म-
ज! इस भाँति काल के वश होकर राजा शिशुपाल अनेक २ बुरे

बातें श्रीकृष्णचन्द्र जी को कहता था और श्रीकृष्णचन्द्र जी सभा के बीच मे सिंहासन पर बैठ सुन २ कर एक २ बात पर एक २ लकीर खैंचते थे। इस बीच मे भीष्म, कर्ण, द्रोण और बडे जो राजा थे सो हरि-निन्दा सुन के अति क्रोध कर के बोले अरे मूर्ख ! तू सभा मे बैठ कर हमारे सम्मुख प्रभु की निन्दा करता है। रे चाण्डाल ! चुप रह, नही तो अभी पछाड कर मार डालते है। हे महाराज ! यह कह कर और शस्त्र ले कर सब राजा शिशुपाल को मारने को उठ धाये। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द-कन्द ने सब को रोक कर कहा कि तुम लोग इस पर शस्त्र प्रहार मत करो। खडे २ देखो, यह आप से आप ही मारा जाता है, सौ से बढती न सहूंगा, देखो मैं रेखा काढता हूं। हे महाराज ! इतनी बात के सुनते ही सबने हाथ जोड कर श्रीकृष्णचन्द्र से पूछा कि हे कृपानिधान ! इसका क्या भेद है ? जो आप इस के सौ अपराध क्षमा करियेगा, सो कृपाकरके हमे समझाइये, जो हमारे मन का सन्देह जाय। प्रभु बोले जिस समय यह जन्मा था तिस समय इस के तीन नेत्र और चार भुजायें थीं। यह समाचार पा कर इस के पिता राजा दमघोष ने ज्योतिषियों और बडे २ पण्डितों को बुला कर पूछा कि यह लड़का कैसा है ? इसका विचार कर के मुझे उत्तर दो। राजा की बात सुनते ही पण्डित और ज्योतिषियों ने शास्त्र को विचार के कहा कि महाराज ! यह लडका बड़ा बली और प्रतापी रहेगा, और एक यह भी हमारे विचार मे है जिस के मिलने से इस की एक आख और दो बांह गिर पडेंगी, यह उसी के हाथ मारा जायगा। इतना सुन कर इस की माँ महादेवी जो कि शूरसेन की बेटी वसुदेव की बहिन व हमारी फूफी थी अति उदास भई और आठों पहर पुत्र ही की चिन्ता मे रहने लगी। कितने एक दिन पीछे एक समय पुत्र को लिये पिता के घर मथुरा मे आई और इसे सबसे मिलाया। जब यह मुझसे मिला, तब इस की एक आँख और दोनों बाह गिर पडी। जब फूफी ने मुझे वचन-बद्ध करके कहा कि इस की मौत तुम्हारे हाथ मे है, किन्तु तुम इसे मत मारियो। मैं यह भीख तुमसे मागती हूं। तब मैंने कहा कि अच्छा, सौ अपराध हम इनके न गिनेंगे, इनके उपरान्त अपराध करेगा तो हनेंगे। हम से यह वचन ले

फूफी सब से विदा हो, इतना कह कर पुत्र सहित अपने घर गई कि यह सौ अपराध ही क्यों करेगा, जो कृष्ण के हाथ मरेगा। हे महाराज! इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्णजी ने सब राजाओं को उन लकीरों को गिना के जो एक २ अपराध पर खैंची थी मन का भ्रम मिटाया। जब लकीरों को गिना तो सौ से बढ़ती हुई तभी प्रभु ने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी और उसने झट शिशुपाल का शिर काट डाला। उसके धड़ से ज्योति निकली, सो एक बार तो आकाश को धाई, फिर आकर सब के देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र के मुख मे समाई। यह चरित्र देख, सुर, नर, मुनि जय-जयकार करने और पुष्प बर्षाने लगे। उस काम मे श्री मुरारि भक्तहि-तकारी ने उसे तीसरी मुक्ति दी और उसकी क्रिया की। इतनी कथा सुन, राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूछा कि हे महाराज! तीसरी मुक्ति प्रभु ने किस भाँति दी, सो मुझे समझाय के कहिये। श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज एक बार यह हिरण्यकशिप हुआ तब प्रभु ने नृसिंह अवतार ले तारा। दूसरी बेर रावण भया, तो हरि ने राम अवतार ले इसका उद्धार किया। अब तीसरी बारियां है, इसी मे तीसरी मुक्ति भई। इतना सुन कर राजा ने मुनि से कहा कि हे महाराज! अब आगे कथा कहिये! श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज यज्ञ के हो चुकते ही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को स्त्री सहित बागे पहिराए व ब्राह्मणों को अगणित दान दिया! यज्ञ मे देने का काम राजा दुर्योधन का था सो द्वेष करके एक की ठौर अनेक दिये इस मे उसको यश हुआ। तो भी वह प्रसन्न न हुआ। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे महाराज! यज्ञ के पूर्ण होते ही श्रीकृष्णजी राजा युधिष्ठिर से विदा हो सब सेना ले, कुटुम्ब सहित हस्तिनापुर से चले २ द्वारिकापुरी मे पधारे। प्रभु के पहुँचते ही घर घर मङ्गलाचार होने लगा और सारे नगर मे आनन्द हो गया।

राजा परीक्षित बोले कि हे महाराज! राजसूय होने से सब कोई प्रसन्न हुए, एक दुर्योधन अप्रसन्न हुआ, इस का कारण क्या है? सो तुम मुझसे समझाय के कहो जो मेरे मन का भ्रम जाय। श्रीशुकदेवजी बोले कि [illegible]ज! तुम्हारे पितामह बड़े ज्ञानी थे। उन्होंने यज्ञ मे जिसे जैसा

देखा, तिसे तैसा काम दिया। भीम को भोजन करवाने का अधिकार दिया। पूजा पर सहदेव को रक्खा। धन लाने को नकुल रहे। सेवा करने पर अर्जुन ठहरे। श्रीकृष्ण जी ने पांव धोने और जूठी पत्तल उठाने का काम लिया। दुर्योधन को धन बाँटने का काम दिया और सब जितने राजा थे, तिन्होंने एक एक काम बाँट लिया। हे महाराज! सब तो निष्कपट यज्ञ की टहल करते थे, परन्तु एक दुर्योधन ही कपट सहित काम करता था, इससे वह एक की ठौर अनेक उठाता था। उसने निज मन में यह बात ठान के ऐसा काम किया कि इनका भण्डार टूटे और अप्रतिष्ठा हो, परन्तु भगवान की कृपा से अप्रतिष्ठा न होकर यश होता था। यह भी नहीं जानता था कि मेरे हाथ मे चक्र है। एक रुपया दूँगा तो चार इकट्ठे होंगे। इतनी कथा कह शुकदेव जी बोले कि हे महाराज! अब आगे की कथा सुनिये। श्रीकृष्णचन्द्र जी के पधारते ही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को खिलाय, पिलाय, वस्त्र आभूषण पहराय, अति शिष्टाचार करके विदा किया, और वे दल साज २ अपने देश को सिधारे। आगे राजा युधिष्टर पाण्डव और कौरवों को साथ ले, गङ्गा, स्नान को बाजे गाजे से गये। तीर पर जाय के दण्डवत कर रज लगाय, आचमन कर, स्त्री सहित नीर में बैठे। उनके साथ सब ने स्नान किया। पुनि न्हाय-धोय, सन्ध्या-पूजा से निश्चिन्त होय, वस्त्र आभूषण पहिन, सब को साथ लिये राजा युधिष्टर वहाँ आते भये जहाँ कि मय दैत्य ने अति सुन्दर सुवर्ण के रत्नजटित मंदिर बनाये थे। हे महाराज! वहाँ जाकर राजा युधिष्टर सिंहासन पर विराजे। उस काल में गन्धर्व गुण गाते थे, उस समय राजा युधिष्ठिर की सभा इंद्र की सभा सी हो रही थी। इसी बीच मे राजा दुर्योधन के आने का समाचार आया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे महाराज! वहाँ मयने चौक के बीच में ऐसा काम किया कि, जो कोई न जानता था तिसे थल मे जलका भ्रम होता था और जल में थल का। हे महाराज! ज्यों दुर्योधन मंदिर मे बैठा त्यों उसे थल देखकर जल का भ्रम भया। उसने वस्त्र समेट के उठा लिये पुनि आगे बढ़ा तो थल देखकर धोखा हुआ। ज्यों पाव

बढ़ाया कि त्यों उसके कपड़े भीग गये। यह चरित्र देखकर सब सभा के लोग खिलखिला उठे। परन्तु राजा दुर्योधन अति लज्जित हो, महा क्रोध करके उलटा फिर गया और सभा में बैठ कर कर कहने लगा कि कृष्ण का बल पाकर युधिष्ठिर को बड़ा अभिमान हुआ है। राजसभा मे बैठ कर मेरी हँसी की है। इसका पलटा मै लूँ और उसका गर्व तोड़ूं तो मेरा नाम दुर्योधन, नहीं तो नहीं।

(प्रेम सागर से)

---

(११)

सुदामा-मिलन

श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज! अब मैं सुदामा की कथा कहता हूँ कि कैसे वह प्रभु के पास गया और उसका दरिद्र कटा, सो तुम मन देकर सुनो! दक्षिण दिशा की ओर है द्राविड़ देश, तहाँ विप्र और वणिक बसते थे नरेश! जिसके राज्य मे घर २ भजन, स्मरण और हरि का ध्यान होता था, पुनि सब करते थे—तप,जज्ञ, धर्म, दान और साधु, सन्त, गौ, ब्राह्मण का सेवा-सन्मान।

ऐसे बसै सबै तिहि ठौर। हरि बिन कछू न जानै और॥

तिसी देश मे सुदामा नामक एक ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्र का गुरु भाई अति दीन, तनछीण और महादरिद्र रहता था। ऐसा था कि जिसके घर पर ग्रास तक खाने को कुछ न रहता था। एक दिन सुदामा की स्त्री दरिद्रता से अति घबराय महा दुःख पाय, पति के निकट जाय भय खाय डरती काँपती बोली कि हे महाराज! अब इस दरिद्र के हाथ से महादुःख पाते हैं। जो आप इसे खोया चाहिये, तो मै एक उपाय बताऊँ। ब्राह्मण बोला कि उपाय क्या है तुम कहो! तब स्त्री बोली कि तुम्हारे परम मित्र, त्रिलोकीनाथ द्वारकावासी, श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द, हैं। जो उनके जाओ तो यह कष्ट जाय। क्योंकि वे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के हैं। हे महाराज! जब ब्राह्मणी ने ऐसे समझाय कर कहा, तब

सुदामा बोला कि प्रिये ! विना दिये श्रीकृष्णचन्द्र भी किसी को कभी कुछ नहीं देते। मै भलीभाँति से जानता हूँ कि जन्म भर मैंने किसी को कभी कुछ नहीं दिया, बिना दिये कहाँ से पाऊँगा । हाँ, तेरे कहे से जाऊँगा तो कृष्णजी के दर्शन कर पाऊँगा । इस बात के सुनते ही ब्राह्मणी ने एक अति पुराने धौले वस्त्र मे थोड़े मे चावल बाँध के प्रभु के भेंट के लिये ला दिये और डोरी-लोटा, लाठी लाकर आगे धरी । तब तो सुदामा डोरी लोटा काँधे पर डाल, चावल की पोटली काँख मे दबाय, लाठी हाथ मे ले, गणेश को मनाय, श्रीकृष्ण जी का ध्यान कर, द्वारिकापुरी को पधारे। हे महाराज ! बाट मे चलते २ सुदामा मन ही मन कहने लगा कि भला धन तो मेरे प्रारब्ध मे नहीं है। परन्तु द्वारिका जाने से श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द का दर्शन तो पाऊँगा । इसी भाँति मे सोच-विचार करता २ सुदामा तीन पहर के बीच मे द्वारिकापुरी मे पहुँचा तो क्या देखता है कि नगर के चारों ओर समुद्र है और बीच में पुरी कैसी है किसके चहुँओर बन, उपवन सुन्दर फल फूल से सुहावने लग रहे हैं। तड़ाग वापी इन्दार पर रहटपरोहे चल रहे हैं, ठौर ठौर पर गौओं के यूथ के यूथ चर रहे हैं। तिनके साथ ग्वाल बाल न्यारे ही कुतूहल करते हैं। इतनी कथा कह शुकदेव जी बोले कि हे महाराज। सुदामा वन उपवन की शोभा निरख पुरी के भीतर जाय के देखें तो कञ्चन के मणिमय मंदिर म्हासुन्दर जगमगाय रहे हैं । ठांव ठाव अथाइयों में यदुवंश इन्द्र की सी सभा किये बैठे हैं । हटा बाट चौहाटों में नाना प्रकार वस्तु बिक रही हैं। घर घर जिधर तिधर गान दान हरिभजन और प्रभु का यश हो रहा है और सारे नगर निवासी महाआनन्द मे हैं। हे महाराज ! यह चरित्र देखता और श्रीकृष्णचन्द्र का मंदिर पूछता सुदामा सिंह पौर पर जा खड़ा हुआ। इसने किसी से डरते २ पूछा कि श्रीकृष्णचन्द्र जी कहाँ विराजते हैं व उसने कहा कि देवता ! आप मंदिर के भीतर जाओ, सनमुख श्रीकृष्णचन्द्र जी रत्न-सिंहासन पर बैठे हैं। हे महाराज ! इतना वचन सुन कर सुदामा जी भीतर गये, तो इन्हे देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र जी सिंहासन से उतर आगे बढ़ के भेंट धर कर अति प्यार से हाथ पकड कर इन्हे ले आये ।

पुनि सिंहासन पर बैठाय, पांव धोय, चरणामृत लिया। आगे चन्दन चरच, अक्षत लगाय, पुष्प चढ़ाय, धूप दीप कर के प्रभु ने सुदामा की पूजा की।

इतनी करके जोरे हाथ। कुशल क्षेम पूंछत यदुनाथ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा से कहा कि हे महाराज! यह चरित्र देख श्रीरुक्मिणी जी समेत आठों पटरानियाँ और सोलह सहस्र एक सौ रानियाँ और सब यदुवंशी, जो उस समय वहां थे, मनही मन यह कहने लगे कि इस दरिद्री, दुर्बल, मलीन, वस्त्रहीन ब्राह्मण ने ऐसा क्या अगले जन्म में पुण्य किया था जो त्रिलोकीनाथ ने इसे इतना माना। हे महाराज! अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र ने उस काल में सब के मन का भाव समझ के उनका सन्देह मिटाने को सुदामा से गुरु के घर की बातें करने लगे। भाई! तुम्हें वह सुधि है? जो एक दिन गुरुपत्नी ने हमें व तुम्हें इंधन लेने भेजा था और जब वन से ईंधन की गठरियां बांध शिर पर धरके घर को चले। तब आँधी और मेह आया और मूशलधार पानी वर्षने लगा, जल-थल चारों ओर भर गया, हमने तुमने भीग कर महा दुःख पाया। जाड़ा खायके रात भर एक वृक्ष के नीचे रहे। भोर ही गुरुदेव वन में ढूंढ़ने आये और अति करुणा करके गुरुजी आशीष देकर हमें और तुम्हें अपने साथ घर लिवाय आये। इतना कह पुनि श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले कि हे भाई! जब तुम गुरुदेव के यहां से बिछुड़े, तब से हमने तुम्हारा समाचार न पाया था कि कहां थे। अब आय दर्श दिखाय तुमने हमें महा सुख दिया। तब सुदामा बोला कि हे कृपासिन्धु! स्वामी! अन्तर्यामी! तुम सब जानते हो, कोई बात संसार में ऐसी नहीं है जो तुम से छिपी हो।

श्रीशुकदेव मुनिजी बोले कि महाराज! अन्तर्यामी श्रीकृष्ण जी सुदामा की बात सुन और उसके आने का मनोरथ समझ हँस करके कहा कि हे भाई! भाभी ने हमारे लिये क्या भेंट भेजी है? सो देते क्यों ~? कांख में किस लिये दबाय रहे हो? हे महाराज! यह वचन सुन तो सकुचाय व सिर झुकाय के चुप रहा और प्रभु ने झट चावल

की पोटली उसकी काँख से निकाल ली। पुनि खोलकर उसमे से अति रुचि करके दो मुट्ठी चावल खाया और ज्यों तीसरी मुट्ठी भरी त्यों श्रीरुक्मिणी जी ने हरि का हाथ पकड़ लिया और कहा कि हे महाराज! आपने दो लोक तो इसे दिये, अब अपने रहने का भी कोई ठौर रक्खोगे, कि नहीं? यह तो ब्राह्मण कुलीन अति वैरागी और महात्यागी सा दृष्टि आता है। क्योंकि इसे विभव पाने से कुछ हर्ष, न जाने का शोक है। इतनी बात रुक्मिणी जी के मुख से निकलते ही कृष्णचन्द्र ने कहा कि हे प्रिये! यह मेरा परम मित्र है। इसके गुण मैं कहां तक बखानूँ। यह सर्वदा मेरे स्नेह मे मग्न रहता है और उसके आगे संसार के सुख को तृणवत समझता है। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! ऐसी अनेक प्रकार की बातें करके प्रभु रुक्मिणी जी को समझा कर सुदामा को मन्दिर मे लिवाय ले गये। आगे षटरस भोजन करवाय पान खिलाय हरि ने सुदामा को फेन सी सेज पर ले जाकर बैठाया। वह पथ का हारा थका तो था ही, सेज पर जाय सुख पाय सो गया। प्रभु ने उस समय विश्वकर्मा को बुलाय के कहा कि तुम अभी जा कर सुदामा का मन्दिर अति सुन्दर कञ्चन नवरत्न का बना कर तिन मे अष्ट सिद्धि धर आओ, इसे किसी बात की कांक्षा न रहे। इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही विश्वकर्मा वहाँ जाकर बात की बात मे भवन बनाय आया और हरि से कह कर अपने स्थान को गया। भोर होते ही सुदामा उठ, स्नान-ध्यान भजन-पूजा से निश्चिन्त हो, प्रभु के पास विदा होने को गया, उस समय श्रीकृष्णचन्द्र जी मुख से तो कुछ न बोले, परन्तु प्रेम में मग्न हो आँख डबडबाय शिथिल हो देखते रहे। सुदामा वहाँ से विदा हो प्रणाम करके अपने घर को चला और पथ मे जाकर मनही मन में विचार करने लगा कि, भला भया जो मैंने प्रभु से कुछ न माँगा। उनसे कुछ माँगता, तो वे देते तो सही, परन्तु मुझे लोभी व लालची समझते। कुछ चिन्ता नहीं ब्राह्मणी को मैं समझाय लूँगा। श्रीकृष्णचन्द्र जी ने मेरा अति मान सन्मान किया और मुझे निर्लोभी जाना यही मुझे लाख है। हे महाराज! ऐसा सोच विचार करता सुदामा अपने ग्राम के निकट आया तो क्या देखता है कि न वह ठाँव है. न वह

टूटी मड़ैया, वहाँ तो एक इन्द्रपुरी सी राजधानी बस रही है। देखने ही सुदामा अति दुखिया हो कहने लगा कि नाथ ! तू ने यह क्या किया ? एक दुख तो था ही दूसरा दुख और दिया। यहाँ से मेरी झोंपड़ी क्या हुई ? और ब्राह्मणी कहाँ गई ? किससे पूछूँ और किधर ढूंढ़ूं ? इतना कह द्वार पर जाकर सुदामा ने द्वारपाल से पूछा कि यह अति सुन्दर मन्दिर किसका है। द्वारपाल ने कहा श्रीकृष्णचन्द्र जी के मित्र सुदामा का है। बात सुनकर सुदामा ज्यों कुछ कहने को हुआ कि त्यों भीतर से उसकी ब्राह्मणी ने देखा, देखते ही अच्छे वस्त्र व आभूषण पहिने तथा नख सिख के शृङ्गार किये व पान खाये सुगन्ध लगाये सखियों को साथ लिये पति के निकट आई।

पॉयन पर पाटम्बर डारे। हाथ जोड ये वचन उचारे ॥
ठाढ़े क्यों मन्दिर पगु धारो। मनसों शोच करो तुम न्यारो ॥
तुम पीछे विश्वकर्मा आये। तिन मन्दिर पलझॉक बनाये ॥

हे महाराज ! इतनो बात ब्राह्मणी के मुख से सुनकर सुदामा जी मंदिर मे गये और विभव देख के महा उदास भये। तब ब्राह्मणी बोली कि हे स्वामी ! धन पाकर लोग प्रसन्न होते हैं, किंतु तुम उदास हुए इस का कारण क्या है ? सो कृपा करके कहिये जो मेरे मनका सन्देह जाय। सुदामा बोले कि हे प्रिये ! यह माया वडी ठगनी है, इसने सारे संसार को को ठगा है और ठगती है, ठगेगी। सो प्रभु ने मुझे दी।। और प्रेम की प्रतीत न की, मैंने उनसे कब माँगी थी जो उन्होंने मुझे दी। इसीसे मेरा चित्त उदास है। ब्राह्मणी बोली कि हे स्वामी तुमने तो श्रीकृष्णचन्द्र जी से कुछ भी न मॉगा था, परन्तु वे अन्तर्यामी घट २ की जानते है अतः मेरे मन की वासना थी सो प्रभु ने पूरी की, तुम अपने मन मे और कुछ मत समझो। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा-हे महाराज ! इस प्रसंग को जो सुने व सुनावेगा, सो जन जगत मे आकर दुःख कभी न पावेगा और अन्तकाल मे वैकुण्ठधाम को जावेगा।

(प्रेम सागर से)

सैयद इंशा अल्ला खाँ

रानी केतकी की कहानी

किसी देस मे किसी राजा के घर एक बेटा था। उसे उसके माँ बाप और सब घर के लोग कुंवर उदैभान करके पुकारते थे । सचमुच उसके जोबन की जोत मे सूरज सी एक सोत आ मिली थी। उसका अच्छापन और भला लगना कुछ ऐसा न था जो किसी के लिखने और कहने मे आ सके, पन्द्रह बरस भर के उसने सोलहवें मे पाँव रक्खा था। कुछ यों ही सी उसकी मसे भीगती चली थी। अकड तकड उसमे बहुत सारी थी। किसी को कुछ न समझता था पर किसी बात के सोच का घर घाट न पाया था और चाह की नदी का पाट उसने देखा न था। एक दिन हरियाली देखने को अपने घोडे पर चढ़ के उसे अठखेल और अल्हड़पन के साथ देखता भालता चला जाता था। इतने मे जो एक हिरनी उसके सामने आई तो उसका जी लोट पोट हुआ। उस हिरनी के पीछे सबको छोड छाड कर घोडा फेंका। भला कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब सूरज छिप गया और हिरनी आँखो से ओझल हुई तब तो कुँवर उदैभान भूखा प्यासा उनींदा जंभाइयाँ और अँगडाइयाँ लेता हक्का बक्का हो के ठहरा लगा ढूँढने, इतने मे अमरइयाँ ध्यान चढ़ी, उधर चल निकला तो क्या देखता है जो चालीस पचास लड़कियाँ झूला डाले पड़ी झूल रही और सावन गातियाँ हैं। ज्यों ही उन्होंने उसको देखा–तू कौन, ? तू कौन ? की चिंघाड सी पड़ गई ।

दोहरा

कोई कहती थी यह उचक्का है ।
कोई कहती थी एक पक्का है ॥

वही झूलने वाली लाल जोडा पहने हुए जिनको सब रानी केतकी कहती थीं बोली 'इस लग चलने को भला क्या कहते हैं। हक न धक जो इस झट मे टपक पडे। यह न जाना कि यहाँ लडकियाँ अपने झूल रही हैं,

अजी तुम जो इस रूप के साथ बेधड़क चले आये हो। ठण्डे ठण्डे चले जाओ'। तब कुँवर ने मसोस के मलोला खा के कहा 'इतनी रुखाइयाँ न कीजिये मैं सारे दिन का थका हुआ एक पेड़ की छाँह मे ओस का बचाव करके पड़ रहूँगा। बड़े तड़के धुन्धलके मे उठ कर जिधर को मुंह पड़ेगा चला जाऊँगा। कुछ किसी का लेता देता नही। एक हिरनी के पीछे सब लोगों को छोड़-छाड़ कर घोड़ा फेंका था—कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब तलक उजाला रहा उसी के ध्यान मे था। जब अँधेरा छा गया और जी बहुत घबरा गया, इन अमराइयों का आसरा ढूँढ कर यहाँ चला आया हूं! कुछ रोक टोक तो इतनी न थी जो माथा ठनक जाता और रुक रहता। सर उठाए हाँपता हुआ चला आया।'

यह बात सुन कर वह जो लाल जोड़े वाली सब की सिरधरी थी उसने कहा इनको कह दो। जहाँ जी चाहे अपने पड़ रहे और जो कुछ खाने पीने को माँगे सो इन्हें पहुँचा दो। घर आए को आज तक किसी ने मार नहीं डाला। इनके मुँह का डौल, गाल तमतमाए और होंठ फडफडाए और घोड़े का हाँपना, और जी का काँपना और ठण्डी साँसें भरना और निढ़ाल गिरे पड़ना इनको सच्चा करता है। बात बनाई हुई और सचौटी की कोई छिपती नहीं, पर हमारे और इनके बीच कुछ ओट कपड़े लत्ते की करदो।' इतना आसरा पाके सबसे परे जो कोने मे पांच सात पौदे थे उनकी छाव मे कुँवर उदैभान ने अपना बिछौना किया और कुछ सिरहाने धर कर चाहता था कि सो रहे पर नींद कोई चाहत कि लगावट मे आती थी? पड़ा पड़ा अपने जी से बातें कर रहा था। जब रात सांय सांय बोलने लगी और साथ वालियां सब सो रहीं। रानी केतकी ने अपनी सहेली मदनबान को जगा कर यों कहा। तू मेरे साथ चल, पर तेरे पाओं पड़ती हूं कोई सुनने न पाए। अरी यह मेरा जोड़ा मेरे और उसके बनाने वाले ने मिला दिया। मैं इसी जी मे इन अमरइयों मे आई थी। रानी केतकी मदनबान हाथ पकड़े हुए वहाँ आन पहुँची ही, जहां कुँवर उदैभान लेटे हुए कुछ सोच मे बड़बड़ा रहे थे। मदनबान आगे बढ़ के कहने लगी 'तुम्हे

अकेला जान कर रानी जी आप आई है। कुंवर उदैभान यह सुन कर उठ बैठे। कुंवर और रानी दोनों चुपचाप बैठे पर मदनवान दोनों को गुदगुदा रही थी। होते होते रानी का यह पता खुला कि राजा जगत परकास की बेटी हैं और उनकी मां रानी कामलता कहलाती हैं। उनको उनके मां बाप ने कह दिया है एक महीने पीछे अमरईयों मे जाकर झूल आया करो। आज वही दिन था सो तुम से मुठभेड़ हो गयी। बहुत महाराजों के कुंवरों से बातें आईं। पर किसी पर इनका ध्यान न चढ़ा। तुम्हारे धनभाग जो तुम्हारे पास सबसे छुप के मैं जो उनके लड़कपन की गोइयां हूं मुझे अपने साथ लेके आई अब है। अब तुम अपनी बीती कहानी कहो तुम किस देश के कौन हो।' उन्होंने कहा 'मेरा बाप राजा सूरजभान और मा रानी लछमीवास हैं। आपस मे जो गठ जोड़ हो जाय तो कुछ अनोखी अचरज और अचम्भे की बात नही। यों ही आगे से होता चला आया है। जैसा मुंह वैसा थप्पड़, जोड़ तोड़ टटोल लेते हैं। दोनों महाराजों को चितचाही बात अच्छी लगेगी पर हम तुम दोनों के जी का गठजोड़ा चाहिए!' इसी मे मदनवान बोल उठी 'सो तो हुआ, अपनी अपनी अंगूठी हेरफेर कर लो और आपस मे लिखौती भी लिख दो फिर कुछ हिचिर मिचिर न रहे।' कुंवर उदैभान ने अपनी अंगूठी रानी केतकी को पहना दी, और रानी ने भी अपनी अंगूठी कुंवर की उंगली मे डाल दी। इतने में मदनवान बोली 'जो सच पूछो तो इतनी भी बहुत हुई, मेरे सर चोट है। इतना बढ़ चलना अच्छा नहीं, अब उठ चलो।' पिछले पहर से रानी तो अपनी सहेलियों को लेके जिधर से आई थी उधर को चली गई और कुंवर उदैभान अपने घोड़े को पीठ लगा कर अपने लोगों से मिलने अपने घर पहुंचे।

पर कुंवर जी का रूप क्या कहूँ कुछ कहने मे नहीं आता न खाना, न पीना, न पग चलना, न किसी से कुछ कहना, सुनना, जिस ध्यान मे थे उसी में गुथे रहना और हर घडी कुछ सोचकर सिर धुनना। होते होते लोगों में इस बात की चरचा फैल गई। किसी किसी ने महाराज और महारानी से कहा, 'वह कुंवर उदैभान जिस से तुम्हारे घर का उजाला है अब इन दिनों मे कुछ बुरे तेवर और बेडौल आंखें दिखाई देती हैं। घर

से बाहर पांव नहीं धरता। घरवालियां किसी डौल से बहलातियां हैं तो और भी कुछ नहीं करता, और बहुत किसी ने छेड़ा तो छपरखट पर जाके अपना मुंह लपेट के आठ आठ आंसू पडा रोता है।' यह सुनते ही कुंवर उदैभान के मां बाप दोनों दौड़ आए, गले लगाया, मुंह चूम पॉव पर बेटे के गिर पड़े, हाथ जोड़ और कहा ' जो अपने जी की बात है सो कहते क्यों नहीं क्या दुखड़ा है, जो पड़े पड़े कराहते हो। राजपाट जिसको चाहो दे डालो, कहो तो तुम क्या चाहते हो, तुम्हारा जी क्यों नहीं लगता ? भला वह क्या है जो हो नहीं सकता, मुंह से बोलो जी खोलो। जो कुछ कहने से सोच करते हो अभी लिख भेजो, जो कुछ लिखोगे ज्यों के त्यों करने मे आयेगी। जो तुम कहो कुँए मे गिर पड़ो तो हम दोनों अभी गिर पडते हैं, कहो सिर काट डालो तो सिर अपने अभी काट डालते हैं।' कुँवर उदैभान जो बोलते ही न थे लिख भेजने का आसरा पाकर इतना बोले 'अच्छा सिधारिए मैं लिख भेजता हूं, पर मेरे उस लिखे को मेरे मुँह पर किसी ढब से न लाना, इसी लिए मैं मारे लाज के मुखपाट होके पड़ा था और आप से कुछ न कहता था।' यह सुन कर दोनों महाराज और महारानी अपने अपने स्थान को सिधारे। तब कुंवर ने यह लिख भेजा, 'अब जो मेरा जी होठों पर आगया और किसी डोल न रहा गया और आपने मुझे सौ सौ रूप से खोला और बहुत सा टटोला तब तो लाज छोड कर के हाथ जोड के मुँह को फाड़ के घिघिया के यह लिखता हूं।

उस दिन जो मै हरियाली देखने को गया था। एक हिरनी मेरे सामने कनौतियां उठाए आगई। उसके पीछे मैने घोड़ा बग छुट फेंका। जब तक उजाला रहा उसके धुन मे बहका किया। जब सूरज डूबा, मेरा जी ऊबा, सुहानी सी अमराइयां ताड़ के मै उनमे गया तो उन अमराइयों का पत्ता पत्ता मेरे जी का गाहक हुआ। वहां का यह सौहिला है, कुछ लड़कियां भूला डाले भूल रही थीं। उनकी सरधरी कोई रानी केतकी महाराज जगत परकास की बेटी हैं। उन्होंने यह अंगूठी मुझे दी और मेरी अंगूठी उन्होंने ले ली और लिखौट भी लिख दी सो यह अंगूठी उनकी लिखौट ... लिखे हुए के साथ पहुंचती है। अब आप पढ़ लीजिए जिस मे

है का जी रह जाय सो कीजिए, महाराज और महारानी ने अपने बेटे
लिखे हुए पर सोने के पानी से यों लिखा। ' हम दोनों ने इस अंगूठी
और लिखौट को अपनी आंखों से मला, अब तुम इतने कुढो पचो मत। जो
नी केतकी के मां बाप तुम्हारी बात मानते हैं तो हमारे समधी और
मधिन हैं और दोनों राज एक हो जाएंगे और जो कुछ नाह नूह ठहरेगी
तो जिस डौल से बन आवेगा ढाल तलवार के बल तुम्हारी दुलहन हम
म से मिला देंगे। आज से उदास मत रहा करो। खेलो कूदो बोलो
लो आनन्दें करो। अच्छी घड़ी शुभ मुहूरत सोच के तुम्हारी ससुराल
किसी बाम्हन को भेजते हैं जो बातचीत चाही ठीक कर लावे।' और
म घड़ी शुभ मुहूरत देख के रानी केतकी के मां बाप के पास भेजा।

बाम्हन जो शुभ मुहूरत देख कर हडबड़ी से गया था उस पर बुरी
ही पड़ी। सुनते ही रानी केतकी के मां बाप ने कहा ' हमारे उनके नाता
हीं होने का। उनके बाप दादे हमारे बाप दादे के आगे सदा हाथ जोड़-
र बातें किया करते थे और टुक जो तेवरी चढ़ी देखते थे बहुत डरते थे।
या हुआ जो अब वह चढ़ गए, ऊंचे पर चढ़ गए,
न के माथे हम बाएं पांव के अंगूठे से टीका लगावें
ह महाराजों का राजा हो जाये। किसी का मुंह जो यह बात हमारे मुंह
र लावे।' बाम्हन ने जल भुन के कहा 'अगले भी बिचारे ऐसे ही कुछ
ए हैं। राजा सूरजभान भी भरी सभा मे कहते थे हममे उनमे कुछ गोत
ा तो मेल नहीं। यह कुंवर की हठ से कुछ हमारी नहीं चलती नहीं
ी ऐसी ओछी बात कब हमारे मुंह से निकलती, यह सुनते ही उस
हाराज ने बाम्हन के सिर पर फूलों की चंगेर फेंक मारी और कहा 'जो
ाम्हन की हत्या का धड़का न होता तो तुमको अभी चक्की मे दलवा
ालता' और अपने लोगों से कहा 'इसको ले जाओ और ऊपर एक अंधेरी
कोठरी में मूँद रक्खो।' जो इस बाम्हन पर बीती तो सब उदेभान के मां
ाप ने सुनी। सुनते ही लड़ने को अपना ठाट बांध भादों के दल बादल
से घिर आते हैं चढ आया। जब दोनों महाराजों मे लड़ाई होने लगी
नी केतकी सावन-भादों के रूप समान रोने लगी, और दोनों के जी
पर आ गई, यह कैसी चाहत जिस मे लोहू बरसने लगा, और अच्छी

बातों को जी तरसने लगा। कुँवर ने चुपके से यह लिख भेजा 'अब मेरा कलेजा टुकडे टुकड़े हुआ जाता है। दोनों महाराजों को आपस में लड़ने दो किसी डौल से जो हो सके तो तुम मुझे अपने पास बुला लो, हम तुम दोनों मिलके किसी और देश निकल चलें, होनी हो सो हो, सिर रहता रहे, जाता जाय।' एक मालिन जिसको फूलकली कर सब पुकारते थे। उसने उस कुंवर की चिट्ठी किसी फूल की पंखड़ी मे लपेट सपेट कर रानी केतकी तक पहुँचा दी। रानी ने उस चिट्ठी को अपनी आँखों लगाय और मालिन को एक थाल मोती दिये और उस चिट्ठी की पीठ पर अपने यह लिखा 'ए मेरे जी के गाहक, जो तू मुझे बोटी बोटी करके चील कौवों को दे डालो, तो भी मेरी आँखें चैन और कलेजे सुख हो, पर यह बात भाग चलने की अच्छी नहीं। इसमे एक बाप दादे को चिट लगे है और जब तक मां बाप जैसा कुछ होता चला आता है, उसी डौल बेटा बेटी को किसी पर पटक न मारें और सर से किसी के चेप न दें तब तक यह एक जी तो क्या जो करोर जी जाते रहे. कोई बात तो हमे रुचती नहीं।'

यह चिट्ठी जो कुंवर तक जा पहुँची उस पर कई एक थाल सोने के हीरे मोती पुखराज के खचाखच भरे हुए निछावर करके लुटा देता है। और जितनी उसे बेचैनी थी उससे चौगुनी हो जाती है और उसी चिट्ठी को अपने भुजदण्ड पर बांध लेता है।

जगतपरकास अपने गुरु को, जो कैलाश पहाड़ पर रहता था, लिख भेजता है कुछ हमारी सहाय कीजिये, महा कठिन हम पर विपता आ पडी है। राजा सूरजभान को अब यहां तक बाय बँहक ने लिया है जो उन्होंने हम से महाराजों से डौल किया है।'

कैलास पहाड जो एक डौल चांदी का है, उस पर राजा जगतपरकास का गुरु, जिसको महेन्द्रगिर सब इन्दरलोक के लोग कहते थे, ध्यान ज्ञान में कोई नब्वे लाख अतीतों के साथ ठाकुर के भजन मे दिन रात लगा रहता था। सोना रूपा ताँबे रांगे का बनाना तो क्या और मुंह से लेकर उड़ना परे रहे उसको और बातें इस ढब की ध्यान

थी जो कहने सुनने से बाहर हैं। मेंह सोने रूपे का बरसा देना और
जैसा रूप मे चाहना हो जाना सब कुछ उसके आगे खेल था, गाने बजाने
में महादेव जी छुट उसके आगे कान पकड़ते थे। सरस्वती जिसको सब
लोग कहते थे उन्ने भी कुछ गुनगुनाना उसी से सीखा था। उसके सामने
छः राग छत्तीस रागिनियाँ आठ पहर रूप बादियों का सा धरे हुए उसकी
सेवा मे सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं और वहां अतीतों को गिर कह
कर पुकारते थे—भैरों गिर, विभास गिर, हिंडोल गिर, मेघनाथ, केदार-
नाथ, दीपकसेन, जोतीस्वरूप, सारङ्ग रूप और अतीतिने इस ढब से
कहलाती थीं—गूजरी, टोडी, असावरी, गौरी, मालसिरी, बिलावली।
जब चाहता अधर मे सिहासन पर बैठ कर उड़ाता फिरता था और नव्वे
लाख अतीत गुटके अपने मुंह मे लिये गेरुवे वसतर पहने जटा बिखारे
उसके साथ होते थे। जिस घड़ी रानी केतकी के बाप की चिट्ठी एक
बगला उसके घर तक पहुँचा देता है गुरु महेन्दर गिर एक चिंघाड़ मार
कर दल बादलों को ढलका देता है, बघम्बर पर बैठ भभूत अपने मुंह
से मल कुछ कुछ पठन्त करता हुआ बाव के घोड़े के पीठ लगा और सब
अतीत मृगछालों पर बैठे हुये गुटके मुंह मे लिए हुए बोल उठे 'गोरख
जागा और मुच्छन्दुर भागा।' एक आंख की झपक मे वहां आ पहुंचता
है जहा दोनो महाराजों मे लड़ाई हो रही थी। पहले तो एक काली आंधी
आई फिर ओले बरसे फिर टिड्डी आई। किसी को अपनी सुध न रही।
राजा सूरजभान के जितने हाथी घोड़े और जितने लोग और भीड़भाड़
थी कुछ न समझा कि क्या किधर गई और उन्हे कौन उठा ले गया।
राजा जगतपरकास के लोगों पर और रानी केतकी के लोगों पर केवड़े के
बूंदों की नन्हीं नन्हीं फुहारे सी पड़ने लगी। जब वह सब कुछ हो चुका
तो गुरु जी ने अतीतियों से कहा 'उदैभान सूरजभान लछमीवास इन
तीनों को हिरनी हिरन बनाके किसी बन मे छोड़ दो और जो उनके
साथी हों उन सभों को तोड़ फोड़ दो।' जैसा कुछ गुरु जी ने कहा, झटपट
वही किया। बिपत का मारा कुंवर उदैभान और उसका बाप वह राजा
सूरजभान और उसकी मां लछमीवास हिरन बन गए। हरी घास कई
बरस तक चरते रहे और उस भीड़ भाड़ का तो कुछ थल बेड़ा न मिला,

किधर गए और कहाँ थे ! बस यहाँ की यहीं रहने दो। फिर सुनो। अब रानी केतकी के बाप महाराजा जगतपरकास की सुनिये । उनके घर का घर गुरु जी के पांव पर गिरा और सब ने सर झुका कर कहा 'महाराज यह आप न पहुंचते तो क्या रहा था ! सब ने मर मिटने की ठान ली थी । इन पापियों से कुछ न चलेगी, यह जनते थे । राज पाट हमारा अब निछावर करके जिसको चाहिये दे डालिए। राज हमसे नहीं थम सकता । सूरजभान के हाथ से आपने बचाया । अब कोई उनका चचा चंदरभान चढ़ आवेगा तो क्या बचना होगा । अपने आप में तो सकत नहीं, फिर ऐसे राज का फिट्टे मुँह, कहाँ तक आपको सताया करें।' जोगी महेन्दर गिर ने यह सुनकर कहा 'तुम हमारे बेटा हो, आनन्द करो, दन दनावो, सुख चैन से रहो। अब वह कौन है जो तुम्हें आंख भर कर और ढब से देख सके । यह बघम्बर और यह भभूत हमने तुमको दिया । जो कुछ ऐसी गाढ़ पड़े तो इसमें एक रोंगटा तोड़ आग में फूँक दीजिये । यह रोंगटा फुकने न पावेगा जो बात की बात में हम आ पहुंचेंगे । रहा भभूत, तो इस लिये है जो कोई इसे अंजन करै वह सब को देखे और उसे कोई न देखे जो चाहे सो करे ।

गुरु महेन्दर गिर के पाँव पूजे और 'धन धन महाराज' कहे । उनसे तो कुछ छिपाव न था । महाराज जगतपरकास उनको मुर्छल करते हुए अपनी रानियों के पास ले गये । सोने रूपे के फूल गोद भर भर सब ने निछावर की और माथे रगडे । उन्होंने सबकी पीठें ठोंकी । रानी केतकी ने भी गुरु जी के दण्डवत की, पर जी में बहुत सी गुरुजी को गालियाँ दीं। गुरुजी सात दिन सात रातें यहाँ रह कर जगतपरकास को सिंहासन पर बैठा कर अपने बघम्बर परबैठ उसी डौल से कैलास पर आ धमके और राजा जगतपरकास अपने अगले ढब से राज करने लगा ।

एक दिन रानी केतकी ने अपनी मां रानी कामलता को भुलावे में डाल कर यों कहा और पूछा–'गुरुजी गुसाईं महेन्दर गिर ने जो भभूत मेरे बाप को दिया है, वह कहां रखा है और उससे क्या होता है' ? रानी बोल उठी 'तेरी वारी ! क्यों पूछती है ?' रानी केतकी कहने लगी

'आंखें मिचौवल खेलने के लिये चाहती हूँ, अब अपनी सहेलियों के साथ खेलूँ और चोर बनूँ तो मुझको कोई पकड़ न सके।' महारानी ने कहा 'वह खेलने के लिये नहीं है। ऐसे लटके किसी बुरे दिन के सम्भालने को डाल रखते हैं। क्या जाने कोई घडी कैसी है कैसी नही।' रानी केतकी अपनी मां की इस बात पर अपना मुँह थुथा कर उठ गई और दिन भर खाना न खाया। महाराज ने जो बुलाया तो कहा मुझे रुच नहीं। तब कामलता बोल उठी 'अजी तुमने सुना भी, बेटी तुम्हारी आंख मिचौवल खेलने के लिये वह भभूत गुरूजी का दिया मांगती थी। मैंने न दिया और कहा लडकी वह लडकपन की बातें अच्छी नहीं, किसी बुरे दिन के लिए गुरु जी दे गए हैं। इसी पर मुझसे रूठी है बहुतेरा बहलाती हूँ मानती नहीं।' महाराज ने कहा 'भभूत तो क्या मुझे तो अपना जी भी उससे प्यारा नहीं, उसके एक पहर के बहलजाने पर एक जी तो क्या जो करोर जी हों तो दे डालें।' रानी केतकी को डिबिया मे से थोड़ा सा भभूत दिया। कई दिन तलक आँख मिचौवल अपनी माँ बाप के सामने सहेलियों के साथ खेलती सबको हँसाती रही जो सौ सौ थाल मोतियों के निछावर हुआ किए। क्या कहूं! एक चुहल थी जो कहिये तो करोडों पोथियों में ज्यों की त्यों न आ सके।'

एक रात रानी केतकी उसी ध्यान मे मदन बान से यों बोल उठी 'अब मैं निगोड़ी लाज से कुट करती हूँ तू मेरा साथ दे।' मदनबान ने कहा 'क्योंकर'। रानी केतकी ने वह भभूल का लेना उसे बताया और यह सुनाया 'यह सब आंख मिचवल के झाई झप्पे मैंने इसी दिन के लिए कर रक्खे थे।' मदनबान बोली 'मेरा कलेजा थरथराने लगा। अरी यह माना कि तुम अपनी आँख में उस भभूत का अंजन कर लोगी और मेरे भी लगा दोगी तो हमें तुम्हें कोई न देखेगा और हम तुम सब को देखेंगी, पर ऐसी हम कहाँ जी चली हैं जो बिन साथ जोबन लिये बन बन में पडी भटका करें और हिरनों की सींगों पर दोनों हाथ डाल कर लटका कर और जिसके लिए यह सब कुछ है सो वह कहाँ और होय तो क्या जाने यह रानी केतकी है और यह मदनबान निगोड़ी नाची खसोटी उजड़ी उनकी सहेली है। चूल्हे और भाड मे जाय वह जिसके लिए आपको माँ

बाप का राज पाट सुख नींद लाज छोड कर नदियों के कछहरों में फिरना पडे सो भी बेडौल । जो वह अपने में होते तो भला थोडा बहुत आसरा था । ना जी, यह तो हम से न हो सकेगा जो महाराज जगतपरकास और महारानी कामलता का हम जान बूझकर घर उजाडें और उनकी जो इकलौती लाडली बेटी है उसको भगा ले जावें और जहाँ तहाँ उसे भटकावें और बनासपत्ती खिलावें और अपने घोंड़ को हिलावें । जब तुम्हारे और उसके माँ बाप में लडाई हो रही थी और उन्ने उस मालिन के हाथ तुम्हे लिख भेजा था जो मुझे अपने पास बुलालो, महाराजों को आपस मे लडने दो जो होनी हो सो हम तुम मिल के किसी देश को निकल चलें। उस दिन न समझीं । तब तो वह ताव भाव दिखाया अब जो वह कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप तीनों जी हिरनी हिरन बन गए। क्या जाने किधर होंगे । उनके ध्यान पर इतनी कर बैठिए जो किसी ने तुम्हारे घराने मे न की अच्छी नहीं । इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछता-वोगी और अपना किया पाओगी । मुझ से कुछ न हो सकेगा । तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुँह से जीते जी न निकलती पर यह बात मेरे पेट नहीं पच सकती । तुम अभी अल्हड हो, तुमने अभी कुछ देखा नहीं । जो ऐसी बात पर सचमुच ढलाव देखूँगी तो तुम्हारे बाप से कहकर वह भभूत जो वह मुवा निगोडा भूत मुछन्दर का पूत अवधूत दे गया है, हाथ मुरकवा कर छिनवालूँगी ।' रानी केतकी ने यह रुखाइया मदनबान की सुनकर हँस कर टाल दिया और कहा जिसका जी ठिकाने में न हो उसे ऐसी लाखों सूझती हैं पर कहने और करने मे बहुत सा फेर है । भला यह कोई अंधेर है जो मैं माँ बाप राज पाट लाज छोड़कर हिरन के पीछे दौडती करछालें मारती फिरूँ, पर अरी तू तो बडी वावली चिडिया है जो यह बात सच जानी और मुझ से लडने लगी ।'

दस पन्द्रह दिन पीछे एक दिन रानी केतकी बिना कहे मदनबान के वह भभूत आँखों में लगा के घर से बाहर निकल गई । कुछ कहने मे आता नहीं जो माँ बाप पर हुई । सब ने यह बात ठहराई, गुरुजी ने कुछ समझ कर रानी केतकी को अपने पास बुला लिया होगा । महाराज [illegible]परकास और महारानी कामलता राज पाट उस वियोग मे छोड़ छाड़

के एक पहाड की चोटी पर जा बैठे और किसी को अपने लोगों में के राज थामने को छोड गये। बहुत दिनों पर पीछे एक दिन महारानी ने महाराज जगतपरकास से कहा 'रानी केतकी का कुछ भेद जानती होगी तो मदनवान जानती होगी। उसे बुला कर पूछो तो।' महाराज ने उसे बुलाकर पूछा तो मदनवान ने सब बात खोलियाँ। रानी केतकी के माँ बाप ने कहा 'अरी मदनवान भी उसके साथ होती तो हमारा जी भरता अब जो वह तुझे ले जावे तो कुछ हचर वचर न कीजियो। उसके साथ हो लीजियो। जितना भभूत है तू अपने पास रख। हम कहाँ इस राख को चूल्हे मे डालेंगे। गुरु जी ने दोनों राज्य का खोज खोया। कुंवर उदैभान और उसके माँ बाप दोनों अलग हो रहे। जगतपरकास और कामलता को यों तलपट किया। भभूत न होती तो यह बातें काहे को सामने आती।' मदनवान भी उनके ढूँढने को निकली। अंजन लगाये हुए 'रानी केतकी, रानी केतकी' कहती हुई उड़ी फिरती थी। बहुत दिनों पीछे कहीं रानी केतकी भी हिरनों की दहाड़ों में 'उदैभान, उदैभान' चिंघाडती हुई आ निकली। एक ने एक को ताड कर पुकारा 'अपनी तनी आँखें धो डालो।' एक डबरे पर बैठ कर दोनों की मुठभेड़ हुई। लग के ऐसी रोइयाँ जो पहाड़ो में कूक सी पड गई।

दोनों जनियाँ एक अच्छी सी छांव को ताड कर आ बैठियाँ और अपनी अपनी दोहराने लगीं।

रानी केतकी ने अपनी बीती सब कही और मदनवान वही अगला झींकना झींका की और उनके माँ बाप ने जो उनके लिए जोग साधा या जो वियोग लिया था सब कहा। जब यह सब कुछ हो चुकी तब फिर हँसने लगी।

पर मदनवान से कुछ रानी केतकी के आँसू पुछते चले। उन्हे यह बात कही 'जो तुम कहीं ठहरो तो मैं तुम्हारे उन उजड़े हुए माँ बाप को चुपचाप ले आऊँ और उन्हीं से इस नाते को ठहराऊँ। गोसाईं महेन्दर गिर जिसकी यह सब करतूत है वह भी इन्हीं दोनों उजडे हुए की मुट्ठी में हैं। अब भी जो मेरा कहा तुम्हारे ध्यान चढ़े तो गए हुए दिन

फिर सकते है। पर तुम्हारे कुछ भावे नहीं हम क्या पड़ी वकती हैं। मैं इस पर बीड़ा उठाती हूँ।' बहुत दिनों पीछे रानी केतकी ने इस पर अच्छा कहा और मदनवान को अपने माँ वाप के पास भेजा और चिट्ठी अपने हाथों से लिख भेजी, जो आप से हो सके तो उस जोगी से ठहरा के आवें।

मदनवान रानी केतकी को अकेली छोड़कर राजा जगतपरकास और रानी कामलता जिस पहाड़ पर बैठी थीं, झटसे आदेश करके आ खड़ी हुई और कहने लगी 'लीजे आप राज कीजे, आप का घर नए सिर से बसा और अच्छे दिन आए। रानी केतकी का एक बाल भी बांका नहीं हुआ। उन्हीं के हाथों की लिखी चिट्ठी लाई हूँ, आप पढ़ लीजिए। आगे जो जी चाहे सो कीजिये'। महाराज ने उस बघम्बर मे से एक रोंगटा तोड़कर आग पर रख के फूँक दिया। बात की वात मे गोसाई महेन्द्-दगिर आ पहुंचा और जो कुछ नया सवांग जोगी जोगिन का आया आंखों देखा। सबको छाती लगाया और कहा 'बघम्बर तो इसी लिए मैं सौंप गया था कि जो तुम पर कुछ हो तो इसका एक बाल फूँक दीजियो। तुम्हारी यह गत हो गयी। अब तक क्या कर रहे थे और किन नींदों मे सोते थे। पर तुम क्या करो ? यह खिलाड़ी जो रूप चाहै सो दिखावै, जो नाच चाहे नचावै। भभूत लड़की को क्या देना था। हिरन हिरनी उदैभान और सूरजभान उसके बाप और लछमीवास उसकी मां को मैने किया था। फिर उन तीनों को जैसा का तैसा करना कोई बड़ी बात न थी। अच्छा, हुई सो हुई। अब उठ चलो। अपने राज पर विराजो और ब्याह की ठाठ करो। अब अपनी बेटी को समेटो। कुँवर उदैभान को मैंने अपना बेटा किया और उसको लेके मै ब्याहने चढूँगा'। महाराज यह सुनते ही अपनी गद्दी पर जा बैठे और उसी घड़ी यह कह दिया 'सारी छतों और कोठों को गोटे से मढ़ो और सोने और रूपे के सुनहरे रुपहरे सेहरे सब झाड़ पहाड़ों पर बांध दो और पेड़ों मे मोती की लड़ियाँ बाँध दो और कह दो—चालीस दिन चालीस रात तक जिस घर में नाच आठ पहर न रहेगा उस घर वाले से मैं रूठ रहूँगा और यह

यह मेरे दुःख सुख का साथी नहीं। और छः महीने कोई चलने

वाला कहीं न ठहरे, रात दिन चला जावे'। इस हेरफेर में वह राजा था। सब कहीं यही डौल था।

फिर महाराजा और महारानी और महेन्दर गिर मदनबान के साथ जहां रानी केतकी चुपचाप सुन खींचे हुए बैठी थी चुपचुपाते वहां आन पहुँचे। गुरु जी ने रानी केतकी को अपनी गोद मे लेकर कुँवर उदैभान का चढावा चढा दिया और कहा तुम अपने माँ बाप के साथ अपने घर सिधारो अब बेटे उदैभान को लिये हुए आता हूँ।' गुरु जी गोसाईं जिन को दण्डौत है सो तो वह सिधारते हैं। आगे जो होगी सो कहने मे आवेगी। यहां पर धूमधाम फैलावा अब ध्यान कीजिये। महाराज जगत-परकास ने अपने सारे देश मे कह दिया 'यह पुकार दे जो यह न करेगा उसकी बुरि गति होवेगी।' गाँव गाँव मे अपने सामने छिपोले बना बना क सूहे कपड़े उन पर लगा के गोट धनुष की और गोखरू रूपहले सुनहरे की किरनें और डांक टांक टांक रक्खो और जितने बड़, पीपल नये पुराने जहां जहां पर हों उनके फूल के सेहरे बड़े बड़े ऐसे जिसमे सिर से लगा पैर तलक पहुंचे बाँधो।

चौतुका

पौदों ने रंगा के सूहे जोड़े पहने।
सब पाँव मे डालियों ने तोड़े पहने॥
बूटे बूटे ने फूल फूल के गहने पहने।
जो बहुत न थे तो थोड़े थोड़े पहने॥

जितने डहडहे और हरयावल फूल पाते थे, सबने अपने हाथ में चहचहो मेंहदी की सजावट की, सजावट के साथ जितनी सजावट में समा सके, कर लिए और जहाँ जहाँ नवल व्याही दुल्हने नन्हीं नन्हीं कलियों की और सुहागिनें नई नई कलियों के जोड़े पँखुडियों के पहने हुई थी। सबने अपनी अपनी गोद सुहाग और प्यार के फूल और फलों से भरी और तीन बरस का पैसा सारे उस राजा के राजभर मे जो लोग दिया करते थे, उस ढब से हो सकता था खेती बारी करके हल जोत के और कपडा लत्ता बेचकर सो सब उनको छोड दिया और कहा जो अपने घरों में बनावट की ठाट करैं। और जितने राजभर में कुँए ते

खँडसालों की खँडसालें उनमे उँडेल गई और सारे वनों और पहाड़ तलियों मे लाल पटों की झमझमाहट को रातों दिखाई देने लगीं। और जितनी झीलें थीं उनमे कुसुम और टेसू और हारसिंगार पड़ गया और केसर भी थोड़ी थोड़ी घोले मे आ गई। फुनगे से लगा जड़ तलक जितने झाड झंखाडों मे पत्ते और पत्ती बँधी थी उन पर रुपहरी सुनहरी डाक गोंद लगाकर चिपका दिए और सभों को कह दिया जो सूही पगड़ी और सूहे बागे बिन कोई किसी डौल किसी रूप से फिरे चले नहीं और जितने गवैये वजवैये भाँड भगतिए रहसधारी और संगीत पर चलने वाले थे सब को कह दिया जिस जिस गाँव मे जहां हों अपने अपने ठिकानों से निकल अच्छे अच्छे बिछौने बिछाकर गाते नाचते कूदते रहा करें।

यहां की बात और चुहलें जो कुछ है सो यहीं रहने दो, अब आगे सुनो। जोगी महेन्दर और उसके नब्बे लाख अतीत ने सारे बन छान मारे पर कहीं कुँवर उदैभान और उसके मां बाप का ठिकाना न लगा। तब उन्हों ने राजा इन्दर को चिट्ठी लिख भेजी। उसे चिट्ठी मे यह लिखा हुआ था—'इन तीनों जनों को हिरनी हिरन कर डाला था, अब उनको ढूँढता फिरता हूँ कहीं नहीं मिलते और मेरी जितनी सकत थी अपनी सी बहुत कर चुका हूँ। अब मेरे मुँह से निकला कुँवर उदैभान मेरा बेटा, मै उसका बाप। और ससुराल मे सब ब्याह का ठाठ हो रहा है। अब मुझ पर विपत्ती गाढ़ी पड़ी जो तुम से हो सके, करो।' राजा इन्दर चिट्ठी को देखते ही गुरु महेन्दर के देखने को सब इन्द्रासन समेट कर आ पहुंचे और कहा 'जैसा आपका बेटा वैसा मेरा बेटा। आपके साथ मे सारे इन्द्रलोक को समेट कर कुंवर उदैभान को ब्याहने चढ़ूँगा।' गोसाँई महेन्दर गिर ने राजा इन्दर से कहा 'हमारी आप की एक ही बात है पर कुछ ऐसा सुझाइये जिससे कुँवर उदैभान हाथ आ जावे।' राजा इन्दर ने कहा 'जितने गवैए और गायने हैं, उन सबको साथ लेकर हम और आप सारे बन मे फिरा करें कहीं न कहीं ठिकाना लग जायगा।' गुरु ने कहा 'अच्छा।'

रात राजा इन्दर और गोसाईं महेन्दर गिर निखरी हुई चांदनी में

बैठे राग सुन रहे थे । करोड़ों हिरन राग के ध्यान मे चौकड़ी भूल आस पास सर झुकाये खडे थे । इसी मे राजा इन्दर ने कहा 'इन सब हिरनों पर—'मेरी सकत गुरु की भगत फुरे मन्त्र ईश्वरोवाचा—पढ के एक एक छींटा पानी का दो ।' क्या जाने वह पानी कैसा था छींटों के साथ ही कुँवर उदैभान और उस के माँबापतीनों जने हिरनों का रूप छोड कर जैसे थे वैसे हो गये । गोसाईं महेन्दर गिर और राजा इन्दर ने उन तीनों को अपने गले लगाया और बड़ी आव भगत से अपने पास बैठाया और वही पानी घडा अपने लोगों को दे कर वहा भेजवाया जहां सर मुँड़वाते ही ओले पडे थे । राजा इन्दर के लोगों ने जो पानी के छींटे वही ईश्वरोवाचा पढ के दिये तो जो मरे थे, सब सिमट आये । राजा इन्दर और महेन्दर गिर कुंवर उदैभान और राजा सूरजभान और रानी लछमीबास को लेकर एक उडन-खटोले पर बैठ कर वडी धूमधाम से उन को राज पर बिठा कर व्याह के ठाठ करने लगे । पसेरियन हीरे-मोती उन सब पर से निछावर हुये । राजा सूरजभान और रानी लछमीबास चितचाही असीस पा कर फूली न समाई और अपने सारे राज को कह दिया 'जेवर भौरे के मुँह खोल दो, जिस को जो-जो उकत सूझे बोल दो । आज के दिन का सा कौन सा होगा । हमारी आँखों की पुतलियों का जिस से चैन है उस लाड़ले इकलौते का व्याह और हम तीनों का हिरनों के रूप से निकल फिर राज पर बैठना । पहिले तो यह चाहिये, जिन जिनकी बेटिया बिन बिनब्याहियां हों उन सब को उतना कर दो जो अपने जिस चाव चोज से चाहे अपनी गुडियां सँवार से उठावें और जब तक जीती रहे सब की सब हमारे यहा से खाया पकाया रीधा करें । और सब राज भर की बेटिया सदा सुहागने बनीं रहें और सूहे राते छुट कभी कोई कुछ न पहना करें । और सोने रूपे के केवाड गंगा जमुनी सब घरों मे लग जायें और सब कोठों के माथों पर केसर और चन्दन के टीके लगे हों । और जितने पहाड हमारे देश मे हो उतने ही पहाड सोने रूपे के सामने खड़े हो जायँ और डाँगों की चोटियां मोतियों की मांग से विना मांगे तांगे भर जायँ और फूलों के गहने और बन्धनवार से सब झाड पहाड लदे फँदे रहें और इस राज से लगा उस राज तक अधर मे छत सी बाँध दो और

चप्पी-चप्पा कहीं ऐसा न रहे जहां भीड़-भड़क्का धूम-धड़क्का न हो जाय फूल बहुत सारे खंड जाँय जो नदियाँ जैसे सचमुच फूल की बहतियां हैं यह समझा जाय। और यह डौल कर दो जिधर से दूल्हा को व्याहने चढ़ें सब लाडली और हीरे और पुखराज की उमड में इधर और उधर कंवल की टट्टियाँ बन जायँ और क्यारियाँ सी हो जायँ जिन के बीचबीच मे हो निकलें और कोई डाँग और पहाड तली का चढाव उतार ऐसा दिखाई न दे जिस की गोद पँखुरियों से भरी हुई न हो।

राजा इन्दर ने कह दिया, 'वह लडकियाँ चुलबुलियाँ जो अपने मद में उड़ चलियां हैं उन से कह दो—सोलह सिंगार बाल गजमोती पिरो अपने-अपने अचरज और अचम्भे के उड़नखटोलों की इस राज तक अधर में छत सी बांध दो। कुछ उस रूप से उड़ चलो जो उड़नखटोलियों की क्यारियां और फुलवारियाँ सैकड़ों कोस तक हो जायँ और अधर ही अधर मिरदंग बीनजलतरं, मुंहचँग घुँघुरू तबले घंटताल और सैकड़ों इस ढब के अनोखे बाजे बजते आयें और उन क्यारियों के बीच मे हीरे पुखराज अनबेध मोतियों के झाड़ और लालपटों की भीड़भाड़ की झमझमाहट दिखाई दे और इन्हीं लालपटों मे से हरफूल फूलझाड़ियाँ जाही जुही कदम गेंदा चमेली इस ढब छूटने लगें जो देखने वालों के कंवाड़ खुल जायें और जो उछल-उछल फूटें उन मे से हँसती सुपारी और बोलती करोती ढल पड़ें और जब हम सब को हँसी आवे तो चाहिये उस हँसी से मोतियों की लड़ियाँ झड़ें जो सब के सब उन को चुन चुन के राजे हो जायँ। डोमनियों के रूप मे सारंगियाँ छेड़ छेड़ सोहलें गाओ, दोनो हाथ हिला के अँगुलियाँ नचाओ, जो किसी ने न सुनी हो। वह ताव भाव व चाव दिखाओ, ठुड्डियाँ गिनगिनावो, नाक भँवें तान-तन भाव बतावो, कोई छुटकर रह न जावो। ऐसा चाव लाखों बरस मे होता है।' जो जो राजा इन्दर ने अपने मुँह से निकाला था आँख की झपक के साथ वही होने लगा और जो कुछ उन दोनों महाराजों ने कह दिया था, सब कुछ उसी रूप से ठीक-ठीक हो गया। जिस व्याह की यह कुछ फैलावट और रचावट

इस जमघटे के साथ होगी, और कुछ फैलावा क्या कुछ होगा, कर लो।

जब कुँवर उदैभान को वे इस रूप से व्याहने चढे और वह वाम्हन जो अंधेरी कोठरी मे मुंदा हुआ था उस को भी साथ ले लिया और बहुत से हाथ जोडे और कहा 'वाम्हन देवतो हमारे कहने मुनने पर न जावो, तुम्हारी जो रीत चली हुई आई है बताते चलो।' एक उड़न-खटोले पर वह भी रीत बता के साथ हो लिया। राजा इन्दर और महेन्दरगिर ऐरावत हाथी पर झूलते देखते भालते चले जाते थे। राजा सूरजभानदूल्हा के घोडे के साथ माला जपता हुआ पैदल था। इसीमे एक सन्नाटाहुआ सब घबरा गये। उस सन्नाटे मे जो वह ९० लाख अतीत थे सब जोगी से बने सब माले मोतियों की लड़ियों के गले मे डाले हुये और गातियाँ उसी ढब की बाँधे हुए मिरिगछालों और बघम्बरों पर आ ठहर गये। लोगों के जियों में जितनी उमंग छा रही थी वह चौगुनी पचगुनी हो गई। सुखपाल और चंडोल और रथों पर जितनी रानियाँ थीं महारानी लछमीवास के पीछे चली आतियाँ थीं सब की गुदगुदियाँ सी होने लगी। इसी में भरथरी का स्वाँग आया। कही जोगी जतियाँ आ खड़े हुये। कहीं-कहीं गोरख जागे कहीं मुच्छन्दर नाथ भागे। कही मच्छ कच्छ बराह सन्मुख हुए। परसुराम, कहीं वामन रूप, कही हरनाकुस और नरसिंह, कहीं राम लछमन सीता समेत आए, कहीं रावन और लङ्का का बखेडा सारे का सारा सामने देखाई देने लगा। कहीं कन्हैया जी की जन्मअस्टमी होना और वसुदेव का गोकुल ले जाना और उन का बढ़ चलना, गाएँ चरानी और मुरली वजानी और गोपियों से धूम मचानी और राधिका-रहस और कुब्जा का वस कर लेना, कहीं करील की कुँजें, बंसीवट, चीरघाट, वृन्दावन, सेवाकुञ्ज, वरसाने मे रहना और कन्हैया से जो जो हुआ था सब का सब ज्यों का त्यों आँखों मे आना और द्वारिका जाना और वहा सोने का घर वनाना इधर विरिज को न आना और सोलह सौ गोपियों का तलमलाना सामने आ गया।

कोई क्या कह सके, जितने घाट दोनों राज की नदियों मे थे, पक्के चाँदी के थक्के से होकर लोगों को हक्का वक्का कर रहे थे। निवाड़े, भौलिये, बजरे लचके, मोरपङ्खी, स्याम सुन्दर, रामसुन्दर और जितनी ढब की

नावें थीं सुनहरी रूपहरी सजी सजाई कसी कसाई सौ सौ लचके खातियाँ आतियाँ जातियाँ ठहरातियाँ फिरतियाँ थीं। उन सभी पर खचाखच कंचनियाँ, राम-जनियाँ डोमनियाँ भरी हुई अपने अपने करतबों में नाचती गाती बजाती कूदतीं फाँदती धूमें मचातियाँ थीं। और कोई नाव ऐसी न थी जो सोने रूपे के पत्तरों में मढ़ी हुई और सवारी डटी हुई न हो। और बहुत सी नावों पर हिंडोले भी उसी ढब के थे। उन पर गायनें बैठी झूलती हुई सोहनी, केदार, बागेसरी, कन्हड़ों में गा रही थीं। दल बादल ऐसे नेवाड़ों के सब झीलों में छा रहे थे।

इस धूमधाम के साथ कुँवर उदैभान सेहरा बाँध जब दुल्हन के घर तक आ पहुंचा और जो रीतें उनके घराने में चली आई थीं होने लगियाँ। उस घड़ी मदनबान को रानी केतकी के बादले का जूड़ा और भीना-भीनापन और अँखड़ियों का लजाना और बिखरा बिखरा जाना भला लग गया तो रानी केतकी की बास सूँघने लगी और अपनी आँखों को ऐसा कर लिया जैसे कोई ऊँघने लगता है। सिर से लगी पाँव तक वारी फेरी होके तलवे सुहलाने लगी। तब रानी केतकी झट एक धीमी सी सिसकी लचके के साथ ले उठी। मदनबान बोली 'मेरे हाथ के ठोके से वही पांव का छाला दुख गया होगा जो हिरनों को ढूँढ़ने में पड़ गया था।' इसी दुख की चुटकी से रानी केतकी ने मसोस कर कहा 'काँटा अड़ा तो अड़ा, छाला पड़ा तो पडा पर निगोडी तू क्यों मेरी पनछाला हुई'।

दूल्हा उदैभान सिंहासन पर बैठा और इधर उधर राजा इन्दर और जोगी महेन्दर गिर जम गए और दूल्हा का बाप अपने बेटे के पीछे जाला लिए कुछ गुनगुनाने लगा। और नाच लगा होने और अधर में जो उड़नखटोले राजा इन्दर के अखाड़े के थे सब उसी रूप से छत बांधे हुए थिरका किए। दोनों महारानियाँ समधिन बन के आपस में मिलियाँ चलियाँ और देखने दाखने को कोठों पर चन्दन के किवाड़ों के आड तले आ बैठियाँ। सवाँग संगीत भँड़ताल रहस हँसी होने लगीं। जितनी राग रागनियाँ थीं—ईमन कल्यान, सुद्ध कल्यान, झिंझोटी, कान्हडा, खम्माच, सोहनी, परज, बिहाग, सोरठ, कालंगडा, भैरवी, पटललित, भैरों रूप

५ सचमुच के जैसे गाने वाले होते है उसी रूप में अपने समय पर

गाने लगे और गाने लगियाँ। उस नाच का जो ताव भाव रचावट के साथ हो, किसका मुँह जो कह सके। जितने महाराजा जगतपरकाश के सुख चैन के घर थे—माधो विलास, रसधाम, कृष्णनिवास, मच्छीभवन, चन्द्रभवन सबके सब लप्पे से लपेटे और सच्चे मोतियों की झालरें अपने अपने गांठ में समेटे हुए एक भेष के साथ झूम रहे थे।

बीचों बीच उन सब घरों के एक आरसी धाम बना था जिसकी छत और किवाड़ और आंगन मे आरसी छुट कहीं लकडी ईंट पत्थर की पुट एक उंगली के पोर बराबर न लगी थी। चांदनी का जोडा पहने जब रात घड़ी एक रह गई थी तब रानी केतकी सी दूल्हन को उसी आरसीभवन में बैठाकर दूल्हा को बुला भेजा। कुँवर उदैभान कन्हैया सा बना हुआ सिर पर मुकुट धरे सेहरा बांधे उसी तडावे और जमघट के साथ चांद सा मुखड़ा लिए जा पहुंचा, जिस जिस ढब से बाम्हन और पंडित कहते गये और जो जो महाराजों मे रीतें होती चली आई थीं, उसी डौल से उसी रूप से भँवरीं गठ जोडा हो लिया।

यह उड़नखटोले वालियां जो अधर मे छत सी बांधे हुए थिरक रही थीं, भर भर झोलियाँ और मूठियाँ हीरे और मोतियाँ से निछावर करने के लिये उतर आइयाँ और उड़नखटोले अधर मे ज्यों के त्यों छत बांधे हुए खड़े रहे और वह दूल्हा दूल्हन पर से सात सात फेरे वारी फेरे होने मे पिस गइयां। सभों को एक चुपकी सी लग गई। राजा इन्दर ने दूल्हन की मुँह दिखाई मे एक हीरे का एक डाल छपरखट और एक पेड़ी पुखराज की दी और एक पारिजात का पौधा जिस मे जो फल चाहो सो मिले दूल्हा दूल्हन के सामने लगा दिया। और एक कामधेनु गाय की पठिया बछिया भी उसके पीछे बांध दी और इक्कीस लौंड़ियाँ उन्हीं उड़नखटोले वालियों में से चुन के अच्छी से अच्छी सुथरी सुथरी गाती बजातिया सीतियां पिरोतिया और सुघर सुघर सौंपी और उन्हे कह दिया 'रानी केतकी छुट उन के दूल्हा से कुछ बात चीत न रखना, नहीं तो सब की सब पत्थर की मूरतें हो जावोगी और अपना किया पावोगी।' और गोसाई महेन्दरगिर ने बावन तोले पाव रत्ती जो उस की इक्कीस

चुटकी आगे रखी और कही "यह भी एक रत्न है जब चाहिये बहुत सा ताँबा गला के एक इतनी सी चुटकी छोड दीजे कंचन हो जायगा" और जोगी जी ने सभों से यह कह दिया 'जो लोग उन के ब्याह में जागे हैं उन के घरों मे चालीस दिन चालीस रात सोने की नदियों के रूप में मनी बरसे। जब तक जियें किसी बात को फिर न तरसे।' नौ लाख निन्नानवे गायें सोने रूपे सिगोरियों की जड़ाऊ गहना पहने हुये घुँघरू छमछमातियाँ महन्तों को दान हुईं। और सात बरस का पैसा सारे राज को छोड दिया गया। बाइस सै हाथी और छत्तीस सै ऊंट रुपये के तोड़े लादे हुये लुटा दिया। कोई उस भीड़भाड मे दोनों राज का रहने वाला ऐसा न रहा जिस को घोड़ा जोड़ा रुपयों का तोड़ा जड़ाऊ कपड़ों के जोड़े न मिले हों। और मदनबान छुट दूल्हा दूल्हन पास किसी का हियाव न था जो बिन बुलाये चली जाय, बिन बुलाये दौड़ी आये तो वही आये और हँसाये तो वही हँसाये। रानी केतकी के छेड़ने के लिये उन के कुँवर उदैभान को कुंवर क्योड़ा जी कह के पुकारती थी और ऐसी बातों को सौ-सौ रूप से सँवारती थी।

सदल मिश्र

नासिकेत और यम

राजा जनमेजय ने वैशम्पायन ऋषि से कहा "हे महाराज! सुना है जो स्थान पर आके कुछ दिन के बीते पर पिता के शाप से जीवित ही नासिकेत यम के पास गए और आए सो सब कृपा कर हमको सुनाइए जिस से सन्देह मेरा दूर होए।"

वे बोले, हे राजा! अति आश्चर्य कथा है, तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हो मैं कहता हूँ, एक चित्त हो सुनो—

इस प्रकार राजा रघु की बेटी चन्द्रावती को ब्याह साथ ले फिर उदालक तपस्या करने लगे। और नासिकेत को योग की श्रद्धा हुई सो वे योग करने।

एक दिन पिता ने उनको आज्ञा दी कि पुत्र ! आज हमको अग्निहोत्र यज्ञ करना है, तुम कन्द मूल फल जितना मिले सो शीघ्र जा ले आवो।

सुनते ही वे उठ खडे भये और किसी घने बन मे जा पहुँचे। वहाँ हंस सारसों से सुशोभित ऐसा कोई सुन्दर सरोवर देखा कि जहां निर्मल पानी, तिस मे भाति भांति के कमल फूले थे, और उसके तट के वृक्ष सब अमृत समान फलों से फले थे। तब हर्षित हो उसके तट पर जा विधि से स्नान सन्ध्या कर शिव की पूजा करने लगे और समाध लगाई, सौ बरस दिन उनको वहां बीत गया। पीछे जब ध्यान छूटा तो तुरन्त कन्द-मूल फूल फल कुश वा ईंधन ले पिता के पास पहुँचे। देखते ही वे क्रोध से लाल आँख कर बोले—

चौपाई

इतना दिन कहो कहा लगाए। तेरे कारण बहु दुख पाए॥

अग्निहोत्र यह यज्ञ हमारा। तुम बिन गया अकारथ मारा॥

पुत्र करते हैं सुख पाने को, नहीं तो निपुत्र होना अच्छा। अब ही से पिता माता को दु:ख देने लगा, न जाने आगे क्या करेगा। देखो अग्नि-होत्र से ब्रह्मा आदि देवता और पितर सब सन्तुष्ट होते हैं, सो हम से कुछ हो सका नहीं।

पिता की बात सुनि नासिकेत बोले कि अग्निहोत्र कर्म केवल संसार के बन्धन के लिए हैं, मेरे जानने मे तो योग समान दूसरी क्रिया मुक्ति-दायक नहीं कि जिसको ब्रह्मा आदि देवता सब भी साधते रहते हैं।

उद्दालक बोले वेद पढ़ि अग्निहोत्र करके करोड़न्ह बरस सुरपुर मे नाना भोगविलास करते हैं। योग से कहो क्या होता है ?

नासिकेत ने कहा वेद पढ़ि अग्निहोत्र करने से बार बार संसार मे आते जाते हैं। योग साधने से इस देह से मुक्त हो आनन्द विहार करते हैं।

यह समाचार वैशम्पायन मुनि राजा जनमेजय से कहते हैं कि इस प्रकार पुत्र को बराबर उत्तरदायक जान उद्दालक ऋषि ने शाप दिया कि जाव, अब ही तुम यमलोक सिधारो। अब इहां तुम्हारे रहने से हम

प्रसन्न नहीं। पहिले तो वे डरवाने शाप से लगे कॉंपने, फिर धीरज का योग के वल से तुरन्त यम के निकट चल खड़े भये।

सुनते ही आस पास के मुनि सब हाय हाय करते दौड़ आए। सिर में जटा, अङ्ग में भभूत, केले के छिलके का लंगोट बांधे, मृग का चर्म ओढ़े, छोटा सा लड़का जान, मीठी मीठी बातें कहते देख कर बहुत पछताने लगे।

पाँव पकड़ कर महतारी रोने कलपने लगी। तब उद्दालक मुनि मोह से अकुला कर कहने लगे 'क्यों पुत्र! हमको बिसराय चले जाते हो। हम समान कुटिल कठोर निर्दयी दूसरा कौन जग मे होगा जो तुम को शाप दे। क्यों कर पूत उस पुरि मे जावोगे कि जहॉ राजा कहिये तो यम है, वो महाभयावनी वैतरनी नदी बहती है, बाट मे कितने दूर तक सदा अग्नि ऐसी बरसती रहती है कि जहाँ पापी सब जा जा जलते हैं।

नासिकेत ने कहा 'पिता! कुछ खेद मत करो, आपके प्रताप से यम-राज के देश से शीघ्र मैं चला जाऊँगा। तुम से पिता की बात जो सदा सत्य होती आई है, सो मैं झुठाने नहीं सकता हूँ। देखिए, सत्य ही से चन्द्रमा सूर्य्य नित्य भ्रमते हैं। सत्य ही स्वर्ग मे है, नहीं तो बिना उसके नरक भोग होता है। इसलिए यम की पुरी को देखूंगा। पिता! मन को आकुल मत करो। इतना कह माता सहित पिता वो ऋषि को प्रणाम कर झट वहां से अन्तर्धान हो शिव का मन्त्र जपते वो ब्रह्मा का ध्यान करते चले, और बड़े सिद्ध थे। इस कारण पल भर मे यम की वह सभा मे, कि जहाँ अत्री आदि अनेक ऋषि लोग अपनी अपनी पोथी खोल न्याय विचार यमराज से कहते थे, जा पहुँचे।

चौपाई

शिव स्वरूप अति सुन्दर बालक। निपट छोट देखन सुखदायक॥
जटा मुकुट वो भस्म लगाए। जातेहि सकल सभा मन भाय॥

तब सिर नवाय प्रणाम कहि हाथ जोर लगे धर्म्मराज की स्तुति

वैशम्पायन मुनि राजा जनमेजय से कहते हैं, सूर्य्य समान तेजस्वी नासिकेत मुनि को, जिन के जाने से सभा शोचने लगी, देखते ही धर्म्मराज हर्षित हो तुरन्त उठ खड़े भए। आदर मानकर निकट अपने आसन पर ऋषि को बैठाया वो प्यार से समाचार पूछने लगे।

चौपाई

बालहिपन मे बड़ी सिधाई। कहो मुनीश कैसे यह पाई॥
धन्य पिता जिनके तुम भये। तुम्हे देख पातक सब गए॥
कारण कौन यहाँ तुम आए। बार बार मेरे गुण गाए॥
अमृत वाणी बहुत सुनाई। जो कहत सुहावनि अति सुखदाई॥

इतनी यम की बातें सुन नासिकेत ने कहा 'दीनदयाल! अपनी भूल कहाँ तक मैं आप को सुनाऊँ। जब कमतिआ घेरती है तब कैस हू कोई ज्ञानी होय, ज्ञान ठिकाने मे नहीं रहता। एक तो पहले आज्ञा मे चूके ही थे, फिर ज्ञान की चर्चा में ढिठाई कर पिता को बराबर उत्तर दिया। इस अपराध से झट उनके मुख से यह बात निकल गई कि जा, अब ही यमपुरी को देख, तू हमारे साथ रहने योग्य नहीं। सो महाराज पिता का वचन सत्य करने के लिए तुम्हारे समीप आया हूँ। जैसी कुछ आज्ञा होय सो मैं करूँ।

हँस के यम बोले कि महाप्रभु! तुम समान मुनि को, कि जो अब ही योग में मगन हो संसार की माया मोह त्याग जो चाहै सो करे, जहाँ इच्छा आवे, तहाँ चला जाय, देख कर अति आनन्द हमको होता है। कहो क्या मन में है सो वर मुझसे माँगो।

नासिकेत बोले 'महाराज ऐसी दया करते हो तो चित्रगुप्त समेत अपनी सारी पुरी वो धर्मात्मा लोग जहाँ पुण्य का अच्छा फल वो पापी जन नरक भोगते हैं, सो सब स्थान दिखावो। यही मेरे मन की लालसा है।

तुरन्त उसने दूतों को बुलाके कहा कि यह ऋषि बड़े सत्यवादी सत्य-

लोक से पिता के शाप पाय यहाँ आये हैं। जाव सगरे पुर का दर्शन इन्हें करा लावो, जिससे अपना मनोरथ पूरण कर हर्षित हों।

प्रभु की इतनी आज्ञा सुन दूत सब वोंही उनको चित्रगुप्त के पास ले गए और कहा कि धर्म्मावतार, यमराज ने हमको भेजा है। बाप का वचन रखने के लिए ये महापुरुष यहाँ आए जो कुछ कहते हैं सावधान होकर सुनिए।

किंकरों की यह बात सुन चित्रगुप्त ने मुनि से पूछा कि महाराज! तुम्हारे दर्शन से निपट हम सन्तुष्ट भए, कहो क्या अभिलाषा है, सो मैं पूरण करूँ।

नासिकेत बोले, ईश्वर ने अति उत्तम तुमको बनाया है, सब शास्त्र के ज्ञाता, धर्म्म अधर्म के विचार और तेज में देखते हैं कि यम के समान ही हो। और प्राणियों के सकल कर्म्म के जाननिहार बार बार मैं तुमको प्रणाम करता हूँ। पुण्य पाप के कारण से सुख दुख के जो जो स्थान इस नगर मे हैं सो देखने की मेरी इच्छा है। कृपानिधान! दया करके हमारे मनोरथ को पुरावो।

वैशम्पायन कहते हैं, इस प्रकार के विनती किए पर चित्रगुप्त की आज्ञा ले दूतों ने नासिकेत को लेजा स्वर्ग नरक, जहाँ पुण्य पाप के फल पावते हैं, दिखा सुना प्रसन्न कर फिर चित्रगुप्त को कहते हुए धर्म्मराज के पास ले आय खड़ा कर दिया।

महातेजस्वी व समर्थ जान उनके आवते ही उठ खड़े भए और आसन दे बैठाय प्रीति कर पूछने लगे कि कहो नासिकेत ऋषि! चित्रगुप्त समेत सारे पुर वो नाना भाँति के लोग जो अपने अपने कर्म्म का फल भोगते हैं, देख आए? श्रद्धा पूरी भई?

वे बोले 'महाराज! तुम्हारे प्रसाद से सब स्थान से मैं हो आया व माता पिता हमारे शोक से कलपते होंगे, आज्ञा करो तो उनका करूँ।

तब इतना वचन सुनि धर्म्मराज निपट हर्षित भए, वो यह वर दे उनको अपने यहाँ से विदा किया कि आज से तुम अपने योग के बल से सब दुःख से छूट और मृत्यु को जीत युवा स्वरूप हो सदा आनन्द-विहार मे मगन रहो। और जो तुम्हारे कुल मे होगा सो हमारा कबहीं न मुँह देखेगा।

इस प्रकार से यह वर पाय नासिकेत मुनि मन के वेग समान से चले, सो पल भर में जहा माता पिता मारे मोह से दुबरा कर मरने योग्य हो रहे थे, वहाँ अचानक जा पहुँचे, व जाते ही दोनों की प्रदक्षिणा की, वो चरण छू प्रणाम कर सन्मुख जा बैठे।

पत्नी सहित उद्दालक ऋषि पुत्र को कुशल से देख बहुत हर्षित भये वो तुरन्त गोदी मे बैठा अति आनन्द से रो रो बार-बार मुँह चूमने लगे और कहने लगे कि नासिकेत! आज हमारा जन्म सारथ हुआ। हम समान क्रोधी दुराचारी पापी संसार मे कौन होगा जो विना अपराध शाप दे तुमको संकट में डाला। धन्य हो पुत्र, कि इसी देह से यम की पुरी को देख ज्यों के त्यों फिर चले आये। जग मे एक से एक सिद्ध हुए और हैं, पर मैं जानता हूँ कि तुम्हारे गुण वो तेज को कोई दशाँश भी नहीं पा सकता है। कहो कैसे धर्म्मराज का लोक व नगर है। कैसा यम का रूप, किस प्रकार की बाट कि जिससे इतना शीघ्र गये वो आये? क्या खाने पीने को पाया? किस रीति से बात चीत की? और कुछ अचरज देखा सुना हो सो हम से कहो कि सन्देह मिटे, वो जो करने को होय सो मैं करूँ।

नासिकेत बोले, पिता! आप के पुण्य प्रताप से यम के मन्दिर हम गये। सब से संहारकर निहार दूत सहित यमराज, पुण्य पाप के लिखने वाले चित्रगुप्त और भाँति भाँति के देवता अनगणित मैंने देखे। बड़ी स्तुति से रिझा कर यम से यह वर पाया क इसी देह से जाओ, अब तुम्हारा जन्म मरण न होवेगा और युवा वयस सब दिन सुख में भरे पुए रहोगे।

वैशम्पायन कहते हैं, इतने में नासिकेत धर्म्मराज के पुर से हो आया, यह सुन ऋषि लोग वहुत चकित हो अपने अपने आश्रय मे जिस भाँति से तप करते थे, उसी प्रकार से यमलोक के समाचार पूछने के लिए चल खड़े भये। कितने एक तो नीचे माथे ऊपर पॉव किये और कितने एक ही चरण से खडे, कोई एक ही हाथ उठाय, किसी को देखो तो मौन ही व्रत किये, कोई सूखे पत्ते ही खा, कोई निहारी हुये, वहुतेरे संसार सागर पार होने को योग ही मे मगन दिगम्बर शेष वनाये, कठिन से कठिन तपस्या में मन लगाये, जहाँ पिता के समीप नासिकेत बैठे थे वहाँ आन पहुँचे।

देखते ही वे हर्षित हो उठ खड़े भये वो प्रणाम कर मिल भेंट, कुशल क्षेम पूछ, आसन दे एक-एक को अलग-अलग बैठा, पॉव धुला, आचमन करा, अक्षत चन्दन फूल ले सबों को पूजने लगे।

तब समय जान ऋषि लोग वोल उठे कि नासिकेत हम तुम से अति प्रसन्न भये। शिष्टाचार तो जैसा कुछ चाहिये वैसा हो चुका वो होता रहेगा, अब यमलोक की बात सुनाओ। कैसी वह पुरी है कि जहाँ सदा आप धर्म्मराज विराजते रहते हैं? कैसे यम के दूत? क्या वहाँ की रीति रहन, ज्ञान, तपस्या, वो कैसी वहाँ वैतरणी नदी है? और यहाँ जो करते सो वहाँ कैसे भोगते हैं? किस करम के फेर से यम के कोप मे जा पडते हैं? कैसा उनका दण्ड व कैसे चित्रगुप्त हैं जो प्राणियों के धर्म्म कर्म्म लिख धर्म्मराज को जानते हैं? पास मे उनके कौन कौन मुनि लोग रहते हैं? सो सब कृपा कर कहो कि जिससे अति सन्तुष्ट हो तुम्हारे गुण को गावें।

उनकी इतनी बात सुन वीच मे बैठ नासिकेत मुनि कहने लगे कि जितने तुम साधु सन्त हो सो अब सावधान हो सुनो। ऐसी आश्चर्य यह कथा है कि जिस के श्रवण से रोमाँच होते हैं।

(नासिकेतोपाख्यान से)

बाबू मक्खनलाल पंजाबी

भीष्मपितामह का अन्तिम उपदेश और देहान्त

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा जब सब लोग वहाँ बैठ चुके तब श्रीकृष्ण जी बोले हे भीष्मपितामह राजा युधिष्ठिर अपना मन राज्य काज में नहीं लगा कर कहते हैं कि हमने अपने भाई व बन्धु व रिश्तेदार और ब्राह्मणों को महाभारत मे मारा है। जब तक इन पापों से हमारा उद्धार न होगा तब तक राज्य नहीं करेंगे। भीष्मपितामह ने यह वचन सुनते ही राज्यधर्म और आपद्धर्म और दानधर्म व मोक्षधर्म जिसका हाल शांतिपर्व और शाल्यपर्व महाभारत की पोथी मे विस्तारपूर्वक लिखा है राजा युधिष्ठिर से कहिकर संक्षेप मे यह ज्ञान बतलाया 'राजन्! तुम को बाल्यावस्था से दुःख प्राप्त होकर लड़कपन मे पिता तुम्हारे मर गये, जब तुमको कुछ ज्ञान हुआ तब कौरवों ने तुम्हारे जलाने का उपाय करके भीमसेन तुम्हारे भाई के खाने के वास्ते विषका लड्डू बना कर भेजा, फिर तुम्हारा सब राज्य व धन छल से जुआ मे जीत कर तेरह वर्ष का तुमको वनवास दिया सो बन में तुमने अपने चारों भाई और द्रौपदी स्त्री समेत बहुत से दुःख उठाये। कदाचित् कहो कि सच्चे धर्मात्मा मनुष्यों को दुख नहीं होता फिर तुमको जो सत्यवादी व नीतिमान हो किस वास्ते यह सब दुःख पहुँचा। और कहते हैं कि बलवान् मनुष्य को दुःख व शोक नहीं प्राप्त होता सो तुम पांचों भाइयों में अर्जुन व भीमसेन बड़े शूर वीर हैं व द्रौपदी ऐसी पतिव्रता स्त्री तुम्हारे साथ थी फिर उन्होंने किस वास्ते इतना दुःख पाया। सिवाय इसके जहा श्रीकृष्ण जी के नाम की चर्चा रहती है वहां दुःख नहीं होता, सो श्रीकृष्ण जी परब्रह्म का अवतार आप रातदिन तुम्हारी सहायता करते थे फिर तुमने किस वास्ते इतना कष्ट सहा सो हे राजन्! तुम इस बात को विश्वास करके जानो कि परमेश्वर की इच्छानुसार जिसको जैसा होनहार है उससे पृथक् दूसरी बात नहीं होने सकती। दुःख व सुख पिछले जन्मों के संस्कारों से ।

पड़ता है और परमेश्वर की महिमा और भेद को कोई नहीं जानता। कोई मनुष्य किसी किसी काम के वास्ते परिश्रम करके अपने मनोरथ को पहुँच जाता है और बहुत मनुष्य जन्म भर उद्योग और परिश्रम करने मे भी अपने अर्थ को नही पाते, इसलिये सब का उत्तम व मध्यम परमेश्वर की इच्छा पर समझना चाहिये। जो वह चाहते हैं सो होता है इसलिये बुद्धिमान और ज्ञानी उसीको समझना चाहिये जो हर्ष व शोक को बराबर जानकर परमेश्वर की इच्छा पर आनन्द रहता है और जो कोई नारायण जी की आज्ञा पर संतोष न रख कर थोड़े से दुःख पहुँचने मे रो देता है और जब उसको रोने से कुछ नहीं होता तब हार मान कर कहता है कि नारायण जी की इच्छा यों ही थी उसे महामूर्ख जानना चाहिये। हे राजन्! मनुष्य को चिन्ता और परिश्रम करने से कुछ नहीं हो कर सब काम हरीच्छा से होते हैं। जिसको होनहार कहते हैं और यह श्रीकृष्ण जी साक्षात् त्रिलोकीनाथ अपना स्वरूप छिपाकर जगत् मे लीला करते हैं। इनके भेद को कोई नहीं जानता, और यह अर्जुन को अपना भक्त जान कर उसके सारथी हुए थे इनकी महिमा और बड़ाई कहाँ तक तुम से वर्णन करूँ। हे राजन्! जो लोग परमेश्वर की इच्छा पर आनन्द कर अपना जन्म तप व जप व हरिचरणों के ध्यान मे काटते हैं उनके नाम सुनो। उन मे एक महादेव सदा कैलाश पर्वत पर बैठे हुये नारायण जी के तप व ध्यान के सिवाय संसारी व्यवहार से कुछ काम नहीं रखते। दूसरे नारद जी आठों पहर मग्न व आनन्दमूर्ति रहकर जिस तरह उनका मन चाहता है वीणा बजा कर ज्योतिस्वरूप का भजन व गुण गावते फिरते हैं। तीसरे कपिलदेव मुनि दिन-रात श्रीपरंब्रह्म का जप और ध्यान कर के अकेले गङ्गासागर पर बैठे रहते हैं। चौथे शुकदेव जी जन्म से संसारी माया मोह मे नहीं लिपट कर आठों पहर वैकुण्ठ-नाथ की कथा गाया करते हैं। पाँचवें राजा बलि ने यह जाना कि श्यामसुन्दर की इच्छा यों ही है कि राजसिंहासन पर न रहूँ, तब सब राज्य अपना वामन भगवान् को अर्पण कर दिया। हे युधिष्ठिर!

जो कि मैंने अपने भाई और नातेदार और ब्राह्मणों को मार

है सो ऐसा समझना चाहिये। तुम कौन हो तुम्हारा किया कुछ नहीं हो सकता, जो बात नारायण जी ने चाहा सो किया और जब जो चाहेंगे सो करेंगे

इसलिये तुम गोत्रहत्या की चिन्ता अपने मन से दूर करो व भगवान् की इच्छा इसी तरह समझो और यज्ञ करके अपना पाप छुडावो। और प्रजा का पालन करना तुम्हारा धर्म है, कदाचित् राज्य नहीं करोगे तो और पाप तुम को होगा। इतनी कथा सुनकर सूत जी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा जिस समय भीष्मपितामह यह सब ज्ञान व धर्म राजा युधिष्ठिर को समझाते थे उस समय द्रौपदी वहाँ बैठी हुई भीष्म-पितामह की ओर देख रही थी। जब उन्होंने सब धर्म कहते समय यह बात भी कही कि जिस सभा मे धर्म का जानने वाला मनुष्य बैठा हो व उस जगह दूसरा कोई अधर्म की राह कुछ पाप करने की इच्छा करे तो धर्मात्मा मनुष्य को उचित है कि दूसरे को पाप करने से वर्जि देवे। कदाचित् वह मना करने की सामर्थ्य न रखता हो तो वहाँ से उठ जावे और परमेश्वर का ध्यान करे। यह भीष्मपितामह का वचन सुनते ही द्रौपदी ने राजा युधिष्ठिर व अर्जुन की ओर देख पहिले मुस्करा दिया व फिर मन मे लज्जित होकर विचार किया, देखो राजा दुर्योधन की सभा में भीष्मपितामह के सामने अधर्म की राह मेरी यह दुर्दशा हुई और दुश्शासन ने मुझ को विवस्त्र करने वास्ते मेरा चीर खींचा, राजा दुर्योधन ने मेरी अप्रतिष्ठा की। ऐसी दुर्दशा होने पर भी मेरा प्राण नहीं निकला व मैं अपना मुख लोगों को दिखलाती हूँ, ऐसे जीने से मर जाती तो उत्तम था। जब यह समझ कर द्रौपदी बहुत उदास हो मन में अपने को धिक्कार देने लगी तब भीष्मपितामह ने द्रौपदी का मुख मलीन देखते ही उसके हृदय की बात अपने ज्ञान से जान कर कहा 'हे बेटी! तुम अपने मन मे कुछ शोच मत करो, यह सब धिक्कार मेरे ऊपर है, किस कारण कि जिस समय यह सब अधर्म तेरे ऊपर हुआ था, उस समय मैं भी वहाँ बैठा था। जो मैं दुर्योधन को इस अनीति से मना करना चाहता तो उसकी सामर्थ्य नहीं थी जो ऐसा अधर्म तेरे ऊपर करता पर उस

समय मेरे में यह ज्ञान नहीं आया। इसमे बेटी तुम निश्चय जानो कि श्यामसुन्दर की इच्छा इसी तरह पर थी जो बात वह चाहते हैं सो होती हैं। उनकी इच्छा मे किसी की वुद्धि काम नहीं करती व इसका एक कारण और है, सुनो! कदाचित कोई मनुष्य कैसा ही ज्ञानी व महात्मा हो अधर्मी की संगति करने से उसका ज्ञान नष्ट हो कर समय पर काम नहीं आता और जो लोग जिसका अन्न खाते हैं उसके समान उनकी वुद्धि हो जाती है, सो हम उन दिनों राजा दुर्योधन अधर्मी का अन्न खाकर उसके साथ दिनरात रहते थे, इसलिये मुझे उस समय धर्म अधर्म का विचार नहीं हुआ। अब हम को छप्पन दिन दाना पानी छोड़े व वाणशय्या पर पड़े हो चुका इसलिये मेरे तन से राजा दुर्योधन के अन्न का विकार व उसके संग का प्रभाव निकल गया तव मुझे इस वात का ज्ञान हुआ और हे बेटी! इस तरह पर एक इतिहास महाभारत का कहते हैं सुनो। पिछले युग में राजा शिवि के यहां एक परमहंस महात्मा वडे ज्ञानवान रहते थे और राजा उनकी सेवा अच्छी तरह सच्ची प्रीति से करता था। उस राजा के नगर मे एक ब्राह्मण ने अपनी वेटी का गहना सोनार को वनाने के वास्ते दिया सो उस सोनार ने सोना बदल कर पीतल का गहना बनाया व उस पर सोने का मुलम्मा करके ब्राह्मण को दिया, व ब्राह्मण ने बिना जांचे वह गहना सोनार से लेकर अपनी बेटी को पहिनाया। जब वह लड़की उसे पहिन कर अपनी ससुराल गई तब उसके पति ने पीतल का गहना देख कर मन मे खेद माना और उसे अपने घर न रख कर ब्राह्मण के स्थान पर विदा कर दिया व फिर अपने यहाँ नहीं बुलाया। जब उस ब्राह्मण ने बहुत उदास होकर राजा के पास नालिश किया तब राजा शिवि ने सोनार का अपराध सत्य जान-कर सब अन्न व धन उसका लूट के अपने स्थान मे भेजवा दिया। सो एक दिन राजमन्दिर मे उसी अन्न की रसोई तैयार हुई और उसमे परमहंस ने भी भोजन किया इस लिये अधर्मी सोनार का अन्न खाने से परमहंस ने ऐसा विचार किया कि कुछ वस्तु राजा की चोरी करें। यह

कर परमहंस ने रानी का एक जड़ाऊ हार बहुत उत्तम महल

के भीतर से, कि उनकी वहाँ जाने वास्ते मनहाई नहीं थी, चुरा लिया और कपड़े मे लपेट कर अपने पास रख लिया व तीन दिन तक परमहंस राजमन्दिर पर नहीं गया। जब उपवास करने से सोनार का अन्न पेट मे नहीं रहा तब परमहंस को ऐसा ज्ञान उत्पन्न हुआ कि हमने हार चुराया है। इस पाप के बदले नरक भोगना पड़ेगा इस वास्ते अपने अधर्म का दंड इसी तन मे भोग कर लेना उचित है, जिसमे परलोक का डर न रहे। परमहंस यह बात विचार कर वह हार राजा के पास ले गया व अपनी चोरी करने का हाल कह कर बोला, 'हे पृथ्वीनाथ! इस पाप के बदले मेरे दोनों हाथ कटवा डालिये कि हम अपने अधर्म का दण्ड इसी जन्म मे भोग कर लेवैं। यह वचन सुनते ही राजा ने उदास होकर पंडितों से पूछा इसका क्या कारण है जो परमहंस का चित्त उसी दिन से बदल गया कि इन्होंने हार चुराया और आज उस हार को मेरे पर लाकर ऐसी बात कहते हैं। ब्राह्मणों ने अपनी विद्या से विचार कर कहा कि महाराज! जिस रोज परमहंस ने चोरी किया उस दिन किसी अधर्मी का अन्न खाया होगा सो पूछने से राजा को मालूम हुआ कि उसी सोनार पापी का अन्न खाने से परमहंस की बुद्धि बदल गई थी, सो हे द्रौपदी! एक दिन अधर्मी के अन्न खाने से परमहंस महात्मा का ऐसा ज्ञान जाता रहा कि उसने चोरी किया और मैं राजा दुर्योधन अधर्मी का अन्न खाकर उसके साथ रहता था, मुझे उस समय इतना ज्ञान नहीं आया कि दुर्योधन को तेरे ऊपर अधर्म करने से मना करता तो कौन बड़ी बात थी।

सूत जी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि भीष्मपितामह ने यह सब ज्ञान पांडवो और द्रौपदी आदि से कह कर चतुर्भुज रूप परमेश्वर का ध्यान अपने हृदय में रख लिया और श्रीकृष्ण जीकीतरफ़ देखकर बहुत स्तुति करके बोले हे ज्योतिस्वरूप परंब्रह्म आप केवल अपने भक्तों की इच्छा पूर्ण करने के वास्ते अवतार धारण करते हैं, इस तरह आप दया की राह मेरे सामने बैठे रहो जिसमें प्राण छोड़ते समय तुम्हारे चरणों का ध्यान मेरे हृदय में बना रहे। आप सब से पहिले थे व महाप्रलय में भी तुम्हारा नाश न होकर आपकी माया से उत्पत्ति व पालन व नाश तीनों

लोक का होता है व आप उत्पन्न होने व मरने से कुछ प्रयोजन न रख कर केवल पृथवी का भार उतारने व अधर्मी व दुष्टों को मारने के वास्ते अपनी इच्छा से अवतार लेते हैं, व तुम्हारे अवतार लेने का यह कारण है कि जिससे संसारी लोग आपकी सावली सूरति मोहनी मूरति का ध्यान जो सब गुणों से भरी है अपने हृदय मे रक्खें व पापों से छूटकर भवसागर पार उतर जावें, व तुम्हारी दया वा कृपा अपने भक्तों पर इतनी है कि अर्जुन अपने भक्त के प्राण की रक्षा करने के वास्ते उस के सारथी होकर आप आगे बैठे और अर्जुन को अपने पीछे बैठाला। जिस समय मैं चोखे चोखे बाण अर्जुन पर चलाता था उस समय काल भी उन बाणों के सामने होता तो भाग जाता सो आपने अर्जुन की रक्षा करके उन तीरों से बचाया और उन बाणों का घाव अपने अंग पर उठाया, सो मेरे बाणों के घाव से तुम्हारी सांवली सूरति पर रक्त के छींटे मूँगे के समान ऐसे शोभायमान दिखलाई देते थे जिसकी शोभा वर्णन नहीं हो सकती। व आप अर्जुन को इस वास्ते धैर्य देते जाते थे जिससे उसका पराक्रम कम न हो और आपके चन्द्रमुख पर टेढ़े टेढ़े घूंघर वाले बाल कैसे सुन्दर मालूम देते थे जैसे काले काले भंवरे कमल के फूल का रस चूसते हैं, व तुम्हारे मुखारविन्द पर धूर उडकर पड़ने और पसीना होने से कैसा मालूम देता था जैसे फूल पर ओस की बूंद रहती है, और वह पसीना तुम अपने पीताम्बर से पोंछ कर दाहिने हाथ कोडा, बायें हाथ मे रास घोड़ों की लिये हुये रथ को जल्दी से मेरी तरफ दौड़ाते थे, सो मैं चाहता हूं वही स्वरूप आपका मेरी आँखों मे बसा रहे व तुम्हारे कमलरूपी चरण मेरे हृदय से बाहर न जावैं। आप अपने भक्तों का ऐसा मान रखते हैं कि महाभारत होने के पहले तुमने प्रण किया था कि हम शस्त्र नहीं चलाकर केवल रथवानी करके शंख बजावेंगे और हमने प्रतिज्ञा की थ कि आपको लडाई मे विकल करके तुम्हारा प्रण छुडाकर तुम से अस्त्र धराऊँ। सो आपने भक्तपक्ष की राह से विचारा कि मेरा प्रण छूट जावे तो सन्देह नहीं पर मेरे भक्त की प्रतिज्ञा न छूटै। यह
कर जब मैंने अर्जुन के रथ का पहिया तोड कर घोड़ों को मार

डाला और उसके रथकी ध्वजा व धनुष काटके गिरा दिया, तबआप क्रोध करके उसी रथ का टूटा हुआ पहिया उठाकर मेरे मारने के वास्ते दौड़े। उस समय तुम कैसे सुन्दर मालूम देते थे जैसे श्याम घटा बिजुली के साथ, बड़े धूमधाम से चढ़े। दौड़ते समय तुम्हारा पीताम्बर जो ओढ़े थे पृथ्वी पर गिरपड़ा, उसके गिरने का यह कारण है जब आपने प्रतिज्ञा छोड़कर शस्त्र धरा तब पृथ्वी यह समझकर मारे डर के कॉपने लगी कि श्यामसुन्दर ने मेरा भार उतारने के वास्ते अवतार लिया है कहीं वह भी अपना प्रण न छोड़ देवें। पृथ्वी के हृदय की बात तुमने जान कर उसको धैर्य देने के वास्ते अपना पीताम्बर गिरा दिया कि तू मत डर, अपने भक्तों का प्रण रखने के वास्ते मैंने अपनी प्रतिज्ञा छोड़ी है, तेरा भार हम उतारेंगे। जिस तरह कोई मनुष्य अपनी वस्तु दूसरे के बोध करने वास्ते गिरों धर देता है उसी तरह तुमने अपना पीताम्बर गिराकर पृथ्वी को धैर्य दिया, और जब मैं चाहता था कि सब सेना पाण्डवों को मारकर हटा दूं तब तुम मेरे रथ के चारों तरफ आकर अपने अनेक रूप दिखाते थे जिससे मेरा चित्त घबड़ा जावै। जब मैं अनेक रूप देखने से विकल होकर यह नहीं समझता था कि इसमे कौन रूप सत्य और कौन स्वरूप माया का है तब फिर तुम अपने निजरूप से रहिकर मेरी बहुत प्रशंसा करते थे। जब मै उन बातों को समझता हूं तब मुझे बडी लज्जा आती है और अपने को अपराधी समझ कर आप के सामने अपना मुंह नहीं दिखला सकता। आप दयालु अपने भक्तोंको ज्ञान देकर उनका मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं, इस लिये तुमने मुझे जो मरने के निकट पहुँचा था विना बुलाये आनकर अपना दर्शन दिया, नहीं तो मरती समय बड़े बड़े मुनि और ऋषीश्वर और ज्ञानियों को ध्यान मे भी तुम्हारा दर्शन जल्दी नहीं मिलता। किस वास्ते कि अन्त समय मनुष्य को इतना दुःख होता है जितना कष्ट साठ हजार विच्छू के डंक मारने से एक बार होता है। उस लिये उस समय पीड़ा से मनुष्य अचेत होकर उसका चित्त ठिकाने नहीं रहता। उस समय तुम्हारी कृपा होने से जिसका ज्ञान बना रहता है वह आदमी तुम्हारे चरणों का ध्यान हृदय मे रखकर भवसागर पार उतर

जाता है, इस लिये मैं तुमसे यही चाहता हूं कि यह स्वरूप आपका मेरी आंखों के भीतर वसकर तुम्हारे चरणों मे मेरा मन लगा रहे। यह स्तुति करने उपरान्त भीष्मपितामह ने ध्यान ज्योतिस्वरूप का हृदय मे रख श्री श्याममुन्दर और सव ऋषीश्वर और मुनीश्वरों को दण्डवत् करके अपनी आंख वन्द कर लिया और योगाभ्यास के साथ अपना तन छोड़कर वैकुण्ठवास पाया। उस समय देवतों ने आकाश से उन पर फूलों की वर्षा किया।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि भीष्मपितामह के मरने का शोक श्रीकृष्ण व पाण्डवों ने वहुत सा किया। फिर मुरली मनोहर ने राजा युधिष्ठिर को समझाया कि जिस तरह की मृत्यु संसार में भीष्मपितामह ने पाई इस तरह की मृत्यु दूसरे को पाना वहुत दुर्लभ है। संसार मे जिसने तन धारन किया वह एक दिन अवश्य मरेगा, इस वास्ते इनके मरने का शोक छोड़कर हर्ष मनाना चाहिये। जो कोई मनुष्य का तन पाकर संसारी माया मोह मे फंसा रहे व परमेश्वर से विमुख रहिकर जन्म अपना वृथा गँवावै उसके वास्ते रोना उचित है सो भीष्मपितामह संसार मे भक्तिपूर्वक व धर्मसंयुक्त रहिकर शरीर त्यागने उपरान्त वैकुण्ठ को गये इसलिये इनके मरने का शोक करना न चाहिये। यह वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर ने अपने मन को धैर्य दिया व श्याम-सुन्दर की आज्ञा से भीष्मपितामह की क्रिया और कर्म किया।

(सुखसागर मे से)

राजा शिवप्रसाद

रानी भवानी

रानी भवान वङ्गाले के जिले राजशाही में छातिन गाँव मे चौधरी आत्माराम की लडकी थी और नाठौर के ज़मींदार राजा रामजीवन राय के वेटे रामकान्त से व्याही गई। जैसी वह सुन्दर थी वैसी ही सुलक्षण । और धर्म और परोपकार मे निष्ठा उस की लडकपन से रहती

थी। दयाराम नाम राजा रामजीवन का पुराना खैरख्वाह नौकर था। राजा रामकान्त को जमींदारी के काम से गाफ़िल देख कर एक दिन समझाने और नसीहत देने लगा। राजा रामकान्त ने इस बात पर ख़फ़ा हो कर उसे अपने यहाँ से निकाल दिया। वह बड़ा चतुर और होशियार था। बङ्गाले के सूबेदार नवाब अलीवर्दीखां के दरबार मे हाज़िर रहने लगा। एक दिन अर्ज की कि, जहापनाह! राजा रामकान्त ने बत्तीस लाख रुपया घर मे जमा किया और दो लाख का सरपेच मोल लिया है। पर आपका रुपया अदा नहीं करता, बाकी डालता चला आता है और सरकारी मालगुजारी को बातों मे उड़ाना चाहता है। नवाब ने पूछा कि, तू बत्तीस लाख रुपये का उसके घर में निशान दे सकेगा। उसने कहा, बेशक। नवाब ने फिर पूछा कि राजा रामजीवन के कुटुम्ब मे और कोई भी राज के लायक़ है? उस ने कहा, उन का भतीजा देवीप्रसाद बड़ा ईमानदार जमींदारी के काम मे होशियार है। नवाब ने उसी दम हुक्म दिया कि फ़ौज जावे और रामकान्त का घर-बार लूट लेवे और देवीप्रसाद उस की जगह राजा होवे। उस समय की अमलदारी मे प्राय: ऐसा ही अन्धेर मचा करता था। रामकान्त महलों मे था। सुना कि नवाब की फ़ौज घर मे घुस आई और लूट कर रही हैं। इज़्ज़त के खौफ़ से रानी भवानी को साथ ले पनाले की राह बाहर निकला। धन द्रव्य का जरा भी मोह न किया। रानी भवानी एक तो रानी, दूसरे गर्भवती। पावों काहे को कभी चली थी। ज्यों त्यों बैठती उठती रामकान्त के साथ गङ्गा के किनारे तक पहुँची। वहा से एक छोटी सी नाव पर बैठ कर दोनों मुर्शिदाबाद आये और जगत सेठ की शरण ले कर एक छोटी ही हवेली मे रहने लगे। विपत की तकलीफ सहते-सहते घबड़ा गये थे। एक दिन रामकान्त खिड़की मे से दयाराम को पालकी पर जाते हुए देख कर बोला कि, दया भाई! अब इस विपत्ति मे कब तक रखोगे? दयाराम रामकान्त को देखते ही पालकी से उतर कर उसके पास चला आया और अपने मालिक की ऐसी दुर्दशा देख के आंखों मे आँसू भर लाया। बोला कि पचास हज़ार रुपया होय तो तुम को तीन ही दिन मे

फिर राज दिलवा सकता हूँ। राजा ने कहा, मेरे पास इस समय रुपया कहाँ, रानी ने समझाया कि आप न घबड़ाइये और अपना माग .ेवर उतार दिया। दयाराम ने उसे बेंच कर जहाँ देवीप्रसाद रहता था, वहाँ से नवाब की ड्योढ़ी तक जितने बनिये और दूकानदार थे और जो जो नौकर-चाकर नवाब के आसपास और दरवाजे पर हाजिर रहा करते थे सब को पाँच से ले सौ तक रुपये बाँटे और कहा कि आप लोग जिस समक देवीप्रसाद दर्बार को जाय, उसे सुना कर इतना कह देना कि "देखो यह वही अभागा जाता है।" देवीप्रसाद यह सुन कर बड़ा दुखी हुआ और अपना सारा हाल नवाब से कहा। नवाब बोला कि जो तुझे सारी खिलकत अभागा कहती है तो तू जरूर अभागा है, मैं ऐसे अभागे को कभी राजा न बनाऊँगा और फिर दयाराम से पूछा कि रामजीवन राय के कुल मे कौन दूसरा आदमी राज के लायक है? उसने कहा, जहाँपनाह! उनका बेटा ही रामकान्त बड़ा ईमानदार और जमींदारी के काम में होशियार मौजूद है। निदान नवाब ने उसी दम रामकान्त को राजसी की खिलअत बख्शी और देवीप्रसाद को दरबार से निकलवा दिया। तब से राजा रामकान्त दयाराम को बहुत मानता रहा और सोलह बरस राज्य कर के परलोक को सिधारा। रानी भवानी के लड़का कोई न था दो हुये थे, सो दोनों बालकपन ही मे मर गये थे। सारा काम जमींदारी का आप देखती थी और दान और धर्म मे बड़े राजाओं को मात करतीं थी। एक लाख अस्सी हजार रुपया साल तो नकद पण्डित और फकीरों को मुकर्रर था और प्रायः पाँच लाख बीघे के लोगों को धरती माफ करदी थी। घाट, धर्मशाला आदि के सिवाय, तीन सौ हवेली बनारस मे मोल ली थी कि जो लोग वहाँ काशीवास करने को आवें, विना किराये उन मे रहा करें। बहुतेरे आदमी उस के देश के जो काशी मे रहने को आते मकान के सिवाय जन्म भर परिवार समेत खाने पहनने को भी देती। पञ्चकोशी की सारी सड़क मे थोड़ी-थोड़ी दूर पर के ढीहे बनवा कर और कुँए खोदवाकर पेड़ लगवा दिये थे। कई धर्म्मशाला बनवा के तालाब भी तैयार कर दिये थे। सदावर्त

जारी था। काशी मे आठ मन भीगा चना और पचीस मन चावल नित भूखों को बाँटा जाता था और एक सौ आठ स्त्री-पुरुष इच्छा-भोजन करते थे। जब रानी भवानी काशी मे आई, तो कहते है सत्रह सौ नाव उसके साथ थीं उस का रहना अक्सर जिले मुर्शिदाबाद मे गङ्गा के तीर बड़नगर मे होता था और यह बात सोच कर कि सब जगह से सब समय मे भूखे नंगे उस तक नहीं पहुँच सकते और न वह उनको दान दे सकती थी—हुक्म था कि जब कोई भूखे-नंगे आवें तो दो रुपये तक पोद्दार, पाँच रुपये तक खजानची, दस रुपये तक मुत्सद्दी और सौ रुपये तक दीवान बिना पूछे दे दे। जब सौ रुपये से अधिक देना हो तो रानी से पूछे। जमींदारी भर मे ब्राह्मण की कन्या का विवाह-खर्च रानी की सरकार से दिया जाता था। नवरात्र मे दो हजार वस्त्र सधवा और कुमारियों को बँटता और उसके साथ एक-एक सोने की नथ भी दी जाती और पचास हजार रुपया पण्डितों को मिलता। रोगियों के देखने को आठ वैद्य नौकर थे—वे जमींदारी भर मे गाँव-गाँव दवा लेकर घूमा करते। बीमारों की सेवा को उनके साथ नौकर भी रहा करते। रानी भवानी के दान-धर्म मे कैसी निष्ठा थी इसी बात से मालूम हो जायगी। जब तक एक साल इलाकों की आमदनी आने मे देर हुई तो आपने हुक्म दिया कि खत्तों मे जो कुछ गल्ला है बेच डालो और जिस-जिस को जो-जो मन देने को कहा है तुरन्त दे दो। कहते है कि वह गल्ला तीन लाख रुपये को बिका और खजाने मे आने से पहले लोगों को बँट गया। तो भी पूरा न पड़ा, तब अपने गहने बेच कर दिया। पर जिसे देने को कहा था वह वचन न तोड़ा। वह नित चार घड़ी रात रहे उठती थी और ईश्वर का ध्यान और जप करती थी। भोर होने पर स्नान करके दोपहर तक ईश्वर का अर्चन-वन्दन करती और धर्म शास्त्र का श्रवण करती। फिर कुछ जलपान करके अपने हाथ से रसोई बनाती और उसमे से दश ब्राह्मणों को खिला के तब आप भोजन करती। फिर दीवानखाने मे कुशासन पर बैठ कर पान सोपारी खाती और जो कुछ कारदारों को आज्ञा देनी होती सो उन्हें लिखवा देती, तीसरे पहर को धर्म्म शास्त्र सुनती। दो घड़ी दिन रहे कारदार लोग कागज दस्तखत कराने को लाते। रात को फिर चार घड़ी जप करती तब कुछ भोजन करके डेढ़

पहर रात तक राज-काज की सुध लेती और दर्बार करती। बत्तीस वर्ष की अवस्था मे विधवा हुई थी, उन्नासी वर्ष की अवस्था मे परलोक को सिधारी, पर नियम उसका कभी नहीं टूटा।

(वामा मनरंजन से)

स्वामी दयानन्द

आचार-व्यवहार-परीक्षा

(प्रश्न) आर्य्यावर्त्त देशवासियों का आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न २ देशों में जाने से आचार नष्ट हो जाता है वा नहीं ?

(उत्तर) यह बात मिथ्या है क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी सत्यभाषणादि आचरण करना है वह जहाँ कहीं करेगा आचार और धर्मभ्रष्ट कभी न होगा और जो आर्य्यावर्त में रह कर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचारभ्रष्ट कहावेगा, जो ऐसा ही होता तो—

मेरोर्हरेश्च द्वे वर्षे वर्षं हैमवतं ततः।
क्रमेणैव व्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत्।
स देशान् विविधान् पश्यंश्चीनहूणानिषेवितान्॥ [अ०३२७]

ये श्लोक महाभारत शान्तिपर्व मोक्षधर्म मे व्यास-शुक-संवाद मे है— अर्थात् एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय 'अमेरिका' कहते हैं उसमे निवास करते थे। शुकाचार्य्य ने पिता से एक प्रश्न पूछा कि आत्मविद्या इतनी ही है वा अधिक ? व्यास जी ने जानकर उस बात का प्रत्युत्तर न दिया क्योंकि उस बात का उपदेश कर चुके थे। दूसरे की साक्षी के लिये अपने पुत्र शुक से कहा कि हे पुत्र ! तू मिथिलापुरी मे जाकर यही प्रश्न जनक राजा से कर, वह इसका यथायोग्य उत्तर देगा। पिता का वचन सुनकर शुकाचार्य्य पाताल से मिथिलापुरी की ओर चले। प्रथम मेरु अर्थात हिमालय से ईशान, उत्तर और वायव्य (कोण) मे जो देश वसते हैं उनका नाम [illegible] था अर्थात् हरि कहते हैं वन्दर को। उस देश के मनुष्य अब भी

(१)

मर्कटमुख अर्थात वानर के समान भूरे नेत्र वाले होते है। जिन देशों का नाम इस समय 'यूरोप' है उन्हीं को संस्कृत मे हरिवर्ष कहते थे, उन देशों को देखते हुए और जिनको हूण 'यहूदी' भी कहते हैं उन देशों को देख कर चीन मे आये, चीन से हिमालय से मिथिलापुरी को आये। और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पाताल मे अश्वतरी अर्थात् जिसको अग्नियान-नौका कहते हैं उस पर बैठ के पाताल मे जाके, महाराजायुधिष्ठिर के यज्ञ मे उद्दालक ऋषि को ले आये थे। धृतराष्ट्र का विवाह गाँधार जिसको 'कंधार' कहते हैं वहाँ की राजपुत्री से हुआ। माद्री पाण्डु की स्त्री 'ईरान' के राजा की कन्या थी। और अर्जुन का विवाह पाताल में जिसको 'अमेरिका' कहते हैं वहाँ के राजा की लड़की उलोपी के साथ हुआ था। जो देशदेशान्तर, द्वीपद्वीपान्तर मे न जाते होते तो ये सब बातें क्योंकर हो सकतीं? मनुस्मृति मे जो समुद्र मे जाने वाली नौका पर कर लेना लिखा है वह भी आर्य्यावर्त्त से द्वीपान्तर मे जाने के कारण है। और जब महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था उसमे सब भूगोल के राजाओं को बुलाने को निमन्त्रण देने के लिये भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारो दिशाओं मे गये थे जो दोष मानते होते तो कभी न जाते। सो प्रथम आर्य्यावर्त्तदेशीय लोग व्यापार, राजकार्य्य और भ्रमण के लिये सब भूगोल मे घूमते थे। और जो आजकल छूतछात और धर्म नष्ट होने की शंका है वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है। जो मनुष्य देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर मे जाने आने मे शंका नहीं करते वे देशदेशान्तर के अनेक विध मनुष्यों के समागम, रीतिभाँति देखने, अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय, शूरवीर होने लगते और अच्छे व्यवहार का ग्रहण, बुरी बातों के छोड़ने मे तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला जो स्वदेश मे महाभ्रष्ट, म्लेच्छकुलोत्पन्न दुर्जनों के समागम से आचारभ्रष्ट, धर्महीन नहीं होते, किन्तु देशदेशान्तर के उत्तम पुरुषों के साथ समागम मे छूत और दोष मानते हैं!!! यह केवल मूर्खता की बात नहीं तो क्या है? हां, इतना कारण तो है कि जो लोग मांस-भक्षण और मद्यपान करते हैं उनके शरीर और धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं, इस लिये उनके सङ्ग करने से आर्य्यों को भी यह कुलक्षण

न लग जायें यह तो ठीक है। परन्तु जब इनमें व्यवहार और गुण ग्रहण करने में कोई भी दोष वा पाप नहीं है, किन्तु इनके मद्यपानादि दोषों को छोड़ गुणों को ग्रहण करें तो कुछ भी हानि नहीं। जब इनके स्पर्श और देखने से भी मूर्खजन पाप गिनते हैं इसी से युद्ध कभी नहीं कर सकते, क्योंकि युद्ध में उनको देखना और स्पर्श होना अवश्य है। सज्जन लोगों को राग, द्वेष, अन्याय, मिथ्याभाषणादि दोषों को छोड़ निर्वैर, प्रीति, परोपकार, सज्जनतादि का धारण करना उत्तम आचार है। और यह भी समझ लें कि धर्म हमारे आत्मा और कर्तव्य के साथ है। जब हम अच्छे काम करते हैं तो हमको देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर जाने में कुछ भी दोष नहीं लग सकता। दोष तो पाप के काम करने में लगते हैं। हाँ, इतना अवश्य चाहिये कि वेदोक्त धर्म का निश्चय और पाखण्ड का खण्डन करना अवश्य सीखलें जिससे कोई हमको झूठा निश्चय न करा सके।

क्या बिना देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में राज्य या व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है? जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो बिना दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। पाखण्डी लोग यह समझते हैं कि जो हम इनको विद्या पढ़ावेंगे और देशदेशान्तर में जाने की आज्ञा देवेंगे तो ये बुद्धिमान् होकर हमारे पाखण्ड जाल में न फँसने से हमारी प्रतिष्ठा और जीविका नष्ट हो जावेगी, इसीलिए भोजन छादन में बखेड़ा डालते हैं कि वे दूसरे देश में न जा सकें। हाँ इतना अवश्य चाहिए कि मद्यमाँस का ग्रहण कदापि भूलकर भी न करें। क्या सब बुद्धिमानों ने यह निश्चय नहीं किया कि राजपुरुषों में युद्ध समय में भी चौका लगाकर रसोई बनाकर खाना अवश्य पराजय का हेतु है? किन्तु क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं को घोड़े हाथी रथ पर चढ़ या पैदल होके मारते जाना अपनी विजय करना ही आचार और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते २ विरोध करते करते सब तन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगाकर पर हाथ धरे बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो

पकाकर खावें। परन्तु वैसा न होने पर जानो सब आर्य्यावर्त्त देश भर में चौका लगा के सर्वथा नष्ट कर दिया है। हाँ! जहाँ भोजन करें उस स्थान को धोने, लेपन करने, झाड़ लगाने, कूरा कर्कट दूर करने में प्रयत्न अवश्य करना चाहिये न कि अनाचारी व्यक्तियों के समान भ्रष्ट पाकशाला करना।

(प्रश्न) सखरी निखरी क्या है?

(उत्तर) सखरी जो जल आदि में अन्न पकाये जाते और जो घी दूध में पकते हैं, निखरी अर्थात् चोखी। यह भी इन धूर्तों का चलाया हुआ पाखण्ड है क्योंकि जिस में घी-दूध अधिक लगे उसको खाने में स्वाद और उदर में चिकना पदार्थ अधिक जावे इसलिये यह प्रपंच रचा है, नहीं तो जो अग्नि वा काल से पका हुआ पदार्थ पक्का और न पका हुआ कच्चा है। जो पक्का खाना और कच्चा न खाना है यह भी सर्वत्र ठीक नहीं, क्योंकि चणे आदि कच्चे भी खाये जाते हैं।

(प्रश्न) द्विज अपने हाथ से रसोई बना के खावें या शूद्र के हाथ की बनाई खावें?

(उत्तर) शूद्र के हाथ की बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढने, राज्यपालन और पशुपालन खेती व्यापार के काम में तत्पर रहें और शूद्र के पात्र तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के विना न खावें, सुनो प्रमाण—

आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः।

[आपस्तम्ब धर्मसूत्र। प्रपाठक १। पटल २। खण्ड ३। सूत्र ४।]

यह आपस्तम्ब का सूत्र है। आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि सेवा करें, परन्तु वे शरीर वस्त्र आदि से पवित्र रहें, आर्यों के घर में जब रसोई बनावें तब मुख बाँध के बनावें क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास भी अन्न में न पड़े। आठवें दिन क्षौर, नखच्छेदन करावें, स्नान करके पाक बनाया करें, आर्यों को खिला के आप खावें।

(प्रश्न) शूद्र के छुए हुए पके अन्न के खाने में जब दोष लगाते हैं तो उसके हाथ का बनाया कैसे खा सकते हैं?

(उत्तर) यह बात कपोलकल्पित झूठी है, क्योंकि जिन्होंने गुड़, चीनी, घृत, दूध, पिशान, शाक, फल, मूल खाया उन्होंने जानो सब जगत भर के हाथ का बनाया और उच्छिष्ट खा लिया, क्योंकि जब शूद्र, चमार, भङ्गी, मुसलमान, ईसाई आदि लोग खेतों में ईख को काटते छीलते, पील कर रस निकालते हैं, तब मलमूत्रोत्सर्ग करके उन्हीं बिना धोये हाथों से छूते, उठाते, धरते, आधा साठा चूस रस पीके आधा उसी में डाल देते और रस पकाते समय उस रस में रोटी भी पका कर खाते हैं। जब चीनी बनाते हैं तब पुराने जूते कि जिस के तले में विष्ठा, मूत्र गोबर धूली लगी रहती है, उन्हीं जूतों से उसको रगड़ते हैं। दूध में अपने घर के उच्छिष्ट पात्रों का जल डालते, उसी में घृतादि, रखते और आटा पीसते समय भी वैसे ही उच्छिष्ट हाथों से उठाते और पसीना भी आटा में टपकता जाता है इत्यादि, और फल, फूल, मूल, कंद में भी ऐसी ही लीला होती है। जब इन पदार्थों को खाया तो जानो सब के हाथ का खा लिया।

(प्रश्न) फल, फूल, मूल, कंद और रस इत्यादि अदृष्ट में दोष नहीं मानते ?

(उत्तर) वाह जी वाह ! सत्य है कि जो ऐसा उत्तर न देते तो क्या धूल राख खाते, गुड शक्कर मीठी लगती, दूध घी पुष्टि करता है, इस लिये यह मतलबसिन्धु क्या नहीं रचा है ? अच्छा जो अदृष्ट में दोष नहीं तो भंगी व मुसलमान अपने हाथों से दूसरे स्थान में बना कर तुमको आके देवे तो खा लोगे या नहीं ? जो कहो कि नहीं तो अदृष्ट में भी दोष है। हाँ, मुसलमान, ईसाई आदि मद्यमाँसाहारियों के हाथ के खाने में आर्यों को मद्य-मासादि खाना-पीना-अपराध पीछे लग पड़ता है। परन्तु भी आपस में आर्यों का एक भोजन होने में कोई भी दोष नहीं दीखता। जब तक एक मत, एक हानि लाभ, एक सुख दुःख परस्पर न मानें तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है। परन्तु केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तब तक बढ़ती के बदले हानि होती

विदेशियों के आर्य्यावर्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट,

मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेद-विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं, तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पांच सहस्र वर्ष के पहले हुई थी, उनको भी भूल गये। देखो महाभारत युद्ध में सब लोग लड़ाई में सवारियों पर खाते पीते थे, आपस की फूट से कौरव पाडव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है, न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ा कर दुःखसागर में डुबा मारेगा? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्रहत्यारे, स्वदेश विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय।

१०—भक्ष्याभक्ष्य दो प्रकार का होता है एक धर्मशास्त्रोक्त जैसे धर्मशास्त्र मे—

अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च ॥ (मनु० ५ । ५)

द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को भी मलीन, विष्ठा, मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक, फल, मूलादि न खाना।

वर्जयेन्मधु मांसं च ॥ (मनु० २ । १७७)

जैसे अनेक प्रकार के मद्य, गांजा, भांग, अफ़ीम आदि—

(शार्ङ्गधर अ० ४ । श्लो० २१)

जो २ बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उसका सेवन कभी न करें और जितने अन्न सड़े, बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और मद्य मांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य मांस के परमाणुओं ही से पूरित है उनके हाथ का न खावें, जिसमें उपकारक प्राणियों की हिंसा अर्थात् जैसे एक गाय के शरीर से दूध घी, बैल, गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार लाख, पचहत्तर सहस्र छः सौ मनुष्यों को सुख पहुँचता है, वैसे पशुओं को न मारें, न मारने दें। जैसे किसी गाय से बीस सेर और किसी से दो सेर दूध प्रतिदिन होवे, उसका

मध्यभाग ग्यारह सेर प्रत्येक गाय से दूध होती है, कोई गाय अठारह और कोई छः महीने तक दूध देती है उसका मध्य भाग बारह महीने हुए। अब प्रत्येक गाय के जन्म भर के दूध से २४६६० (चौबीस सहस्र नौ सौ साठ) मनुष्य एक बार में तृप्त हो सकते हैं। उसके छः बछियाँ छः बछड़े होते है, उनमें से दो मर जायें तो भी दस रहे उनमें से पाँच बछड़ियों के जन्मभर दूध को मिलाकर १२४८०० (एक लाख चौबीस सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त हो सकते है। अब रहे पाँच बैल वे जन्मभर में ५०००) (पाँच सहस्र) मन अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न कर सकते हैं। उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य तीन पाव खावे तो अढ़ाई लाख मनुष्यों की तृप्ति होती है। दूध और अन्न मिला ३७४८०० (तीन लाख चौहत्तर सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त होते हैं। दोनों संख्या मिला ऐक गाय की एक पीढ़ी से ४७५६०० (चार लाख पचत्तर सहस्र छः सौ) मनुष्य एक बार पालित होते हैं और पीढ़ी-परपीढ़ी बढ़ाकर लेखा करें तो असंख्यात मनुष्यों का पालन होता है। इससे भिन्न [बैल] गाड़ी सवारी भार उठाने आदि कर्मों से मनुष्यों के बड़े उपकारक होते हैं तथा गाय दूध से अधिक उपकारक होती है। और जैसे बैल उपकारक होते हैं वैसे भैंसे भी हैं, परन्तु गाय के दूध घी से जितने बुद्धि वृद्धि से लाभ होते है उतने भैंस के दूध से नहीं, इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा। बकरी के दूध से २५६२० (पच्चीस सहस्र नौ सौ बीस) आदमियों का पालन होता है। वैसे हाथी, घोड़े, ऊँट, भेड, गदहे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं। इन पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा। देखो! जब आर्य्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, तभी आर्य्यावर्त्त वा अन्य भूगोलदेशों में बड़े आनन्द से मनुष्य-आदि प्राणि वर्त्तते थे, क्योंकि दूध, घी बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपायी राज्याधिकारी हुए हैं, तब से क्रमशः आर्य्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है। क्योंकि—

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम्॥ [वृद्धचाणक्य अ० १०।१३]

जब वृक्ष का मूल ही काट दिया जाय तो फल कहाँ से हों ?)

(प्रश्न) जो सभी अहिंसक हो जायें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जायें कि सब गाय आदि पशुओं को मार खायं, तुम्हारा पुरुषार्थ व्यर्थ हो जाय ?

(उत्तर) यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वमनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त कर दें।

(प्रश्न) फिर क्या उनका मांस फेंक दें ?

(उत्तर) चाहे फेंकदें, चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें। वा जला देवें, अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती, किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है, जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छल, कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाश, बुद्धिबल-पराक्रम-वृद्धि और आयु वृद्धि होवे उन तण्डुलादि, गोधूम, फल, मूल, कन्द, दूध, घी, मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं उन २ का सर्वथा त्याग करना और जो जो जिसके लिये विहित हैं उन २ पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।

(प्रश्न) एक साथ खाने में कुछ दोष है वा नहीं ?

(उत्तर) दोष है, क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती। जैसे कुष्ठि आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का रुधिर भी बिगड़ जाता है वैसे दूसरे के साथ खाने से भी कुछ बिगाड़ ही होता है सुधार नहीं। इसी लिये -

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्॥ [मनु० २।५६]

न किसी को अपना जूठा पदार्थ दे और न किसी के भोजन के बीच आप खावे, न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात् हाथ मुख धोये विना इधर उधर जाय।

(प्रश्न) "गुरोरुच्छिष्टभोजनम्" इस वाक्य का क्या अर्थ होगा ?

(उत्तर) इसका यह अर्थ है कि गुरु के भोजन किये पश्चात् जो पृथक् अन्न शुद्ध स्थित है उसका भोजन करना अर्थात् गुरु को प्रथम भोजन करा के पश्चात शिष्य को करना चाहिये।

(प्रश्न) जो उच्छिष्टमात्र का निषेध है तो मक्खियों का उच्छिष्ट सहत, बछड़े का दूध और एकग्रास खाने के पश्चात् अपना भी उच्छिष्ट होता है, पुन उस को भी न खाना चाहिये।

(उत्तर) सहत कथनमात्र ही उच्छिष्ट होता है परन्तु वह बहुत सी ओषधियों का सार ग्राह्य, बछड़ा अपनी मा के बाहिर का दूध पीता है भीतर के दूध को नहीं पी सकता इस लिये उच्छिष्ट नहीं, परन्तु बछड़े के पिये पश्चात् जल से उसकी मा के स्तन धोकर शुद्ध पात्र में दोहना चाहिये और अपना उच्छिष्ट अपने को विकारकारक नहीं होता। देखो! स्वभाव से यह बात सिद्ध है कि किसी का उच्छिष्ट कोई भी न खावे। जैसे आपने नाक, कान, आँख, उपस्थ और गुह्येन्द्रियों के मल मूत्रादि के स्पर्श में घृणा नहीं होती वैसे किसी दूसरे के मल मूत्र के स्पर्श में होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह व्यवहार सृष्टिक्रम से विपरीत नहीं है इस लिये मनुष्यमात्र को उचित है कि किसी का उच्छिष्ट अर्थात् जूठा न खाय।

(प्रश्न) भला स्त्री पुरुष भी परस्पर उच्छिष्ट न खावें ?

(उत्तर) नहीं, क्योंकि उनके भी शरीरों का स्वभाव भिन्न भिन्न है।

(प्रश्न) कहो जी मनुष्यमात्र के हाथ की की हुई रसोई के खाने में क्या दोष है ? क्योंकि ब्राह्मण से लेके चाण्डाल पर्यंत के शरीर हाड मास चमड़े के हैं, जैसा रुधिर ब्राह्मण के शरीर में है वैसा ही चांडाल आदि के, पुनः मनुष्यमात्र के हाथ की पकी हुई रसोई के खाने में क्या दोष है ?

(उत्तर) दोष है क्योंकि जिन उत्तम पदार्थों के खाने पीने से ब्राह्मण और ब्राह्मणी के शरीरमें दुर्गन्धादि दोषरहित रज वीर्य उत्पन्न होताहै, वैसा चांडाल और चांडाली के शरीरके में नहीं, क्योंकि चांडालका शरीर दुर्गंध के से भराहुआ होता है, वैसा ब्राह्मणादि वर्णोंका नहीं इसलिये ब्राह्मणादि

उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और चाण्डालादि नीच, भंगी, चमार आदि का न खाना। भला तुम से कोई पूछेगा कि जैसा चमड़े का शरीर माता, सास, बहिन, कन्या, पुत्रवधू का है वैसा ही अपनी स्त्री का भी है तो क्या माता आदि स्त्रियों के साथ भी एक समान वर्तोगे ? जैसे उत्तम अन्न हाथ और मुख से खाया जाता है वैसे दुर्गन्ध भी खाया जा सकता है, तो क्या मलादि भी खाओगे ? क्या ऐसा भी कोई हो सकता है ?

(प्रश्न) जो गाय के गोबर से चौका लगाते हो अपने गोबर से क्यों नहीं लगाते ? और गोबर के चौके मे जाने से चौका अशुद्ध क्यों नहीं होता ?

(उत्तर) गाय के गोबर से वैसा दुर्गन्ध नहीं होता, जैसा कि मनुष्य के मल से, (गोमय) चिकना होने से शीघ्र नहीं उखड़ता, न कपड़ा बिगड़ता, न मलीन होता है, जैसा मिट्टी से मैल चढ़ता है वैसा सूखे गोबर से नहीं होता। मिट्टी और गोबर से जिस स्थान का लेपन करते हैं वह देखने में अति सुन्दर होता है और जहाँ रसोई बनती है वहाँ भोजन आदि करने से घी, मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है, उससे मक्खी, कीड़ी आदि बहुत से जीव मलिन स्थान के रहने से आते हैं। जो उस मे झाड़ू लेपनादि से शुद्धि प्रतिदिन न की जावे तो जानो पाखाने के समान वह स्थान हो जाता है। इसलिये प्रतिदिन गोबर झाड़ू से सर्वथा शुद्ध रखना। और जो पक्का मकान हो तो जल से धोकर शुद्ध रखना चाहिये। इससे पूर्वोक्त दोषों की निवृत्ति हो जाती है जैसा मियां जी के रसोई के स्थान मे कहीं कोयला, कहीं राख, कहीं लकड़ी, कहीं फूटी हांडी, कहीं जूटी रकेबी, कहीं हाड गोड पड़े रहते हैं और मक्खियों का तो क्या कहना ! वह स्थान ऐसा बुरा लगता है कि जो कोई श्रेष्ठ मनुष्य जाकर बैठे तो उसे वमन होने का भी सम्भव है और उस दुर्गन्ध-स्थान के समान ही वही स्थान दीखता है। भला जो कोई इन से पूछे कि यदि गोबर से चौका लगाने मे तो तुम दोष गिनते हो परन्तु चूल्हे मे कंडे जलाने, उसकी आग से तमाखू पीने, घर की भीति पर लेपन आदि से मियां जी का भी चौका भ्रष्ट हो जाता होगा इस मे क्या सन्देह।

(प्रश्न) चौके मे बैठ के भोजन करना अच्छा वा बाहर बैठ के ?

(उत्तर) जहाँ पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान दीखे वहाँ भोजन करना चाहिये परन्तु आवश्यक युद्धादिकों में तो घोडे आदि यानों पर बैठ के वा खडे २ भी खाना पीना अत्यन्त उचित है।

(प्रश्न) क्या अपने ही हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नही ?

(उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावें तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने मे कुछ भी हानि नहीं, क्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री पुरुष रसोई बनाने, चौका देने, वर्त्तन भांडे माजने आदि बखेड़े मे पडे रहे तो विद्यादि शुभगुणों की वृद्धि कभी नहीं हो सके, देखो ! महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा, ऋषि, महर्षि आये थे, एक ही पाकशाला से भोजन करते थे। जब से ईसाई, मुसलमान आदि के मत-मतान्तर चले, आपस मे वैर विरोध हुआ, उन्हीं ने मद्यपान गोमांसादि का खाना पीना स्वीकार किया, उसी समय मे भोजनादि में बखेडा हो गया। देखो ! क़ाबुल, कंधार, ईरान, अमेरिका, यूरोप आदि देशों के राजाओं की कन्या गान्धारी, माद्री, उलोपी आदि के साथ आर्य्यावर्त्त देशीय राजा लोग विवाह आदि व्यवहार करते थे। शकुनि आदि कौरव पाण्डवों के साथ खाते पीते थे, कुछ विरोध नहीं करते थे क्योंकि उस समय सर्व भूगोल मे वेदोक्त एक मत था, उसी में सबकी निष्ठा थी और एक दूसरे का सुख, दुःख, हानि लाभ आपस मे अपने समान समझते थे। भूगोल मे सुख था। अब तो बहुत से मत होने में बहुत सा दुःख और विरोध बढ गया है। इसका निवारण करना बुद्धिमानों का काम है। परमात्मा सब के मन मे सत्य मत का ऐसा अंकुर डाले कि जिससे मिथ्या मत शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हों, इसमें सब विद्वान् लोग विचार कर विरोधभाव छोड के आनन्द को बढावें।

यह थोडा सा आचार-अनाचार, भक्ष्याभक्ष्य विषय मे लिखा। इस ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध इसी दशवें समुल्लास के साथ पूरा हो गया। इन समुल्लासों मे विशेष खण्डन मण्डन इस लिये नहीं लिखा कि जब तक मनुष्य ... के विचार मे कुछ भी सामर्थ्य नहीं बढाते तब तक स्थूल और

सूक्ष्म खण्डनों के अभिप्राय को नही समझ सकते। इस लिए प्रथम सब को सत्य शिक्षा का उपदेश करके अब उत्तरार्द्ध अर्थात जिसमे चार समुल्लास हैं उसमे विशेष खण्डन मण्डन लिखेंगे। इन चारों मे से प्रथम समुल्लास मे आर्य्यावर्त्तीय मतमतान्तर, दूसरे मे जैनियों के, तीसरे मे ईसाइयों और चौथे मे मुसलमानों के मतमतान्तर के खण्डन मण्डन के विषय मे लिखेंगे और पश्चात् चौदहवें समुल्लास के अन्त मे स्वमत भी दिखलाया जायगा। जो कोई विशेष खण्डन मण्डन देखना चाहे वे इन चारों समुल्लासों मे देखें। परन्तु सामान्य करके कहीं २ दश समुल्लासों मे भी कुछ खण्डन मण्डन किया है। इन चौदह समुल्लासों को पक्षपात छोड़ न्यायदृष्टि से जो देखेगा उसके आत्मा मे सत्य अर्थ का प्रकाश होकर आनन्द होगा और जो हठ, दुराग्रह और ईर्ष्या से देखे सुनेगा उसको इस ग्रन्थ का अभिप्राय यथार्थ विदित होना बहुत कठिन है। इस लिये जो कोई इसको यथावत् न विचारेगा वह इसका अभिप्राय न पाकर गोता खाया करेगा। विद्वानों का यही काम है कि सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग करके परम आनन्दित होते हैं। वे ही गुणग्राहक पुरुष विद्वान् होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलों को प्राप्त होकर प्रसन्नरहते हैं।

जाट और पोप जी

जो वैतरणी के लिये गोदान लेते हैं वह तो पोपजी के घर मे अथवा कसाई आदि के घर मे पहुँचता है। वैतरणी पर गाय नहीं जाती पुनः किस की पूंछ पकड़ कर तरेगा? और हाथ तो यहीं जलाया व गाड़ दिया, फिर पूंछ को कैसे पकड़ेगा? यहा एक दृष्टान्त इस बात मे उपयुक्त है कि—

एक जाट था। उसके घर मे एक गाय बहुत अच्छी और बीस सेर दूध देने वाली थी. दूध उसका बड़ा स्वादिष्ट होता था। कभी २ पोपजी के मुख मे पड़ता था। उसका पुरोहित यही ध्यान कर रहा था कि जब जाट का बुड्ढा बाप मरने लगेगा तब इसी गाय का संकल्प करा लूंगा। कुछ दिनों मे दैवयोग से उसके बाप का मरण समय आया। जीभ बन्द

हो गई और खाट मे भूमि पर ले लिया अर्थात् प्राण छोड़ने का समय आ पहुँचा। उस समय जाट के इष्ट मित्र और सम्बन्धी भी उपस्थित हुए थे। तब पोपजी ने पुकारा कि यजमान! अब तू इसके हाथ से गोदान करा। जाट १०) रुपया निकाल पिता के हाथ मे रखकर बोला, पढ़ो संकल्प! पोपजी बोला, वाह २ क्या बाप बारंबार मरता है? इस समय तो साक्षात् गाय को लाओ जो दूध देती हो, बुड्ढी न हो, सब प्रकार उत्तम हो। ऐसी गौ का दान कराना चहिये।

(जाटजी) हमारे पास तो एक ही गाय है उसके विना हमारे लड़के बालों का निर्वाह न हो सकेगा इसलिये उस को न दूंगा। लो २०) रुपये का संकल्प पढ़ देओ और इन रुपयों से दूसरी दुधार गाय ले लेना।

(पोपजी) वाहजी वाह! तुम अपने बाप से भी गाय को अधिक समझते हो? क्या अपने बाप को वैतरणी नदी मे डुबा कर दुःख देना चाहते हो। तुम अच्छे सुपुत्र हुए?

तब तो पोपजी की ओर सब कुटुम्बी हो गये, क्योंकि उन सब को पहले ही पोपजी ने बहका रक्खा था और उस समय भी इशारा कर दिया। सब ने मिलकर हठ से उसी गाय का दान उसी पोप जी को दिला दिया। उस समय जाट कुछ भी न बोला। उसका पिता मर गया और पोपजी बच्छा सहित गाय और दोहने की बटलोई को ले अपने घर मे गौ बाँध बटलोई धर पुनः जाट के घर आया और मृतक के साथ श्मशान-भूमि मे जाकर दाहकर्म्म कराया। वहाँ भी कुछ कुछ पोपलीला चलाई, पश्चात् दशगोत्र सपिंडी कराने आदि मे भी उसको मूंडा। महाब्राह्मणों ने भी लूटा और भुक्कड़ों ने भी बहुत सा माल पेट मे भरा अर्थात् जब सब क्रिया हो चुकी तब जाट ने जिस किसी के घर से दूध मांग मूंग निर्वाह किया। चौदहवें दिन प्रातःकाल पोपजी के घर पहुँचा। देखे तो गाय दुह, बटलोई भर पोपजी की उठने की तैयारी थी। इतने ही मे जाटजी पहुँचे। उसको देख पोप जी बोला आये! यजमान बैठिये!

(जाटजी) तुम भी पुरोहित जी इधर आओ।

(पोपजी) अच्छा दूध धर आऊं।

(जाटजी) नहीं रे, दूध की बटलोई इधर लाओ। पोपजी विचारे जा बैठ और बटलोई सामने धर दी।

(जाटजी) तुम बड़े झूठे हो।

(पोपजी) क्या झूठ किया।

(जाटजी) कहो तुमने गाय किस लिये ली थी?

(पोपजी) तुम्हारे पिता के वैतरणी नदी तरने के लिये।

(जाटजी) अच्छा तो तुमने वैतरणी नदी के किनारे गाय क्यों नहीं पहुंचाई? हमतो तुम्हारे भरोसे पर रहे और तुम अपने घर बाँध बैठे। न जाने मेरे बाप ने वैतरणी मे कितने गोते खाये होंगे?

(पोपजी) नहीं रे, वहाँ इस दान के पुण्य के प्रभाव से दूसरी गाय ने बन कर उसको पार उतार दिया होगा।

(जाटजी) वैतरणी नदी यहाँ से कितनी दूर और किधर की ओर है?

(पोपजी) अनुमान से कोई तीस क्रोड़ कोश दूर है क्योंकि उञ्चास कोटि योजन पृथिवी है और दक्षिण नैऋत्य दिशा मे वैतरणी नदी है।

(जाटजी) इतनी दूर से तुम्हारी चिट्ठी वा तार का समाचार गया हो उसका उत्तर आया हो कि वहाँ पुण्य की गाय बन गई, अमुक के पिता को पार उतार दिया दिखलाओ।

(पोपजी) हमारे पास गरुडपुराण के लेख के विना डाक वा तारवर्की दूसरी कोई नहीं।

(जाटजी) इस गरुडपुराण को हम सच्चा कैसे मानें?

(पोपजी) जैसे सब मानते हैं।

(जाटजी) यह पुस्तक तुम्हारे पुरुषाओं ने तुम्हारे जीविका के लिये बनाया है क्योंकि पिता को विना अपने पुत्रों के कोई प्रिय नहीं। जब मेरा पिता मेरे पास चिट्ठी पत्री वा तार भेजेगा तभी मै वैतरणी नदी के किनारे गाय पहुंचा दूंगा और उनको पार उतार पुन. गाय को घर मे ले आ दूध को मै और मेरे लड़के वाले पिया करेंगे, लाओ! दूध की भरी हुई बटलोई। गाय, बछड़ा लेकर जाटजी अपने घर को चला।

(पोपजी) तुम दान देकर लेते हो तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा।

(जाटजी) चुप रहो, नहीं तो तेरह दिन लों दूध के विना जितना दुःख हमने पाया है सब कसर निकाल दूंगा, तब पोपजी चुप रहे और जाटजी गाय बछड़ा ले अपने घर पहुँचे।

जब ऐसे ही जाटजी के से पुरुष हों तो पोपलीला संसार मे न चले।

(सत्यार्थप्रकाश से)

---

(४)

नकटा सम्प्रदाय

कोई एक चोरी करता पकडा गया था। न्यायधीश ने उस का नाक कान काट डालने का दण्ड दिया। जब उस की नाक काटी गई तब वह धूर्त नाचने, गाने और हंसने लगा। लोगों ने पूछा कि तू क्यों हँसता है? उसने कहा कुछ कहने की बात नहीं है। लोगों ने पूछा ऐसी कौन सी बात है? उस ने कहा बड़ी भारी अश्चर्य की बात है, हमने ऐसी कभी नही देखी। लोगों ने कहा कहो, क्या बात है? उसने कहा कि मेरे सामने साक्षात् चतुर्भुज नारायण खड़े हैं, मै देख कर बड़ा प्रसन्न हो कर नाचता गाता, अपने भाग्य को धन्यवाद देता हूँ कि मै नारायण का साक्षात् दर्शन कर रहा हूं। लोगों ने कहा हम को दर्शन क्यों नही होता? वह बोला नाक की आड हो रही है, जो नाक कटवा डालो तो नारायण दीखे, नहीं तो नही। उन मे से किसी मूर्ख ने चाहा कि नाक जाय तो जाय परन्तु नारायण का दर्शन अवश्य करना चाहिये। उसने कहा कि मेरी भी नाक काटो, नारायण को दिखलाओ। उसने उसकी नाक काट कर कान मे कहा कि तूभी ऐसा ही कर, नहीं तो मेरा और तेरा उपहास होगा। उसने भी समझा कि अब नाक तो आती नही, इसलिये ऐसा ही कहना ठीक है, तब तो वह भी वहाँ उसी के समान नाचने, कूदने, गाने, बजाने, हंसने कहने लगा कि मुझ को भी नारायण दीखता है। वैसे होते २ एक मनुष्यों का झुण्ड हो गया और बड़ा कोलाहल मचा और अपने

सम्प्रदाय का नाम "नारायणदर्शी" रखा। किसी मूर्ख राजा ने सुना, उन को बुलाया। जब राजा उन के पास गया तब तो ये बहुत कुछ नाचने, कूदने, हंसने लगे। तब राजा ने पूछा यह क्या बात है ? उन्होंने कहा कि साक्षात् नारायण हम को दीखता है।

राजा—हम को क्यों नहीं दीखता ?

नारायणदर्शी—जब तक नाक है तब तक नहीं दीखेगा और जब नाक कटवा लोगे तब नारायण प्रत्यक्ष दीखेंगे। उस राजा ने विचारा कि यह बात ठीक है।

राजा ने कहा—ज्योतिषी जी मुहूर्त्त देखिये।

ज्योतिषी ने उत्तर दिया—जो हुक्म, अन्नदाता, दशमी के दिन प्रातःकाल आठ बजे नाक कटवाने और नारायण के दर्शन करने का बड़ा अच्छा मुहूर्त्त है।

वाह रे पोप जी! अपनी पोथी में नाक काटने कटवाने का भी मुहूर्त्त लिख दिया। जब राजा की इच्छा हुई और उन सहस्र नकटों के सीधे बाँध दिये तब तो वे बड़े ही प्रसन्न हो कर नाचने, कूदने और गाने लगे। यह बात राजा के दीवान आदि कुछ २ बुद्धि वालों को अच्छी न लगी। राजा के एक चार पीढ़ी का बूढ़ा ९० वर्ष का दीवान था। उस को जा कर उस के परपोते ने, जो कि उस समय दीवान था, वह बात सुनाई। तब उस वृद्ध ने कहा कि वे धूर्त्त हैं। तू मुझ को राजा के पास ले चल, वह ले गया। बैठते समय राजा ने बड़े हर्षित हो के उन नाककटों की बातें सुनाई। दीवान ने कहा कि सुनिये महाराज! ऐसे शीघ्रता न करनी चाहिये। बिना परीक्षा किये पश्चाताप होता है।

राजा—क्या ये सहस्र पुरुष झूठ बोलते होंगे ?

दीवान—झूठ बोलें वा सच, बिना परीक्षा के सच झूठ कैसे कह सकते हैं ?

राजा—परीक्षा किस प्रकार करनी चाहिये ?

दीवान—विद्या, सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

राजा—जो पढ़ा न हो वह परीक्षा कैसे करे ?

दीवान—विद्वानों के संग से ज्ञान की वृद्धि कर के।

राजा—जो विद्वान न मिले तो ?

दीवान—पुरुषार्थी को कोई बात दुर्लभ नहीं है।

राजा—तो आप ही कहिये कैसा किया जाय ?

दीवान—मैं बुड्ढा हूं और घर बैठा रहता हूँ और अब थोड़े दिन जीऊँगा भी। इसलिये प्रथम परीक्षा मैं कर लेऊँ तत्पश्चात् जैसा उचित समझें वैसा कीजियेगा।

राजा—बहुत अच्छी बात है। ज्योतिषी जी दीवान जी के लिये मुहूर्त देखो।

ज्योतिषी—जो महाराज की आज्ञा। यही शुक्ल पञ्चमी १० बजे का मुहूर्त अच्छा है।

जब पञ्चमी आई तब राजा जी के पास आठ बजे बुड्ढे दीवान जी ने राजा जी से कहा कि सहस्र दो सहस्र सेना ले के चलना चाहिये।

राजा—वहाँ सेना का क्या काम है ?

दीवान—आप को राजव्यवस्था की खबर नहीं है। जैसा मैं कहता हूँ वैसा कीजिये।

राजा—अच्छा जाओ भाई सेना को तैयार करो।

साढ़े नौ बजे सवारी कर के राजा सब को ले कर गया। उन को देख कर वे नाचने और गाने लगे। जा कर बैठे। उन के महन्त जिसने यह सम्प्रदाय चलाया था जिस की प्रथम नाक कटी थी उस को बुला कर कहा कि आज हमारे दीवान जी को नारायण का दर्शन कराओ। उसने कहा अच्छा, दश बजे का समय जब आया तब एक थाली मनुष्य ने नाक के नीचे पकड़ रखी। उसने पैना चाकू ले नाक काट थाली में डाल दी और दीवान जी की नाक से रुधिर की धार छूटने लगी। दीवान जी का मुख मलिन पड़ गया। फिर उस धूर्त ने दीवान जी के कान में [illegible] किया कि आप भी हँस कर सब से कहिये कि मुझ को [illegible] दीखता है। अब नाक कटी हुई नहीं आवेगी। जो ऐसा न

कहोगे तो तुम्हारा बडा ठट्ठा होगा, सब लोग हँसी करेंगे । वह इतना कह चलग हुआ और दीवान जी ने अँगोछा हाथ से ले नाक की आड मे लगा दिया। जब दीवान जी से राजा ने पूछा, कहिये नारायण दीखता वा नहीं? दीवान जी ने राजा के कान मे कहा कि कुछ भी नहीं दीखता, वृथा इस धूर्त ने सहस्रों मनुष्यों को खराब किया। राजा ने दीवान से कहा अब क्या करना चाहिये? दीवान ने कहा इन को पकड के कठिन दण्ड देना चाहिये जब लों जीवें तब लों बन्दीघर मे रखना चाहिये और इस दुष्ट को कि जिसने इन सब को बिगाडा है गधे पर चढा, बड़ी दुर्दशा के साथ मारना चाहिये। जब राजा और दीवान कान मे बातें करने लगे तब उन्होने डरके भागने की तैयारी की, परन्तु चारों ओर फ़ौज ने घेरा दे रखा था, न भाग सके। राजा ने आज्ञा दी कि सब को पकड बेड़ियाँ डाल दो और इस दुष्ट का काला मुख कर गधे पर चढा, इस के कण्ठ मे फटे जूतों का हार पहिना, सर्वत्र घुमा, छोकरों से धूल राख इस पर डलवा, चौक २ मे जूतों से पिटवा, कुत्तों से नुचवा, मरवा डाला जावे। जो ऐसा न होवे तो पुनः दूसरे भी ऐसा काम करते न डरेंगे। जब ऐसा हुआ तब नाककटे का सम्प्रदाय बन्द हुआ। यह सम्प्रदायों की लीला है।

(सत्यार्थ प्रकाश से)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(१)

चंद्रगुप्त मौर्य

'मुद्राराक्षस' इस नाटक के विषय मे विलसन साहिब लिखते हैं कि यह नाटक और नाटकों से अति विचित्र है, क्योंकि इससे सम्पूर्ण राजनीति के व्यवहारों का वर्णन है। चन्द्रगुप्त (जो यूनानी लोगों का सेन्ड्रोकोतस है) और पाटलिपुत्र, (जो यूनप की पालीबोत्तरा है) के

वर्णन का ऐतिहासिक नाटक होने के कारण यह विशेष दृष्टि देने के योग्य है।

इस नाटक का कवि विशाखदत्त, महाराज पृथु का पुत्र और सामन्त वटेश्वरदत्त का पौत्र था। इस के लिखने से अनुमान होता है कि दिल्ली के अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज चौहान ही का पुत्र विशाखदत्त है, क्योंकि अन्तिम श्लोक से विदेशी शत्रु की जय की ध्वनि पाई जाती है, भेद इतना ही है कि रायसेन ने पृथ्वीराज के पिता का नाम सोमेश्वर और दादा का आनन्द लिखा है। मै यह अनुमान करता हूँ कि सामन्त वटेश्वर इतने बड़े नाम को शीघ्रता में या लघु करके कहें तो सोमेश्वर हो सकता है और सम्भव है कि चन्द ने भाषा मे सामन्त वटेश्वर को ही सोमेश्वर लिखा हो।

मेजर विल्फर्ड ने मुद्राराक्षस के कवि का नाम गोदावरीतीर निवासी अनन्त लिखा है, परन्तु यह केवल भ्रममात्र है। जितनी प्राचीन पुस्तकें उत्तर वा दक्षिण में मिलीं, किसी मे अनन्त का नाम नहीं मिला है।

इस नाटक पर वटेश्वर मैथिल पण्डित की एक टीका भी है। कहते हैं कि गुहसेन नामक किसी अपर पण्डित की भी एक टीका है, किन्तु देखने मे नहीं आई। महाराज तंजोर के पुस्तकालय मे व्यासराज यज्वा की एक टीका और है।

चन्द्रगुप्त ॐ की कथा विष्णुपुराण, भागवत आदि पुराणों मे और बृहत्कथा मे वर्णित है। कहते हैं कि विकटपल्ली के राजा चंद्रहास का उपाख्यान लोगों ने इन्हीं कथाओं से निकाल लिया है।

महानन्द अथवा महापद्मनन्द भी शूद्रा के गर्भ से था, और कहते हैं कि चन्द्रगुप्त इस की एक नाइन स्त्री के पेट से पैदा हुआ था। यह पूर्व-

---

ॐ प्रियदर्शी, प्रियदर्शन, चन्द्र, चन्द्रगुप्त, श्रीचन्द्र, चंद्रश्री, मौर्य यह सब चंद्रगुप्त के नाम हैं, और चाणक्य, विष्णुगुप्त, द्रोमिल वा द्रोहिण, अंशुल, कौटिल्य, सब चाणक्य के नाम हैं।

पीठिका में लिख आए हैं कि इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र थी। उस पाटलिपुत्र (पटने) के विषय मे यहाँ कुछ लिखना अवश्य है। सूर्यवंशी सुदर्शन × राजा की पुत्री पाटली ने पूर्व मे इस नगर को वसाया। कहते हैं कि कन्या को वंध्यापन के दुःख और दुर्नाम से छुड़ाने को राजा ने एक नगर बसाकर उस का नाम पाटलिपुत्र रक्खा था। वायुपुराण मे "जरासन्ध के पूर्वपुरुष वसु राजा ने विहार प्रान्त का राज्य संस्थापन किया" यह लिखा है। कोई कहते है कि "वेदों मे जिस वसु के यज्ञ का वर्णन है वही राज्यगिरि राज्य का संस्थापक है।" (जो लोग चरणाद्रि को राज्यगृह का पर्वत वतलाते हैं उन को केवल भ्रम है।) इस राज्य का प्रारम्भ चाहे जिस तरह हुआ हो पर जरासन्ध ही के समय से यह प्रख्यात हुआ। मार्टिन साहव ने जरासन्ध ही के विषय मे एक अपूर्व कथा लिखी है। वह कहते हैं कि जरासन्ध दो पहाड़ियों पर पैर रख कर, द्वारिका मे जब स्त्रिया नहाती थीं तो ऊंचा होकर उन को घूरता था। इसी अपराध पर श्रीकृष्ण ने उस को मरवा डाला ! ! !

मगध शब्द मग से बना है। कहते हैं कि "श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब ने शाकद्वीप से मग जाति के ब्राह्मणों को अनुष्ठान करने को बुलाया था और वे जिस देश मे वसे उस की मगध संज्ञा हुई।" जिन अंगरेज विद्वानों ने 'मगध देश' शब्द को मद्ध (मध्यदेश) का अपभ्रंश माना है उन्हे शुद्ध भ्रम हो गया है जैसा कि मेजर विल्फर्ड पालीवोत्रा को राजमहल के पास गंगा और कोसी के संगम पर वतलाते और पटने का शुद्ध नाम पद्मावती कहते हैं। यों तो पालीवोत्रा पाटलिपुत्र ही है। सोन के किनारे सावलीपुर एक स्थान है जिस का शुद्ध नाम महावलीपुर है। महावली नन्द का नामान्तर भी है, इसी से और वहाँ प्राचीन चिन्ह मिलने से कोई कोई शंका करते हैं कि वलीपुत्र का पालीवोत्रा अपभ्रंश है, किन्तु यह भी भ्रम ही है। राजाओं के नाम से अनेक ग्राम वसते हैं इस मे कोई हानि नहीं, किन्तु इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र ही थी।

× सुदर्शन, सहस्रवाहु अर्जुन का भी नामान्तर था. किसी २ ने भ्रम से पाटली को शूद्रक की कन्या लिखा है।

कुछ विद्वानों का मत है कि मग लोग मिश्र से आए और यह आकर इसिरिस और ओसिरिस नामक देव और देवी की पूजा प्रच लित की। यह दोनों शब्द ईश और ईश्वरी के अपभ्रंश बोध होते हैं किसी पुराण में "महाराज दशरथ ने शाकद्वीपियों को बुलाया" यह लिख है। इस देश में पहले कोल और चेरू (चोल) लोग बहुत रहते थे शुनक और आजक इस वंश मे प्रसिद्ध हुए। कहते हैं कि इन दोनों के लड कर ब्राह्मणों ने निकाल दिया। इसी इतिहास से भुइंहार जाति क भी सूत्रपात होता है और जरासन्ध के यज्ञ से भुइंहारों की उत्पत्ति वाल किम्वदन्ती इसका पोषण करती है। बहुत दिन तक ये युद्धप्रिय ब्राह्मण यहाँ राज्य करते रहे। परन्तु एक जैन पण्डित 'जो ८०० वर्ष ईसामसीह के पूर्व हुआ है' लिखता है कि इस देश के प्राचीन राजा को मग नामक राजा ने जीत कर निकाल दिया। कहते हैं कि बिहार के पास बारागंज में इसके किले का चिन्ह भी है। यूनानी विद्वानों और वायु पुराण के मत से उदयाश्व ने मगधराज्य संस्थापन किया। इसका समय ५५० ई० पू० बतलाते हैं और चन्द्रगुप्त को इस से तेरहवां राजा मानते हैं। यूनानी लोगों ने सोन का नाम Erannoboas (इरन्नोवाओस) लिखा है, यह शब्द हिरण्यवाह का अपभ्रंश है। मेगस्थनीस अपने लेख में पटने के नगर को ८० स्टेडिया (आठ मील) लम्बा और १५ चौडा लिखता है, जिस से स्पष्ट होता है कि पटना पूर्वकाल ही से लम्बा नगर है* उस

---

* जिस पटने का वर्णन उस काल के यूनानियो ने उस समय इस धूम से किया है उसकी वर्त्तमान स्थिति यह है। पटने का जिला २४° ५८' से ५० ४२' लैटि० और ८४° ४४। से ८६° ०५' लौंगि० पृथ्वी २१०१ मील समचतुष्कोण है। १५५८६६३८ मनुष्य संख्या। पटना जिले की सीमा उत्तर गंगा, पश्चिम सोन, पूर्व में मुंगेर का ज़िला और दक्षिण में गया का ज़िला। नगर की बस्ती में अब सवा तीन लाख मनुष्य और बावन हज़ार घर हैं। साढे साठ लाख मन के लगभग बाहिर से प्रतिवर्ष यहाँ माल आता और पाँच लाख मन के लगभग जाता है। हिंदुओं में छः जातियाँ यहां विशेष हैं। यथा एक लाख अस्सी हज़ार ग्वाला, एक लाख सत्तर हज़ार , एक लाख सत्रह भुइंहार, पचासी हज़ार चमार, अस्सी हजार कोइरी और आठ ... अब दो लाख के आस पास मुसलमान पटने के जिले में बसते हैं।

ने उस समय नगर के चारों ओर ३० फुट गहरी खाई, फिर ऊँची दीवार और उसमे ५७० बुर्ज और ६ फाटक लिखे हैं। यूनानी लोग जो इस देश को (Prassi) प्रास्सि कहते है वह पलासी का अपभ्रंश बोध होता है, क्योंकि जैनग्रन्थों मे उस भूमि के पलाश-वृक्षों से आच्छादित होने का वर्णन देखा गया है।

जैन और बौद्धों के इस देश से और भी अनेक सम्बन्ध हैं। मसीह से छः सौ बरस पहले बुद्ध पहले पहल राजगृह ही मे उदास होकर चले गए थे। उस समय इस देश की बडी समृद्धि लिखी है और राजा का नाम बिम्बसार लिखा है। (जैन लोग अपने बीसवें तीर्थङ्कर सुव्रत स्वामी का राजगृह मे कल्याण भी मानते हैं)। बिम्बसार ने राजधानी के पास ही इनके रहने को कलद नामक बिहार भी बना दिया था। फिर अजातशत्रु और अशोक के समय मे भी बहुत से स्तूप बने। बौद्धों के बडे बड़े धर्मसमाज इस देश मे हुए। उस काल मे हिन्दू लोग इस बौद्ध धर्म के अत्यन्त विद्वेषी थे। क्या आश्चर्य्य है कि बुद्धों के द्वेष ही से मगध देश को इन लोगों ने पवित्र ठहराया हो और गौतम की निन्दा ही के हेतु अहल्या की कथा बनाई हो।

भारतनक्षत्र राजा शिवप्रसाद साहब ने अपने इतिहास तिमिरनाशक के तीसरे भाग मे इस समय और देश के विषय मे जो लिखा है वह हम पीछे प्रकाशित करते हैं। इस से बहुत सी बातें उस समय की स्पष्ट हो जायंगी।

प्रसिद्ध यात्री हियान सांग सन ६३७ ई० मे जब भारतवर्ष मे आया था तब मगध देश हर्षवर्द्धन नामक कन्नौज के राजा के अधिकार मे था। किन्तु इतिहासलेखक सन् २०० से ४०० तक बौद्ध कर्णवंशी राजाओं को मगध का राजा बतलाते हैं और अन्ध्रवंश का भी राज्यचिन्ह सम्भलपुर मे दिखलाते हैं।

सन ११९२ ई० मे पहले इस देश मे मुसलमानों का राज्य हुआ। उस समय पटना, बनारस के बन्दावत राजपूत राजा इन्द्र दमन के अधिकार मे था। सन १२२५ मे अलतिमश ने गयासुद्दीन को मगध प्रान्त का

स्वतंत्र सूबेदार नियत किया। इसके थोड़े ही काल पीछे फिर हिन्दू लोग स्वतन्त्र हो गए। फिर मुसलमानों ने लड़ कर अधिकार किया सही, किन्तु झगड़ा नित्य होता रहा। यहाँ तक कि सन् १३९३ मे हिन्दू लोग स्वतंत्र रूप में फिर यहाँ के राजा हो गए और तीसरे महमूद की बड़ी भारी हार हुई। यह दो सौ वरस का समय भारतवर्ष का पैलेस्टाइन का समय था। इस समय मे गया के उद्धार के हेतु कई महाराणा उदयपुर के देश छोड कर लडने आए*। ये और पंजाब से लेकर गुजरात दक्षिण तक के हिन्दू मगध देश मे जाकर प्राण त्याग करना बहुत पुण्य समझते थे। प्रजापाल नामक एक राजा ने सन १४०० के लगभग बीस वरस मगध देश को स्वतन्त्र रक्खा। किन्तु आर्य्यमत्सरी दैव ने यह स्वतन्त्रा स्थिर नहीं रक्खी और पुण्यधाम गया फिर मुसलमानों के अधिकार मे चला गया। सन १४७८ तक यह प्रदेश जौनपुर के बादशाह के अधिकार मे रहा। फिर बहलूलवंश ने इस को जीत लिया था, किन्तु १४९१ मे सनशाह ने फिर जीत लिया। इसके पीछे बंगाल के पठानों से और जौनपुर वालों से कई लड़ाई हुई और १४९४ मे दोनों राज्यों मे एक सुलहनामा हो गया। इसके पीछे सूर लोगों का अधिकार हुआ

---

*गया के भूगोल में परिडत शिवनारायण त्रिवेदी भी लिखते हैं—"औरङ्गाबाद से तीन कोस अग्निकोण पर देव बड़ी भारी वस्ती है। यहाँ श्री भगवान् सूर्यनारायण का बड़ा भारी संगीन पश्चिम रुख का मंदिर देखने से बहुत प्राचीन जान पड़ता है। यहाँ कातिक और चैत की छठ को बड़ा मेला लगता है। दूर २ के लोग यहाँ आते और अपने लड़कों को मुण्डन छेदन आदि की मनौती उतारते हैं। मंदिर से थोड़ी दूर दक्खिन बाजार के पूरब ओर सूर्य्यकुंड का तालाब है। इस तालाब से सटा हुआ और एक कच्चा तालाब है, उसमें कमल बहुत फूलते हैं। देव राजधानी है। यहाँ के राजा महाराजा उदयपुर के घराने के सढ़ियार राजपूत हैं। इस घराने के लोग सिपाहगरी के काम में बहुत प्रसिद्ध होते आये हैं। यहाँ के महाराज श्रीजयप्रकाशसिंह के० सी० एस० आई० बड़े शूर, सुशील और उदार मनुष्य थे। यहाँ ... दक्खिन कञ्चनपुर में राजा साहिब का बाग और मकान देखने लायक

और शेरशाह ने बिहार छोड़ कर पटने को राजधानी किया। इनों के पीछे क्रमान्वय से (१५७५ ई०) यह देश मुगलों के अधीन हुआ और अन्त मे जरासन्ध और चन्द्रगुप्त की राजधानी पवित्र पाटलिपुत्र ने आर्य वेश और आर्य नाम परित्याग कर के औरङ्गजेब के पोते अजीमशाह के नाम पर अपना नाम अजीमाबाद प्रसिद्ध किया। (१६९७ ई०) बंगाले के सूबेदारों मे सब से पहले सिराजुद्दौला ने अपने को स्वतन्त्र समझा था, किन्तु १७५७ ई० की पलासी की लड़ाई मे मीरजाफर अङ्गरेजों के बल से बिहार, बंगाल और उड़ीसा का अधिनायक हुआ। किन्तु अन्त मे जगद्विजयी अङ्गरेजों ने सन १७६३ मे पूर्व मे पटना पर अधिकार करके दूसरे बरस बकसर की प्रसिद्ध लड़ाई जीत कर स्वतन्त्र रूप के सिंह चिह्न की ध्वजा की छाया के नीचे इस देश के प्रांत मात्र को हिन्दुस्तान के मान चित्र मे लाल रङ्ग से स्थापित कर दिया।

जस्टिन कहता है—सन्द्रकुत्तस महापराक्रमी था। असंख्य सैन्य-संग्रह कर के विरुद्ध लोगों का इस ने सामना किया था। डियोडारस सिक्यूलस कहता है—प्राच्यदेश के राजा क्सेंड्रमस के पास २०००० अश्व, २०००० पदाति, २००० रथ और ४००० हाथी थे। यद्यपि यह क्सेंड्रमस शब्द चन्द्रमा का अपभ्रंश है, किन्तु कई भ्रान्त यूनानियों ने नन्द को भी इसी नाम लिखा है। क्विन्तस करशिअस लिखता है—चन्द्रमा के क्षौरकार पिता ने पहले मगध राज को फिर उस के पुत्रों को

रता है। देव से तीन कोसपूरब उमगा एक छोटी सी बस्ती है उसके पास पहाड़ के ऊपर देव के सूर्यमन्दिर के ढंग का एक महादेव का मन्दिर है। पहाड़ के नीचे एक टूटा गढ़ भी देख पड़ता है। जान पड़ता है कि पहले राजा देव के घराने के लोग यहां रहते थे। पीछे देव में बसे। देव और उमगा दोनों इन्हीं की राजधानी थी, इससे दोनों नाम साथ ही बोले जाते है (देवमूंगा) तिल संक्रान्ति को उमगा में बड़ा मेला लगता है।" इसी से स्पष्ट हुआ कि उदयपुर से जो राणा लोग आये उन्हीं के खानदान में देव के राजपूत हैं। और बिहारदर्पण मे भी यह बात पाई जाती है कि भटियार लोग मेवाड़ से आये हैं।

नाश कर के रानी से विवाह किया और उस से हुए पुत्र को गद्दी पर बैठाया। स्ट्रैबो कहता है—सेल्यूकस ने मेगस्थनीस को सन्द्रकत्तुस के निकट भेजा और अपना भारतवर्षीय समग्र राज्य देकर उस से सन्धि कर ली। ओरियन लिखता है—मेगस्थनीस अनेक वार सन्द्रकुत्तस की सभा मे गया था। प्लूटार्क ने चन्द्रगुप्त को दो लक्ष सेना का नायक लिखा है। इन सब लेखों को पौराणिक वर्णनों से मिलाने से यद्यपि सिद्ध होता है कि सिकन्दरकृत पुरुपराजय के पीछे मगधराज मन्त्री अपने द्वारा निहत हुए और उनके लड़के भी उसी गति को पहुँचे अपने और उसके पीछे चन्द्रगुप्त राजा हुआ, किन्तु बहुत से यूनानी लेखकों ने चन्द्रगुप्त को क्षौरकार से उत्पन्न लिख कर व्यर्थ अपने को भ्रम मे डाला है। चन्द्रगुप्त क्षत्रिय से दासी पुत्र था यह सर्वसाधारण का सिद्धान्त है।* इस क्रम से ३२७ ई० पू० मे नन्द का मरण और ३१४ ई० पू० मे चन्द्रगुप्त का अभिषेक निश्चय होता है। पारसदेश की कुमारी के गर्भ से सिल्यूकस को जो एक अति सुन्दर कन्या हुई थी, वही चन्द्रगुप्त को दी गई। ३०२ ई० पू० मे यह सन्धि और विवाह हुआ, इसी कारण अनेक यवनसेना चन्द्रगुप्त के पास रहती थी। २९० ई० पू० मे चन्द्रगुप्त २४ बरस राज्य कर के मरा।

चन्द्रगुप्त के इस मगधराज्य को आइनेअकबरी मे मकता लिखा है। डिग्विग्नेस कहता है कि चीनी मगध देश को मकियात कहते हैं। फिर वे लिखता है कि जापानी लोग उसको मगतकफ़ कहते हैं। (कफ शब्द जापानी में देशवाची है।) प्राचीन फारसी लेखकों ने इस देश का नाम मावाद वा मुवाद लिखा है। मगधराज्य मे अनुगांग प्रदेश मिलने ही से तिब्बतवाले इस देश को अनुखेक वा अनोनखेक कहते हैं; और तातारवाले इस देश को एनाकाक लिखते हैं।

---

* टाड आदि कई लोगों का अनुमान है कि मोरा वंश के चौहान जो बापाराव के पूर्व चितौर के राजा थे, वे भी मौर्य थे। क्या चन्द्रगुप्त चौहान था या ये मोरा सब शूद्र थे?

सिसली डिउडोरस ने लिखा है कि मगधराजधानी पाटलीपुत्र भारतवर्षीय हर्क्यूलस (हरिकुल) देवता द्वारा स्थापित हुई। सिसिरो ने हर्क्यूलस (हरिकुल) देवता का नामान्तर बेलस (बलः) लिखा है। बल शब्द बलदेव जी का बोध करता है और इन्हीं का नामान्तर बली भी है। कहते हैं कि निज पुत्र अङ्गद के निमित्त बलदेव जी ने यह पुरी निर्माण की, इसी से बलीपुत्र पुरी इस का नाम हुआ। इसी से पालीपुत्र और फिर पाटलीपुत्र हो गया। पाली भाषा, पाली धर्म, पाली देश इत्यादि शब्द भी इसी से निकले हैं। कहते हैं बाणासुर के बसाए हुए जहां तीन पुर थे उन्हीं को जीत कर बलदेव जी ने अपने पुत्रों के हेतु पुनः निर्माण किए। यह तीनों नगर महाबलीपुर इस नाम से एक मद्रास हाते में, एक विदर्भदेश में (मुजफ्फरपुर वर्त्तमान नाम) और एक (राजमहल वर्त्तमान नाम से) बङ्गदेश में है। कोई-कोई बालेश्वर, मैसूर, पुरनिया प्रभृति को भी बाणासुर की राजधानी बतलाते हैं। यहां एक बात बड़ी विचित्र प्रकट होती है। बानासुर भी बलीपुत्र है। क्या आश्चर्य है कि पहले उसी के नाम से बलीपुत्र शब्द निकला हो। कोई नन्द ही का नामान्तर महाबली कहते हैं और कहते हैं कि पूर्व गङ्गा जी के किनारे नन्द ने केवल एक महल बनाया था, उसके चारों ओर लोग धीरे २ बसने लगे और फिर यह पतन (पटना) हो गया। कोई महाबली के पितामह उदासी, उदसी, उदय श्री उदय सिंह (?) ने ४५० ई० पू० इस को बनाया मानते हैं। कोई पाटली देवी के कारण पाटलीपुत्र नाम मानते हैं।

विष्णुपुराण और भागवत में महापद्म के बड़े लड़के का नाम सुमाल्य लिखा है। बृहत्कथा में लिखते हैं कि शकटाल ने इन्द्रदत्त का शरीर जला दिया, इस से योगानन्द (अर्थात् नन्द के शरीर में इन्द्रदत्त की आत्मा) फिर राजा हुआ। व्याड़ि जाने के समय शकटाल को नाश करने का मन्त्र दे गया था। वररुचि मन्त्री हुआ किन्तु योगानन्द ने क्रुद्ध हो कर उसको नाश करना चाहा, इस से वह शकटार के घर में छिपे। इसकी स्त्री उपकोशा पति को मृत समझ कर सती हो गई।

योगानन्द के पुत्र हिरण्यगुप्त के पागल होने पर वररुचि फिर राजा के पास गया था, किन्तु फिर तपोवन में चला गया। फिर शकटाल के कौशल से चाणक्य नन्द के नाश का कारण हुआ। उसी समय शकटाल ने हिरण्यगुप्त, जो कि योगानन्द का पुत्र था उसको मार कर चन्द्रगुप्त को, जो कि असली नन्द का पुत्र था. गद्दी पर बैठाया।

ढुंढि पण्डित लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धि नन्दों में मुख्य था। इसकी दो स्त्रियां थीं। सुनन्दा बड़ी थी और दूसरी शूद्रा थी, उस का नाम मुरा था। एक दिन राजा दोनों रानियों के साथ एक ऋषि के यहां गया और ऋषिकृत मार्जन के समज सुनंदा पर नौ और मुरा पर एक छींट पानी की पड़ी। मुरा ने ऐसी भक्ति से उस जल को ग्रहण किया कि ऋषि ने प्रासन्न हो कर वरदान दिया। सुनन्दा को एक मांसपिण्ड और मुरा को मौर्य उत्पन्न हुआ। राक्षस ने मांस पिण्ड काट कर नौ टुकड़े किया, जिससे नौ लड़के हुए। मौर्य के सौ लड़के थे, जिसमे चन्द्रगुप्त सब से बड़ा बुद्धिमान था। सर्वार्थसिद्धि ने नन्दों को राज्य दिया और आप तपस्या करने लगा। नन्दों ने ईर्षा से मौर्य और उस के लड़कों को मार डाला, किन्तु चन्द्रगुप्त चाणक ब्राह्मण के पुत्र विष्णुगुप्त की सहायता से नन्दों को नाश कर के राजा हुआ।

यों ही भिन्न २ कवियों और विद्वानों ने भिन्न-भिन्न कथायें लखी हैं। किन्तु सब के मूल का सिद्धान्त पास पास एक ही आता है।

[मुद्राराक्षस का उपसंहार (ख)]

महाकवि कालिदास का चरित्र

राजा विक्रमाजीत को सभा मे ६ रत्न थे। उनमे से एक कालिदास थे। कहते हैं कि लड़कपन में इसने कुछ भी नहीं पढ़ा लिखा, केवल एक स्त्री के कारण इसे यह अनमोल विद्या का धन हाथ लगा। इसकी कथा यों प्रसिद्ध है। शरदानन्द की लडकी विद्योत्तमा बड़ी पण्डिता थी। उसने यह प्रतिज्ञा की कि जो मुझे शास्त्रार्थ मे जीतेगा, उसी को व्याहूँगी। उस [illegible] के रूपयौवन विद्या की प्रशंसा सुनकर दूर-दूर से पण्डित

आने पर शास्त्रार्थ के समय उससे सब हार जाते थे। जब पण्डितों ने देखा कि यह लड़की किसी तरह वश मे नहीं आती और सब को हरा देती है, तब मन मे अत्यन्त लज्जित होकर सबने एका किया, कि किसी तरह विद्योत्तमा का विवाह किसी ऐसे मूर्ख के साथ करावें, जिसमे जन्म भर अपने घमण्ड पर पछताती रहे। निदान वे लोग मूर्ख की खोज मे निकले। जाते जाते देखा, एक आदमी पेड़ के ऊपर बैठा है, उसी को जड़ से काट रहा है। पण्डितों ने उसे महामूर्ख समझ कर बडी आवभगत से नीचे बुलाया, और कहा कि चलो, हम तुम्हारा ब्याह राजा की लड़की से करादें। पर खबरदार राजा की सभा मे मुंह से कुछ भी बात न कहना, जो बात करनी हो इशारों से बताना। निदान जब वह राजा की सभा मे पहुँचा, जितने पण्डित वहाँ बैठे थे, सबने उठकर उसकी पूजा की, ऊँची जगह बैठने को दी और विद्योत्तमा से यों निवेदन किया कि ये बृहस्पति के समान विद्वान् हमारे गुरु आपके ब्याहने को आये हैं। परन्तु इन्होंने तप के लिये मौन साधन किया है। जो कुछ आपको शास्त्रार्थ करना हो, इशारों से कीजिये। निदान उस राजकुमारी ने इस आशय से, कि वह ईश्वर एक है, एक ऊंगली उठाई। मूर्ख ने यह समझकर कि यह धमकाने के लिये ऊँगली दिखाकर एक आँख फोड़ देने का इशारा करती है, अपनी दो उंगलियाँ दिखलाइ। पण्डितों ने उन दो उंगलियों के ऐसे अर्थ निकाले कि उस राजकुमारी को हार माननी पड़ी और विवाह भी उसी समय हो गया। रात के समय जब दोनों का एकान्त हुआ, किसी तरफ मे एक ऊंट चिल्ला उठा। राजकन्या ने पूछा कि यह क्या शोर है। मूर्ख तो कोई भी शब्द शुद्ध नहीं बोल सकता था, कहा उठा उट्र चिल्लाता है। और जब राजकुमारी ने दुहराकर पूछा, तब उट्र की जगह उसट्र कहने लगा, पर शुद्ध उष्ट्र का उच्चारण न कर सका। तब तो विद्योत्तमा को पण्डितों की दगाबाजी मालूम हुई और अपने धोखा खाने पर पछता कर फूट फूट कर रोने लगी। वह मूर्ख भी अपने मन मे बड़ा लज्जित हुआ। पहले तो चाहा कि जान ही दे डालूं, पर फिर सोच समझ कर घर से निकल विद्या उपार्जन मे परिश्रम करने

लगा और थोड़े ही दिनों में ऐसा पण्डित हो गया, जिसका नाम आज तक चला जाता है। जब वह मूर्ख पण्डित होकर घर में आया तो जैसा आनन्द विद्योत्तमा के मन को हुआ, लिखने के बाहर है। सच है, परिश्रम से सब कुछ हो सकता है।

कालिदास के समय घटखर्पर, वररुचि आदि और भी कवि थे। कालिदास ने काव्य नाटकादि अनेक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे हैं। इनकी काव्य-रचना बहुत सादी, मधुर और विषयानुसारिणी है। अंगरेज लोग कालिदास को अपने शेक्सपियर से उपमा देते हैं। उसके समय में भवभूति नामक एक कवि था। कहते हैं कि उसकी विद्या कालिदास से अधिक थी। परन्तु कवित्व शक्ति कालिदास की-सी न थी। भवभूति कालिदास के श्रेष्ठत्व को मानता था।

कालिदास सारस्वत ब्राह्मण था। उसको आखेट आदि खेलों की बड़ी चाह थी और उसने अपने ग्रन्थ में इसका वर्णन किया है कि मनुष्य के शरीर पर ऐसे खेलों से क्या क्या उपकारी परिणाम होते हैं।

विक्रमादित्य ने उसको काश्मीर का राजा बनाया और यह राज्य उसने चार वर्ष नौ महीने किया।

कालिदास उज्जैन में रहता था, परन्तु उसकी जन्मभूमि काश्मीर थी।

देशान्तर होने पर स्त्री के वियोग से जो जो दुःख उसने पाये, उनका बखान मेघदूत काव्य में लिखा है। कालिदास बड़ा चतुर पुरुष था। उसकी चतुराई की बहुत सी कहानियां हैं और वे सब मनोरंजन हैं जिनमें से कई एक ये हैं।

(१) भोज राजा को कविता पर बड़ी रुचि थी। जो कोई नया कवि उसके पास आता और कविता-चातुर्य दिखलाता, उसको वह अच्छा पारितोषिक देता और चाहता तो अपनी सभा में रख लेता था। इस से यह कविमण्डल बहुत बढ़ गया, उसमें कई कवि तो ऐसे थे कि बार कोई नया श्लोक सुन लेते, तो उसे कण्ठ कर सकते थे। जब

कोई मनुष्य राजा के पास आकर नया श्लोक सुनाता था, तो कहने लगते थे कि यह तो हमारा पहिले ही से जाना हुआ है और तुरन्त पढ़ कर सुना देते थे।

एक दिन कालिदास के पास एक कवि ने आकर कहा कि महाराज आप यदि मुझे राजा के पास ले चलें और कुछ धन दिला देवें तो मुझ पर आपका बड़ा उपकार होगा। जो मैं कोई नया श्लोक बना कर राजसभा में सुनाऊँ तो उसका माना जाना कठिन है, इसलिये कोई युक्ति बताइये।

कालिदास ने कहा कि तुम श्लोक में ऐसा कहो कि राजा से मुझ को अपने रत्नों का हार लेना है और जो कुछ मैं कहता हूं सो यहाँ के कई पण्डितों को भी मालूम होगा। इस पर यदि पण्डित लोग कहें कि यह श्लोक पुराना है तो तुमको रत्नों का हार मिल जायगा, नहीं नये श्लोक का अच्छा पारितोषिक मिलेगा।

उस कवि ने कालिदास की बताई हुई युक्ति को मान कर वैसा ही श्लोक बनाया और जब उसको राजसभा में पढ़ा तो कविमण्डल चुपचाप हो रहा और उस कवि को बहुत सा धन मिला।

(२) एक समय कालिदास के पास एक मूढ़ ब्राह्मण आया और कहने लगा कि कविराज, मैं अति दरिद्री हूँ और मुझ में कुछ गुण भी नहीं है। मुझपर आप कुछ उपकार करें तो भला होगा।

कालिदास ने कहा, अच्छा हम एक दिन तुम को राजा के पास ले चलेंगे, आगे तुम्हारा प्रारब्ध। परन्तु रीति है कि जब राजा के दर्शन के निमित्त जाते हैं तो कुछ भेंट ले जाया करते हैं इसलिये मैं जो ये सोंटे के चार टुकड़े देता हूँ सो ले चल। ब्राह्मण घर लौटा और उन सोंटे के टुकड़ों को उसने धोती में लपेट रक्खा। यह देख किसी ठग ने उसके बिना जाने उन टुकड़ों को निकाल लिया, और उसके बदले लकड़ी के उतने ही टुकड़े बांध दिये।

राजा के दर्शन को चलने के समय ब्राह्मण ने सोंटे के टुकड़ों को नहीं देखा। जब सभा में पहुंचा तब उस काठ के राजा को अर्पण किया।

राजा उस को देखते ही बहुत क्रोधित हुआ। उस समय कालिदास पास ही था। उसने कहा महाराज इस ब्राह्मण ने अपनी दरिद्ररूपी लकड़ी आपके पास लाकर रक्खी है इस लिये कि उसको जलाकर इस ब्राह्मण को आप सुखी करें। यह बात कवि के मुख से सुनते ही राजा बहुत प्रसन्न हुआ, और उसने ब्राह्मण को बहुत धन दिया।

(३) एक समय राजा भोज कालिदास के साथ ले वनक्रीड़ा हेतु आरण्य को गये और घूमते-घूमते थक-मांद हो, एक नदी के किनारे जा बैठे। इस नदी मे पत्थर बहुत थे, उनपर पानी गिरने से बड़ा शब्द होता था। उस समय राजा ने कालिदास से विनोद करके पूछा कि कविराज ' यह नदी क्यों रोती हैं? कालिदास ने उत्तर दिया कि महाराज, यह छोटे ही पन में अपने मैके से ससुराल को जाती है।

कालिदास के प्रसिद्धग्रन्थ शकुन्तला, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र और मेघदूत हैं। शकुन्तला बहुत वर्णनीय ग्रन्थ है। उसका उल्था योरप की सब भाषाओं मे हो गया है।

एक समय कविवर कालिदास अपने मकान मे बैठ कर अपने प्रिय-पुत्र को अध्ययन करा रहा था। उसी समय क्षत्रिय कुल-भूषण शकारि विक्रमादित्य संयोग से आ गये। कविवर कालिदास ने महाराज को देख प्रिय पुत्र का पढ़ाना छोड़ कर शिष्टाचार की रीति से महाराज का आदर मान किया। जब क्षत्रिय-कुल भूषण महाराज विक्रमादित्य ने पढ़ाने की प्रार्थना की तब फिर अध्ययन करना प्रारम्भ किया। उस समय कविवर कालिदास अपने प्रिय पुत्र को यही पढ़ाता था कि राजा अपने ही देश मे मान पाता है और विद्वानों का मान सब स्थानों मे होता है। महाराज इस प्रकार की शिक्षा सुन अपने मन में कुतर्क करने लगे कि कविवर कालिदास ऐसा अभिमानी पण्डित है कि मेरे ही सामने पण्डितों की बड़ाई करता है और राजाओं को वा धनवानों को व मुझे नीचा दिखाता है। मै पण्डितों का विशेष आदर मान करता हूं और जो मेरे व अन्य वा धनवानों के यहां पण्डितों का आदर नहीं हो तो कहीं हो

सकता है। ऐसा कुतर्क करते हुए राजा अपने घर गये। महाराजा विक्रमा-
दित्य ने कविवर कालिदास को जो धन-सम्पत्ति दी थी उसको हर लेने के
लिये मंत्री को आज्ञा दी। मंत्री ने वैसा ही किया जैसा महाराज ने कहा
। कविवर कालिदास की जीविका जब हर ली गई तब दुःखी
कर वह अपने बाल-बच्चों के साथ अनेक देशों मे भटकता हुआ अन्त मे
नाटक देश मे पहुँचा करनाटक-देशाधिपति बड़ा पण्डित और गुणग्राहक
। उसके पास जाकर कविवर कालिदास ने अपनी कविता शक्ति
दिखाई। इस पर करनाटकदेशाधिपति ने अति प्रसन्न हीकर बहुत सा
धन और भूमि देकर उसको अपने राज्य मे रक्खा। कविवर कालिदास
राजा से सम्मान पाकर उस देश मे रह कर प्रति दिन राज सभा मे जाने
और वहाँ राजा के सिंहासन के पास ऊंचे आसन पर बैठ सब राज-काजो
मे उत्तर सम्मति देने लगा। और अनेक प्रकार की कविताओं से सभासदों
के मन की कली खिलाता हुआ सुख से रहने लगा। जब से कविवर कालीदास
को विक्रमादित्य ने छोड़ा तब से वे बड़े शोकसागर मेडूबे थे। नवरत्नों मे कवि-
वर कालीदास ही अनमोल रत्न था। इस के सिवाय जब राजा को राजकाज
के कामों से फुरसत मिलती थी, तब केवल कविवर कालिदास ही की
अद्भुत कविताओं को सुन कर उसका मन प्रफुल्लित होता था। इस
लिये ऐसे गुणी मनुष्य के बिना राजा का मन सब वस्तुओं से उदास रहने
लगा। फिर राजा ने कविवर कालिदास का पता लगाने के लिये सब देशों
मे दूतों को भेजा। जब कहीं पता न लगा तब राजा आप ही भेप बदल
कर खोजने के लिये निकले। कई देशों मे घूमते फिरते जब वे करनाटक
देश मे गये तो उस समय उनके पास मार्गव्यय के लिये एक हीरा-जड़ी
अंगूठी को छोड़ और कुछ न था। उस अँगूठी को बेचने के लिये वे किसी
जौहरी की दूकान पर गये। रत्नपारखी ने ऐसे दरिद्र के हाथ मे ऐसी
अनमोल रत्नजटित अँगूठी को देखकर मन मे उसे चोर समझा औरकोत-
वाल के पास भेजा। कोतवाल राजसभा मे लेगया। वे चारों ओर देखते
भालते जो आगे बढ़े तो कविवर कालिदास को देखा और कहा महाराज
मैंने जैसा किया वैसा ही फल पाया। कविवर कालिदास उठ कर राजा

को अंक मे लगा कर करनाटक देशाधिपति से परिचय करा और सब ब्योरा कह कर राजा वीर विक्रमादित्य के साथ चला आया ।

कोई कोई कहते हैं कि कविवर कालिदास की सहायता के लिये एक ब्राह्मण ने राजा भोज से एक श्लोक पर अनेक रुपये इस चतुराई से लिये थे ।

उज्जैन नगरी मे राजा भोज ऐसा विद्यारसिक, गुणज्ञ और दानशील था कि विद्या की वृद्धि के प्रयोजन से उसने यह नियम प्रचलित किया था कि जो कोई नवीन आशय का श्लोक बना के लाये, उसको एक लाख रुपये दक्षिणा दी जाय । इस बात को सुन कर देशान्तर के पण्डित लोग नए आशय के श्लोक बनाकर लाते थे, परन्तु उसकी सभा मे चार ऐसे पण्डित थे कि एक को एक बार, दूसरे को दो बार, तीसरे को तीन बार और चौथे को चार बार सुनने से नया श्लोक कण्ठस्थ हो जाता था। सो जब कोई परदेशी पण्डित राजा की सभा मे नवीन आशय का श्लोक बनाकर लाता तो वह राजा के सम्मुख पढ़ के सुनाता था। उस समय राजा अपने पण्डितों से पूछता था कि यह श्लोक नया है या पुराना। तब वह मनुष्य जिसको कि एक बार के सुनने से कण्ठस्थ होने का अभ्यास था, कहता कि यह पुराने आशय का श्लोक है और आप भी पढ़ कर सुना देता था। इसक अनन्तर वह मनुष्य जिसको दो बार सुनने से कंठस्थ हो जाता था, पढ़ के सुनाता और इस प्रकार वह मनुष्य जिसको तीन बार और वह भी जिसको चार बार के सुनने से कंटस्थ होने का अभ्यास था, क्रम से सब राजा को कण्ठाग्र सुना देते, इस कारण परदेशी विद्वान् अपने मनोरथ से रहित हो जाते थे। और इस बात की चर्चा देश देशान्तर मे फैली। परन्तु एक विद्वान् ऐसा देश काल मे चतुर और बुद्धिमान् निकला कि उसके बनाये हुए आशय को इन चार मनुष्यों को भी अंगीकार करना पड़ा और वह आशय यह है कि हे तीनों लोक के जीतने वाले राजा भोज! आपके पिता बड़े धर्मिष्ठ हुये हैं उन्हों ने मुझ से निन्नानवे करोड़ का रत्न लिया है, सो मुझे आप दीजिये और वृत्तान्त को आपके सभासद विद्वान् जानते होंगे। इनसे पूछ लीजिये

और जो वे कहें कि यह आशय केवल नवीन कविता मात्र है तो अपने प्रण के अनुसार एक लाख रुपया मुझे दीजिये। इस आशय को सुनकर चारों विद्वानों ने विचाराश किया कि जो उसको पुराना आशय ठहरावें तो महाराज को निन्नानवे करोड द्रव्य देना पड़ता है और नवीन कहने मे केवल एक लाख, सो इन चारों ने क्रम से यही कहा कि पृथ्वीनाथ! यह नवीन आशय का श्लोक हैं। इस पर राजा ने उस विद्वान् को एक लाख रुपये दिये।

पर इन कथाओं मे भी वह झंझट पाई जाती है और कविवर कालिदास का समय ठीक निश्चय होना कठिन है।

राजा लक्ष्मणसिंह

महर्षि कण्व का आश्रम

सारथी—जो आज्ञा। (पहिले रथ को भरदौड चलाया फिर मंद किया) देखिये, रास छोड़ते ही घोड़े सिमट कर कैसे झपटे कि टापों की धूल भी साथ न लगी. केश खड़े करके और कनौती उठाकर घोड़े दौड़े क्या हैं उड़ आये हैं।

दुष्यन्त—सत्य है, ऐसे झपटे कि छिन भर में हरिण से आगे बढ़ आये। जो वस्तु पहले दूर होने के कारण छोटी दिखाई देती थी सो अब बड़ी जान पड़ती है, और जो मिली हुई-सी थी, सो अब अलग अलग निकली. जो टेढ़ी थी सो सीधी हो गई। पहियों के वेग से थोड़े काल तक तो दूर और नगीच मे कुछ अन्तर ही न रहा था। अब देखो हम इसे गिराते हैं। (धनुष पर बाण चढ़ाया हुआ)।

(नेपथ्य मे) इसे मत मारो, यह आश्रम का मृग है।

सारथी—(शब्द सुनता हुआ और देखता हुआ) महाराज! बाण के सम्मुख हरिण तो आया, परन्तु ये दो तपस्वी नाहीं करते हैं कि इसे मारो मत।

दुष्यन्त—अच्छा, तो घोड़ों को रोको।

सारथी—जो आज्ञा। (रास खैंचता हुआ)।

(एक तपस्वी और उसका चेला आया)

तपस्वी—(बाँह उठाकर) हे राजा, यह मृग आश्रम का है, इसको मत मारो। देखो, इसको मत मारो। इसके कोमल शरीर में जो बाण लगेगा सो मानो रुई के पुंज में आग लगेगी। कहाँ तुम्हारे वज्रबाण, कहाँ इसके अल्प प्राण। हे राजा, बाण को उतार लो, यह तो दुखियों की रक्षा के निमित्त है, निरपराधियों पर चलाने को नहीं है।

दुष्यन्त—(नमस्कार करके) लो, मैं तीर को उतार लेता हूँ। (बाण उतार लिया)।

तपस्वी—(हर्ष से) हे पुरुकुल-दीपक, आप को यही उचित है। लो हम भी आशीर्वाद देते हैं कि आप के आप ही सा चक्रवर्ती और धर्म्मात्मा पुत्र हो।

चेला—(दोनों हाथ उठाकर) आप का पुत्र धर्म्मज्ञ और चक्रवर्ती हो।

दुष्यन्त—(प्रणाम करके) ब्राह्मणों का वचन सिर माथे।

तपस्वी—हे राजा, हम यज्ञ के लिये समिध लेने जाते हैं। आगे मालिनी के तट पर गुरु कण्व का आश्रम दिखाई देता है। आपको अवकाश हो तो वहाँ चलकर अतिथि-सत्कार लीजिये। उस जगह तपस्वियों के धर्म्म-कार्य्य निर्विघ्न होते देखकर आप भी जानेंगे कि मेरी इन भुजा से, जिसमे प्रत्यंचा की फटकार के चिह्न भूषण हैं कितने सत्पुरुषों की रक्षा होती है।

दुष्यन्त—तुम्हारे गुरु आश्रम मे हैं या नहीं ?

तपस्वी—अपनी पुत्री शकुन्तला को अतिथि-सत्कार की आज्ञा देकर उसी की ग्रह-दशा निवारने के लिये सोमतीर्थ को गये हैं।

दुष्यन्त—अच्छा, हम अभी आश्रम के दर्शन को चलते हैं।

तपस्वी—आप पधारिए, हम भी अपने कार्य्य को जाते हैं। (तपस्वी अपने चेले समेत गया)।

दुष्यन्त—सारथी, रथ को हाँको। इस पवित्र आश्रम के दर्शन करके हम अपना जन्म सफल करें।

सारथी—जो आज्ञा। (रथ बढ़ाया)

दुष्यन्त—(चारों ओर देखकर) कदाचित् किसी ने बतलाया न होता तो भी यहाँ हम जान लेते कि अब तपोवन समीप है।

सारथी—महाराज, ऐसे आप ने क्या चिह्न देखे।

दुष्यन्त—क्या तुमको चिन्ह नहीं दिखाई देते हैं? देखो, वृक्ष के नीचे तोतों के मुख के गिरा मुन पड़ा है, ठौर-ठौर हिंगोट कूटते की चिकनी शिला रक्खी हैं। मनुष्यों से हरिण के बच्चे ऐसे हिलमिल रहे हैं कि हमारी आहट पाकर कुछ भी नहीं चौंके। जैसे अपने खेलकूद में मगन थे वैसे ही बने हैं। उधर देखो यज्ञ की सामग्री के छिलके बह बह के आते हैं जिनसे नदी में कैसी लकीर सी बँध रही है। फिर देखो वृक्षों की जड़ पवित्र लहरों के प्रभाव से धुलकर कैसी चमकती हैं और होम के धुएँ से नए पत्तों की कान्ति कैसी धुँधली हो रही है। देखो उस उपवन के आगे की भूमि में जहाँ की दाभ यज्ञ के लिये कट गई है, मृगछौने कैसे धीरे-धीरे निधड़क चरते हैं।

सारथी—महाराज! अब मैंने भी तपोवन के चिह्न देखे।

दुष्यन्त—(थोड़ी दूर चलकर) सारथी, तपोवन-वासियों के काम में कुछ विघ्न न पड़े, इस से रथ को यहीं ठहरा दो, हम उतर लें।

सारथी—मैं रास खैंचता हूँ, महाराज उतर लें।

दुष्यन्त—(उतरकर और अपने वेष को देखकर) अब मैं आश्रम में जाता हूँ। (आश्रम में घुसा) आज दक्षिण भुजा क्यों फड़कती है। (ठहर कर और कुछ सोचकर) यह तपोवन है, यहाँ अच्छे सगुन का क्या फल होना है? कुछ आश्चर्य भी नहीं है। होनहार कहीं नहीं रुकती।

(नेपथ्य में) प्यारी सखियो, यहाँ आओ, यहाँ आओ।

दुष्यन्त—(कान लगाकर) इस फुलवारी के दक्षिण ओर क्या कुछ स्त्रियों का सा बोल सुनाई देता है (चारों ओर फिर कर और देखकर) अहा ! ये तो तपस्वियों की कन्या हैं। अपने अपने वित्त अनुसार कोई छोटी कोई बड़ी गगरी वृक्ष के सींचने के लिए जाती हैं। धन्य है ! कैसी मनोहर इनकी चितवन है। जैसे इनकी छवि रनिवास की स्त्रियों में मिलनी दुर्लभ है, वैसे ही उपवन के फूलों को इस वन की लता अपने रंग और सुगन्ध से लज्जित कर रही है। (खड़ा होकर उनकी ओर देखने लगा)

(शकुन्तला से)

पं० बालकृष्ण भट्ट

कल्पना-शक्ति

मनुष्य की अनेक मानसिक शक्तियों में कल्पनाशक्ति भी एक अद्भुत शक्ति है, यद्यपि अभ्यास से यह शतगुण अधिक हो सकती है पर इसका सूक्ष्म अंकुर किसी-किसी के अन्तःकरण में आरम्भ ही से रहता है, जिसे प्रतिभा के नाम से पुकारते हैं और जिसका कवियों के लेख में पूर्ण उद्गार देखा जाता है। कालिदास, श्रीहर्ष, शेक्सपियर, मिल्टन प्रभृति कवियों की कल्पनाशक्ति पर चित्त चकित और मुग्ध हो, अनेक तर्क-वितर्क की भूलभुलैया मे चक्कर मारता, टकराता, अन्त को इसी सिद्धान्त पर आकर ठहरता है कि यह कोई प्राक्तन संस्कार का परिणाम है या ईश्वर-प्रदत्त शक्ति (genius) है। कवियों का अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा ब्रह्मा के साथ होड़ करना कुछ अनुचित नहीं है, क्योंकि जगतस्रष्टा तो एक ही बार जो कुछ बन पड़ा सृष्टि-निर्माण-कौशल दिखाकर आकल्पान्त फरागत हो गये, पर कविजन नित्य नई-नई रचना के गढ़न्त से न जाने कितनी सृष्टिनिर्माण-चातुरी दिखलाते रहते हैं।

यह कल्पनाशक्ति कल्पना करने वाले के हृद्गत भाव या मन के परखने की कसौटी या आदर्श है। शान्त या वीर प्रकृति वाले से रस-प्रधान कल्पना कभी न बन पड़ेगी। महाकवि मतिराम और

भूषण इसके उदाहरण हैं। शृङ्गाररस से पगी जयदेव की रसीली तबियत के लिये दाख और मधु से भी अधिक मधुर गीतगोविन्द ही की रचना विशेष उपयुक्त थी। राम-रावण या कर्ण-अर्जुन के युद्ध का वर्णन कभी उनसे न बन पड़ता। यावत् मिथ्या और दरोग की किबलेगाह इस कल्पना पिशाचिनी का कहीं छोर किसी ने पाया है। अनुमान करते करते हैरान गौतम से मुनि "गोतम" हो गये। कणाद तिनका खा खाकर तिनका बीनने लगे पर मन की मनभावनी कन्या कल्पना का पार न पाया। कपिल बेचारे पचीस तत्वों की कल्पना करते-करते "कपिल" अर्थात पीले पड़ गये। व्यास ने इन दोनों महादर्शकों की दुर्गति देख मन में सोचा और इस भूतनी के पीछे दौड़ते फिरे। यह सम्पूर्ण विश्व जिसे हम प्रत्यक्ष देख सुन सकते हैं सब कल्पना ही कल्पना, मिथ्या, नाशवान और क्षण-भंगुर है, अतएव हेय है। इन्हीं के देखा देखी बुद्धदेव ने भी अपने बुद्धमत का यही निष्कर्ष निकाला कि जो कुछ कल्पनाजन्य है सब क्षणिक और नश्वर है। ईश्वर तक को उन्होंने इस कल्पना के अन्तर्गत ठहरा कर शून्य अथवा निर्वाण ही को मुख्य माना। रेखागणित प्रवर्त्तक उक्लैदिस (Euclid) ज्यामिति की हर एक शकलों में विन्दु और रेखा की कल्पना करते-करते हमारे सुकुमार-मति इन दिनों के छात्रों का दिमाग ही चाट गये। कहां तक गिनावें, सम्पूर्ण भारत का भारत इसी कल्पना के पीछे गारत हो गया, जहां कल्पना (Theory) के अतिरिक्त क्रियात्मक (Practical) करके दिखाने योग्य कुछ रहा ही नहीं। यूरोप के अनेक वैज्ञानिकों की कल्पना को शुष्क कल्पना से कर्तव्यता (Practice) में परिणत होते देख यहां वालों का हाथ मलमल पछताना और कलपना पड़ा।

प्रिय पाठक! कल्पना बुरी बला है। चौकस रहो, इसके पेंच में कभी न पड़ना, नहीं तो पछताओगे। आज हमने भी इस कल्पना की कल्प में पड़ बहुत सी भारी-भारी कल्पना कर आपका थोड़ा सा समय नष्ट किया, क्षमा करियेगा।

(साहित्य-सुमन से)

पं० प्रताप नारायण मिश्र

होली है !

तुम्हारा सिर है ! यहाँ दरिद्र की आग के मारे होला अथवा होरा (भुना हुआ हरा चना) हो रहे हैं इन्हे होली है, हे !

अरे कैसे मनहूस हो ? बरस बरस का तिवहार है, उस मे भी वही रोनी सूरत ! एक बार तो प्रसन्न होकर बोलो, होरी है !

अरे भाई हम पुराने समय के बङ्गाली भी तो नहीं हैं कि तुम ऐसे मित्रों की जबरदस्ती से होरी (हरी) बोल के शान्त हो जाते । हम तो बीसवीं शताब्दी के अभागे हिन्दुस्तानी हैं जिन्हे कृषि, वाणिज्य, शिल्प, सेवादि किसी में भी कुछ तंत नहीं है । खेतों की उपज अतिवृष्टि, अनावृष्टि, जंगलों का कट जाना, रेलों और नहरों की वृद्धि इत्यादि ने मट्टी कर दी है । जो कुछ उपज भी है वह कट के खलियान मे कहीं आने पाता, ऊपर ही ऊपर लद जाता है ! रोजगार-व्यौहार मे कहीं कुछ देख ही नहीं पड़ता । जन बाजारों मे, अभी दस वर्ष भी नहीं हुए, कंचन बरसता था वहा अब दूकानें भांय भांय होती हैं । देशी कारीगरी को देश ही वाले नहीं पूछते । विशेषतः जो छाती ठोक ठोक ताली बजवा बजवा कागजों के तख्ते रंग रंग कर देशहित के गीत गाते फिरते हैं वह और भी देसी वस्तु का व्यवहार करना अपनी शान से बईद समझते हैं । नौकरी बी० ए०, पास करने वाला को भी उचित रूप से मुशकिल से मिलती है । ऐसी दशा मे हमे होली सूझती है कि दिवाली !

यह ठीक है । पर यह भी सोचो कि हम तुम वंशज किन के हो ? इन्हीं के न, जो किसी समय वसंत-पंचमी ही से—

"आई माघ की पांचैं बूढ़ी डोकरियां नाचैं"

का उदाहरण बन जाते थे, पर जब इतनी सामर्थ्य न रही तब शिवरात्रि से होलिकोत्सव का आरम्भ करने लगे । । जब इस का भी निर्वाह कठिन तब फागुन सुदी अष्टमी से—

',होरी मध्ये आठ दिन, ब्याह मांह दिन चार ।
शठ, पण्डित, वेश्या, बधू, सबै भये इकसार ।।

का नमूना दिखलाने लगे । पर उन्हीं आनन्दमय पुरुषों के वंश में होकर तुम ऐसे महर्रमी बने जाते हो कि आज तिवहार के दिन भी आनन्द से होली का शब्द तक उच्चारण नहीं करते । सच कहो कहीं 'होली बाईबिल' की हवा लगने से हिन्दूपन को सलीब पर तो नहीं चढ़ा दिया ?

तुम्हें आज क्या सूझी है, जो अपने पराये सभी पर मुँह चला रहे हो ? होली बाइबिल अन्य धर्म का ग्रन्थ है, उस के मानने वाले विचारे पहले ही से तुम्हारे साथ का भीतरी-बाहिरि सम्बन्ध छोड देते हैं । पहिली उमंग में कुछ दिन तुम्हारे मत पर कुछ चोट चला भी दिया करते थे, पर अब बरसों से वह चर्चा भी न होने के बराबर हो गई है। फिर, इन छुटे हुये भाइयों पर क्यों बौछार करते हो ? ऐसी ही लडास लगी हो तो उन से जा भिड़ो जो अभी तुम्हारे ही कहलाते हैं, तुम्हारे ही साथ रोटी-बेटी का व्योहार रखते हैं, तुम्हारे हैं, तुम्हारे ही दो चार मान्य ग्रन्थों के मानने वाले बनते हैं, पर तुम्हारे ही देवता पितर इत्यादि की निन्दा कर कर के तुम्हे चिढ़ाने ही में अपना धर्म और अपने देश की उन्नति समझते हैं ।

अरे राम राम ! पर्व के दिन कौन चरचा लाते हो ! हम तो जानाए थे तुम्हीं मनहूस हो, पर तुम्हारे पास बैठे सो भी "नमूढ़िया गोल" का [illegible]रे । बाबा दुनिया भर का बोझ परमेश्वर ने तुम्हीं "साहस की पट्टी [illegible]दिया । [illegible] कारखाने हैं, भले-बुरे लोग और दुख-सुख को आज [illegible] ही दुपानी रहती है । पर मनुष्य को चाहिए कि जब जैसे जैली और समय का सामना आ पड़े तब वैसा बन जाय । मन को किसी झगड़े में फंसने न दे ।

"आज तुम सचमुच कहीं से भांग खा के आए हो । इसी से ऐसी बे सिर [illegible] की हांक रहे हो । अभी कल तक प्रेम सिद्धान्त के अनुसार यह सिद्ध

करते थे कि मन का किसी ओर लगा रहना ही कल्याण का कारण है, और इस समय कह रहे हो कि 'मन को किसी झगड़े में फँसने न दे।' वाह! भला तुम्हारी किस बात को मानें ?

हमारी बात मानने का मन करो तो कुछ हो ही न जाओ! यही तो तुम से नहीं होता। तुम तो जानते हो कि हम चोरी-चहारी सिखावेंगे।

नहीं यह तो नहीं जानते। और जानते भी हों तो बुरा न मानते। क्योंकि जिस काल में देश का अधिकांश निर्धन, निर्बल निरुपाय हो रहा है, उस में यदि कुछ लोग "बुभुक्षितः किं न करोति पापं" का उदाहरण बन जायँ तो कोई आश्चर्य नहीं है। पर हाँ यह तो कहेंगे कि तुम्हारी बातें कभी समझ में नहीं आतीं। इस से मानने को जी नहीं चाहता।

यह ठीक है, पर याद रक्खो कि हमारी बातें मानने का प्रयत्न करोगे तो समझ में भी आने लगेंगी, और प्रत्यक्ष फल भी देंगी।

अच्छा साहब मानते हैं, पर यह तो बतलाइये जब हम मानने के योग्य ही नहीं हैं तो कैसे मान सकते हैं ?

छिः क्या समझ है। अरे बाबा! हमारी बातें मानने में योग्य होना और सकना आवश्यक नहीं है। जो बातें हमारे मुँह से निकलती हैं क[illegible] वास्तव में हमारी नहीं हैं, और उन के मानने की योग्यता और शक्ति को भी [illegible]म को क्या किसी को भी तीन लोक और तीन काल में नहीं सूझती है कि [illegible] सन्देह न करना कि जो कोई चुपचाप आँखें मीच के [illegible] वह परमानन्द-भागी हो जाता है।

इन्[illegible] बातें मानने को तो कौन आता है, पर सुनकर परमानन्द तो नहीं, हां, मसखरेपन का कुछ मजा जरूर पा जाता है।

भला हमारी बातों में तुम्हारे मुँह से हिहि तो निकली! इसे तोबड़ा-[illegible] लटके हुए मुँह के टाँकों के समान दो तीन दांत तो निकले। और [illegible], मसखरेपन ही का सही, मजा तो आया। देखो आँखें मींचे के

तेल की रोशनी और कुलिहया के ऐनक की चमक से चौंधिया न गई हो तो देखो। छत्तिसों जात, वरंच अजात के जूठे गिलास की मदिरा तथा भच्छ अभच्छ की गन्ध से अकिल भाग न गई हो तो समझो। हमारी बातें सुनने में इतना फल पाया है तो मानने में न जाने क्या प्राप्त हो जायगा। इसी से कहते हैं, भैया मान जाव, राजा मान जाव, मुन्ना मान जाव आज मन मारकर बैठे रहने का दिन नहीं है। पुरखों के प्राचीन सुख-सम्पत्ति को स्मरण करने का दिन है। इस से हंसो, बोलो, गाओ बजाओ, त्यौहार मनाओ, और सब से कहते फिरो—होली है।

हो तो ली है। नहीं तो अब रही क्या गया है।

खैर, जो कुछ रह गया है उसी के रखने का यत्न करो, पर अपने ढङ्ग से न कि विदेशी ढङ्ग से। स्मरण रक्खो कि जब तक उत्साह के साथ अपनी ही रीति-नीति का अनुसरण न करोगे तब तक कुछ न होगा। अपनी बातों को बुरी दृष्टि से देखना पगलापन है। रोना निस्सा-हसों का काम है। अपनी भलाई अपने हाथ से हो सकती है। माँगने पर कोई नित्य डबलरोटी का टुकड़ा भी न देगा। इस से अपनापन मत छोड़ो। कहना मान जाव। आज होली है।

हाँ, हमारा हृदय तो दुर्दैव के बाणों से पूर्णतया होली (होल अंग्रेज़ी में छेद को कहते हैं, उस से युक्त) है। हमें तुम्हारी सी ज़िन्दादिली (सहृदयता) कहाँ से सूझे ?

तो सहृदयता के बिना कुछ आप कर भी नहीं सकते, यदि कुछ रोए धोए दैवयोग से कुछ हो भी जायगा, तो 'नकटा जिया बुरे हवाल" का लेखा होगा। इस से हृदय में होल (छेद) हैं तो उन पर साहस की पट्टी चढ़ाओ। मृतक की भाँति पड़े पड़े काँखने से कुछ न होगा। आज उछलने कूदने का दिन है। सामर्थ्य न हो तो चलो किसी होली (सुरालय) से थोड़ी सी पिला लावें, जिस में कुछ देर के लिये होली के काम के हो जाओ. यह नेस्ती काम की नहीं।

[illegible] तो क्या मदिरा पिलाया चाहते हो ?

[illegible] [illegible] है। बड़े बड़े वाजपेयी पीते हैं। पीछे से बल, बुद्धि, धर्म,

धन, मान, प्रान सब स्वाहा हो जाय तो वला से। पर थोड़ी देर उस की तरङ्ग मे "हाथी मच्छर, सूरज जुगनू" दिखाई देता है। इस से, और मनोविनोद के अभाव मे, उसके सेवकों के लिए कभी कभी उस का सेवन कर लेना इतना बुरा नहीं है जितना मृत-चित्त वन बैठना। सुनिए! संगीत, साहित्य, सुरा और सौंदर्य के साथ यदि नियम-विरुद्ध वर्ताव न किया जाय तो मन की प्रसन्नता और एकाग्रता को कुछ न कुछ लाभ अवश्य होता है, और सहृदयता की प्राप्ति के लिए इन दो गुणों की आवश्यकता है जिन के विना जीवन की सार्थकता दुःसाध्य है।

बलिहारी है, महाराज इस चणिक बुद्धि की। अभी तो कहते थे की मन को किसी झगड़े मे फँसने न देना चाहिए, और अभी कहने लगे कि मन की एकाग्रता के विना सहृदयता तथा सहृदयता के विना जीवन की सार्थकता दुःसाध्य है! धन्य हैं, यह सरगापत्ताली बातें! भला हम आप को अनुरागी समझें या विरागी?

अरे हम तो जो हैं वही हैं, तुम्हे जो समझना हो समझ लो। हमारी कुछ हानि नहीं है। पर यह सुन रक्खो, सीख रक्खो, समझ रक्खो कि अनुराग और विराग वास्तव मे एक ही है। जब तक एक ओर अचल अनुराग न होगा तब तक जगत् के खटराग मे विराग नही हो सकता, और जब तक सब ओर से आंतरिक विराग न हो जाय तब तक अनुराग का निर्वाह सहज नहीं है। इसी से कहते है कि हमारी बातें चुपचाप मान ही लिया करो, बहुत अकिल को दौड़ दौडा के थकाया ना करो। इसी में आनन्द भी आता है और हृदय का कपाट भी खुल जाता है। साधारण बुद्धि वाले लोग भगवान् भूतनाथ, श्मशान-बिहारी, मुण्डमालधारी को वैराग्य का अधिष्ठाता समझते हैं; पर वह आठों पहर अपनी प्यारी पर्वतराजनन्दिनी को अपने समीप ही रखते है। इसी प्रकार भगवान् कृष्णचन्द्र को लोग शृङ्गार रस का देवता समझते हैं, पर उन की निर्लिप्तता गीता मे देखनी चाहिये, जिसे सुना के उन्हों ने अर्जुन का मोहजाल छुड़ा के वर्तमान कर्तव्य के लिये ऐसा दृढ़ कर दिया था कि ने सब की दया-मया, मोह-ममता को तिलाञ्जलि देके मारकाट कर दी थी। इन बातों से तत्व-ग्राहिणी समझ भली भांति समझ

सकती है कि भगवान् प्रेमदेव की अनन्त महिमा है। वहाँ अनुराग-विराग, सुख-दुःख, मुक्ति-साधन सब एक ही हैं। इसी से सच्चे समझदार संसार में रह कर सब कुछ देखते सुनते, करते धरते हुए भी संसारी नहीं होते। केवल अपनी मर्यादा मे बने रहते हैं, और अपनी मर्यादा वही है जिसे सनातन से समस्त पूर्व-पुरुष रक्षित रखते आए हैं, और इनके सुपुत्र सदा मानते रहेंगे। काल, कर्म, ईश्वर अनुकूल हो वा प्रतिकूल, सारा संसार स्तुति करे वा निन्दा, वाह्य दृष्टि से लाभ देख पड़े वा हानि, पर वीर पुरुष वही है, जो कभी कहीं किसी दशा में अपनेपन से स्वप्न में भी विमुख न हो। इस मूल-मन्त्र को भूल के भी न भूले कि जो हमारा है वही हमारा है। उसी से हमारी शोभा है, और उसी मे हमारा वास्तविक कल्याण है।

आनन्द त्यौहार आज हमारी होलो है। चित शुद्ध कर के वर्ष भर की कही सुनी क्षमा कर के, हाथ जोड के, पाँव पड के, मित्रों को मना के, सौ प्रकार के उन से मिलने और यथासामर्थ्य जी खोल के परस्पर की प्रसन्नता सम्पादन करने का दिन है। जो लोग प्रेम का तत्व तनिक भी नहीं समझते केवल स्वार्थ-साधन ही को इतिकर्तव्य समझते है, पर हैं अपने ही देश जाति के, उन से घृणा न कर के ऊपरी आमोद-प्रमोद में मिला के समयान्तर मे मित्रता का अधिकारी बनाने की चेष्टा करने का त्यौहार है। जो निष्प्रयोजन हमारी बात बात पर मुकरते ही हों उन्हे उन के भाग्य के अधीन छोड के अपनी मौज मे मस्त रहने का समय है। इसी से कहते हैं, नई बहू की नॉई घर मे न घुसे रहो, पर्व के दिन मनमार के न बैठ, घर बाहर, हेली व्यौहारी से मानसिक आनन्द के साथ कहते फिरो—हो हो हो हो ली ई ई ई है।

[निबन्ध-नवनीत से]

—०—

पं० अम्बिकादत्त व्यास

क्षमा

क्षमा इस साधारण गुण नहीं है। जिस पुरुष में क्षमा नहीं वह अति

क्षुद्र समझा जाता है। जो ऐसे होते हैं कि किसी से कुछ अपकार की शंका हुई कि उसका अपकार करने को तैयार। किसी के मुँह से भ्रम से भी कुछ कड़ा शब्द निकला कि आप गालियों की वर्षा करने लगे। किसी ने अल्प अपराध भी किया तो उस पर झट टूट पड़े, वे अति तुच्छ मनुष्य समझे जाते हैं। जिनको क्षमा नहीं उसके लड़के वाले दुर्बल होते हैं क्योंकि वे बात बात में घूसे और घुटके जाते हैं और बात बात में मार खाते हैं। उनसे जी खोल कर कोई बात नहीं करता, क्योंकि यह आशंका सब को रहती है कि बातों में कोई अनुचित न हो जाय। जिसको क्षमा नहीं है उससे कितने ही काम चटपट में ऐसे अनुचित बन जाते हैं कि पीछे जन्म भर पछतावा रह जाता है। क्षमा-रहित पुरुष राज-सभाओं में तो कभी टिक नहीं सकते। जैसे किसी कटोरे में जल हो तो उसमें जहं कुछ और पदार्थ डाला कि जल उबला, यह स्वभाव अक्षम पुरुषों का है समुद्र में पहाड़ आ पड़े तो भी उसका बढ़ना घटना कुछ नहीं विदित होता, यह स्वभाव क्षमावान पुरुषों का है, जैसे गजराज के पीछे कुत्ता भूंकता हुआ चले और गजराज उस पर ध्यान न दे तो उसका कुछ नहीं बिगड़ता, वैसे ही क्षमाशील पुरुष यदि तुच्छों की बकबक पर ध्यान न दें, तो उनकी क्या हानि है। यदि कोई अपने को गाली दे तो भी यों समझ लेना कि—

> जाके ढिगि बहु गारी ह्वै हैं, सोई गारी देहैं।
>
> गारीवारो आपु कहैहै, हमारो का घटि जैहै॥

कोई समझते हैं कि 'जो हम को गाली देता है उसे यदि हम गाली न दें तब तो हमारी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी"। पर यह उल्टी ही बात है। तुच्छों की गाली पर गाली ही देने से टंटा बढ़ता है और चुप रहने से कोई जानता भी नहीं कि किसको किसने गाली दी।

एक समय वशिष्ट और विश्वामित्र में झगड़ा चला। झगड़ा तो इस बात का था कि विश्वामित्र क्षत्रिय थे, पर बहुत तप करने के कारण थे कि हमे सब कोई ब्राह्मण कहा कीजिये, पर यह बात

उस समय के ब्राह्मणों को अच्छी न लगी। वशिष्ट जी ने कहा कि आप क्षत्रिय थे, पर तपस्वी हैं। इसलिये राजर्षि कहला सकते हैं, परन्तु ब्रह्मर्षि नहीं। इस बात पर विश्वामित्र ने वशिष्ठ जी से शत्रुता बाँधी। विश्वामित्र बार बार अधिक अधिक तप करके आते थे और वशिष्ठ जी से झगड़ा करते थे, पर वशिष्ठ जी उन पर क्षमा ही रखते थे। पुराणों में ऐसा लिखा है कि एक बार विश्वामित्र बहुत तप कर आकर वशिष्ठ को ललकार बोले कि हमे ब्राह्मण कहो, नहीं तो युद्ध करो। वशिष्ठ जी एक दण्ड लेकर कुटी के बाहर खड़े हो गये। विश्वामित्र उन पर बहुत से शस्त्र अस्त्र चलाने लगे, परन्तु वशिष्ट जी ने अपने तपोबल से सब को उसी दण्ड पर रोका। जब विश्वामित्र कोटि कला कर हारे, तब वशिष्ठ जी ने कहा भाई और कोई शस्त्र-अस्त्र बाकी हो तो चला लो, फिर हम भी आरम्भ करेंगे। तब विश्वामित्र ने हाथ जोड़े और वशिष्ठ जी ने क्षमा किया। कालान्तर में वशिष्ठ जी एक समय अपनी कुटी में बैठे आँख बन्द किये ध्यान कर रहे थे और अँधेरी रात थी। चारों ओर मारे अंधकार के ऐसा जान पड़ता था कि काजल की आँधी चल रही है अथवा स्याही की वर्षा हो रही। काले मेघ मंडल से तारों का भी प्रकाश बन्द हो गया था। उस समय विश्वामित्र के चित्त में यह बात आई कि जितने ब्राह्मण हैं वे वशिष्ठ ही पर टलते हैं और कहते हैं कि वशिष्ठ यदि ब्राह्मण कहे तो हम लोग भी ब्राह्मण कहें, और वशिष्ठ ऐसा दुष्ट है कि चाहे कुछ हो हमें ब्राह्मण न कहेगा। तो इस अँधेरे में वशिष्ट का सिर काट डालना चाहिये। यह विचार कर चोर की भाँति तलवार ले वशिष्ठ की कुटी में घुसे। इतने में वशिष्ठ की समाधि खुली। वशिष्ठ ने पूछा कौन है? तो विश्वामित्र ने कहा कि तुम मुझे ब्राह्मण नहीं कहते, इस लिये मैं तुम्हारा सिर काटने आया हूँ। वशिष्ठ ने कहा कि आप ही सोच लीजिये तो क्या पाप करने आप आये हैं। ऐसे ही ब्राह्मण के कर्म्म होते हैं? क्या ऐसे ही स्वभाव के भरोसे आप ब्राह्मण बनना चाहते हैं? यह सुनते ही विश्वामित्र लज्जित हो गये और तलवार दूर फेंक प्रणाम कर बैठ गये और अपने अपराध क्षमा कराने लगे। वशिष्ठ जी ने कहा हमें कुछ बदला

नहीं लेना है जो आप क्षमा माँगते हैं। पर देखिये, जिस समय आप अहंकार से ऊँचे बनने का डङ्का दे युद्ध का ढोल बाँधते थे, तब सब की दृष्टि में आप छोटे जंचते थे और आप अब हाथ जोड़ अपने को तुच्छ समझ बैठे हैं तो सारे ही दृष्टि में ऊँचे जान पड़ते हैं। इस समय आप के हृदय में अहंकार नहीं, क्रोध नहीं, छल नहीं, ईर्ष्या नहीं, मद नहीं, मत्सर नहीं, बस ऐसा हृदय रखिये तो आप सब से बड़े है। विश्वामित्र जी को यह सुन बहुत बोध हुआ और वशिष्ठ जी का इतना भारी क्षमा-गुण देख कर सब को आश्चर्य हुआ। इस लिये चित्त को स्थिर करके रखना चाहिये कि—

दोहा—छमा सकल गुन सों बड़ी, छमा पुन्य को मूल।
छमा जासु हिरदे रहै, तासु दैव अनुकूल॥
अपराधी निज दोष तें, दुख पावत बसु जाम।
क्षमाशील निज गुनन ते, सुखी रहत सब ठाम॥

—o—

पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

जन्मभूमि

अपनी मातृभूमि की चाह किसे नहीं है? चाहे स्वर्ग से गिरते समय देवताओं की आँखों से आँसू न निकले हो, परन्तु मनुष्य तो जब कभी राजाज्ञा अथवा लोभ के वश अपने देश को छोड़ता है, तो उस समय, चाहे वह कैसा ही धीर और वीर क्यों न हो, धैर्य्यच्युत हो, कातर स्वर से रोने और विलाप करने लगता है। ऐसे मनुष्य बहुत कम हैं जो स्वदेश का नाम सुन चाहे वह स्वर्ग ही में जा क्यों न बस गये हों, अश्रुपात न करने लगें, और गहरी साँस भर भर कर यह न कहने लगें कि—हा! वह दिन कब लौटेगा कि हम पुनरपि उस प्यारी चिरपरिचित भूमि का दर्शन करेंगे? तथा पुराने सहवासियों के साथ, गत और वर्तमान विषयों पर स्वच्छन्दता से बातें करेंगे? मै जब अपने घर से किसी कारणवश विदेश चला गया था, तो घर और उसके

करने लगता है, जहाँ कि उसकी शिशुता व्यतीत हुई थी, तो सब वस्तु से उस वृक्ष की समता देना क्या भी वह नहीं तृप्त होता। इसमें सन्देह नहीं कि जैसे नृप अपने महलों ध्वजाओं से अलंकृत प्रासाद को प्यार करता है, जैसे बड़े लोग अपने सजे-धजे महलों का विदेश में स्वप्न देखते हैं, वैसे ही गरीब भी, सबों से कहीं विशेष अपनी हरी भरी बेलों से ढकी पर्णकुटी को चाहता है। यह अनुराग वास्तव में अनुचित नहीं क्योंकि झोंपड़ियों में उन अट्टालिकाओं से कहीं विशेष सुख, शान्ति और सन्तोष निवास करते हैं। इसी से कविजन सदा वृक्षों और लताओं से आवेष्ठित झोंपड़ियों का वर्णन विशेष प्यार से किया करते हैं।

मनुष्य की क्या कथा, पशु पक्षी भी अपनी जन्मभूमि का, जहाँ उन की शिशुता के स्वर्गीय दिन बीते हैं, यावत् जीवन स्मरण रखते हैं। बहुत सी चिड़ियाँ तो ऐसी हैं कि पृथ्वी के दूर दूर भाग को भी जा, सहस्रों कोस समुद्र लाँघ फिर भी बसन्त में उसी ठौर आ पहुँचती हैं जहाँ उन सबों ने इस प्रिय लोक का प्रथम दर्शन किया था। हमारे अहाते में यहीं का वासी, एक भुजंगे का जोड़ा चाहे वह वर्ष भर कहीं रहा हो, वसन्त में अवश्य ही आ जाता है, और एक आम के वृक्ष पर जो हमारे तड़ाग का मौलिमुकुट है, बचा देता और ज्येष्ठ से आषाढ़ पर्य्यन्त जब तक कि उसके बच्चे उड़ने योग्य नहीं हो जाते, वहीं रहता है, इसके बाद वह फिर किसी दूसरे देश को चला जाता है। यों ही वह हर वसन्त में आया करता है और उसी रसाल के शिखर पर बैठ कर "ठाकुर जी" का पाठ किया करता है। इस के सिवा एक वनकुक्कुट भी आषाढ़ के आरम्भ ही से, जब कि एक आध पानी बरस मेघों ने जलती वसुन्धरा को किंचित आश्वासन दिया, अपनी सहचारिणी के साथ मेरे तड़ाग में आ बसता है, और अपने अनोखे कलरव से मेरे स्थान को अँगरेजी बैण्ड-रव सरीखा पूर्ण किए रहता है। किन्तु जो लोग प्रकृति के पूर्ण उपासक नहीं हैं, उन्हें तो उन की [illegible] कभी कभी दुःसह हो जाया करती है। इन कुक्कुटों की प्यारी

अपनी जन्मभूमि मे चाहे कितनी विपत्ति की सम्भावना क्यों मनुष्य उसे छोड़ना नहीं चाहता। इसी कारण लोग भयंकर मे स्थानों पर खुशी के साथ रह रहे हैं। सब से बढ़कर यह दृश्य सांभारों ज खी पर्वत के छोरों के समीप देख पड़ता है
— गिर रहे हैं, पर्वत से धुवाँ कुछ
थ्वी हिल रही है, कुरूप, मृत्यु सामने
है, खेती-बारी स और लावा में निमग्न हो रही है,
का काम नहीं। सं नासमझ समझे, पर नह
परम प्यारी जन्मभू। कवि ने बहुत
कि अपनी जन्मभूमि की प्रीति संसार
के काँटे हंसराज और नाजबू (सुगन्धा तुलसी) से
के एक कवि ने भी कहा है कि जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी आदर के योग्य हैं।